उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रयागराज

(MAYO-103 N)

मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान

खण्ड – 1 : मानव शरीर रचना

इकाई –1 : मानव शरीर, कोशिका व ऊतक–संरचना, प्रकार व कार्य

इकाई –2 : अस्थियाँ व संधियाँ – संरचना, प्रकार व कार्य

इकाई –3 : पेशियाँ तंत्र–संरचना, प्रकार व कार्य

खण्ड – 2 : विभिन्न शारीरिक तंत्र

इकाई –4 : पाचन तंत्र – संरचना व कार्य

इकाई –5 : उत्सर्जन तंत्र – संरचना व कार्य

इकाई –6 : श्वसन तंत्र – संरचना व कार्य

खण्ड – 3 : प्रजनन एवं परिसंचरण तंत्र

इकाई –7 : प्रजनन तंत्र – संरचना व कार्य

इकाई –8 : परिसंचरण तंत्र – संरचना व कार्य

इकाई –9 : रुधिर एवं लसीका परिसंचरण तंत्र

खण्ड – 4 : विभिन्न शारीरिक तंत्र

इकाई –10 : अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ – संरचना व कार्य

इकाई –11 : ज्ञानेन्द्रियाँ – संरचना व कार्य

इकाई –12 : मानव तंत्रिका तंत्र – संरचना व कार्य

खण्ड – 1 : मानव शरीर रचना

इकाई 1 मानव शरीर, कोशिका व ऊतक – संरचना, प्रकार व कार्य

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 मानव शरीर

1.4 कोशिका की संरचना एवं कार्य

- 1.4.1 कोशिका कला
- 1.4.2 कोशिका द्रव्य
- 1.4.3 केन्द्रक

1.5 ऊतक की संरचना एवं कार्य

- 1.5.1 उपकला ऊतक
- 1.5.2 संयोजी ऊतक
- 1.5.3 पेशी ऊतक
- 1.5.4 तंत्रिका ऊतक

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ माना गया है किन्तु इस देह को प्राप्त करने में कुछ विशेष शुभ संकल्पों अथवा कर्मों की आवश्यकता होती है। लौकिक दृष्टि से कहें अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से मनुष्य का अपने लक्ष्य के लिए अथवा मुक्ति को प्राप्त करने के लिए स्वस्थ मन एवं शरीर की नितान्त आवश्यकता होती है।

शरीर की कोशिकाएं जो शरीर की सबसे छोटी इकाई है, अपनी पूर्ण आयु अथवा पूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लेने पर स्वतः ही नष्ट हो जाती हैं, और उनके स्थान पर नयी कोशिकाओं का निर्माण होता है। बाल्यावस्था में यह निर्माण सम्बन्धी प्रक्रिया तीव्र गति से होती है, तथा विनाश सम्बन्धी प्रक्रिया धीमी गति से होती है। परन्तु वृद्धावस्था में निर्माण की प्रक्रिया की अपेक्षा विनाश की प्रक्रिया तेज गति से हो जाती है। परिणामस्वरूप यह शरीर धीरे–धीरे घटता जाता है। अन्त में शरीर वृद्धावस्था के उपरान्त मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार अनेक छोटी–छोटी इकाईयों से मिलकर बना यह मानव शरीर उत्कृष्टता की अनमोल कृति है। प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई में आप मानव शरीर की सूक्ष्मतम इकाई कोशिका एवं ऊतक की संरचना एवं प्रकारों का अध्ययन करेंगे व जानेंगे कि यह किस प्रकार से अपना कार्य करते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का चयन करने के बाद आप –

- मानव शरीर की कोशिकाओं की संरचना का वर्णन कर सकेंगे।
- कोशिकाओं के कार्यो का वर्णन कर सकेंगे।
- ऊतक की संरचना एवं कार्यों का विवेचन कर सकेंगे

1.3 मानव शरीर

मनुष्य का शरीर लगभग 30 ट्रिलियन कोशिकाओं, जो कि जीवन की आधारभूत इकाई है, से मिलकर बना होता है। एक कोशिका अन्य दूसरी कोशिकाओं से मिलकर ऊतक (tissue) का निर्माण करती है। नाना प्रकार के ऊतक मिलकर के विभिन्न अंगों (organs) का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार, एक प्रकार के कार्य करने वाले विभिन्न अंग मिलकर एक अंग तंत्र (organ system) का निर्माण करते हैं। कई अंग तंत्र मिलकर जीव (जैसे – मानव शरीर) की रचना करते हैं। मानव शरीर का निर्माण निम्नलिखित तंत्रों द्वारा होता है।

(i) कंकाल तंत्र (Skeletal System)

(ii) संधि तंत्र (Joint System)

(iii) पेशीय तंत्र (Muscular System)

(iv) पाचन तंत्र (Digestive System)

(v) उत्सर्जन तंत्र (Excretory System)

(vi) श्वसन तंत्र (Respiratory System)

(vii) परिसंचरण तंत्र (Circulatory System)

(viii) प्रजनन तंत्र (Reproductive System)

(ix) तंत्रिका तंत्र (Nervous System)

(x) ज्ञानेन्दिय तंत्र (Sensory organ System)

1.4 कोशिका की संरचना एवं कार्य

कोशिका

कोशिका, जीवधारियों की संरचना (structure) एवं जैविक क्रियाओं (vital activities) की एक इकाई है। कोशिका का अंग्रेजी अनुवाद सेल (cell) लैटिन भाषा के सेल्युला (cellula) शब्द से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है– एक छोटा कमरा। इसमें प्रायः स्वतः जनन (Self Reproduction) की क्षमता होती है। कोशिकाएँ ही जीवों के शरीर का निर्माण करती हैं।

कुछ जीवाणुओं के शरीर केवल एक कोशिका के बने होते हैं जिन्हें एक कोशिकीय जीव (unicellular organism) कहते हैं जबकि कुछ जीव एक से अधिक कोशिकाओं से बने होते हैं जिन्हें बहुकोशिकीय जीव (Multicellular organism) कहते हैं। एम. जे. श्लाइडेन (Mathias Jakob Schleiden) तथा थियोडोर श्वान (Theodor Schwann) ने संयुक्त रूप से कोशिका सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार, सभी सजीवों का शरीर एक अथवा एक से अधिक कोशिकाओं से निर्मित होता है अर्थात कोशिका जीवन की संरचनात्मक (Structural), कार्यात्मक (Operational) तथा वंशागत (Hereditary) इकाई है।

मानव शरीर में लगभग 200 विभिन्न प्रकार की कोशिकाएँ हैं। यहां कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :

- लाल रक्त कोशिकाएँ (एरिथ्रोसाइट्स)
- त्वचा कोशिकाएँ
- न्यूरॉन्स (तंत्रिका कोशिकाएं)
- नेफान्स कोशिकाएं

मनुष्य बहुकोशिकीय, जटिल जीव है। हमारे शरीर के अन्दर की कोशिकाएं ''विशेष'' होती है। प्रत्येक प्रकार की

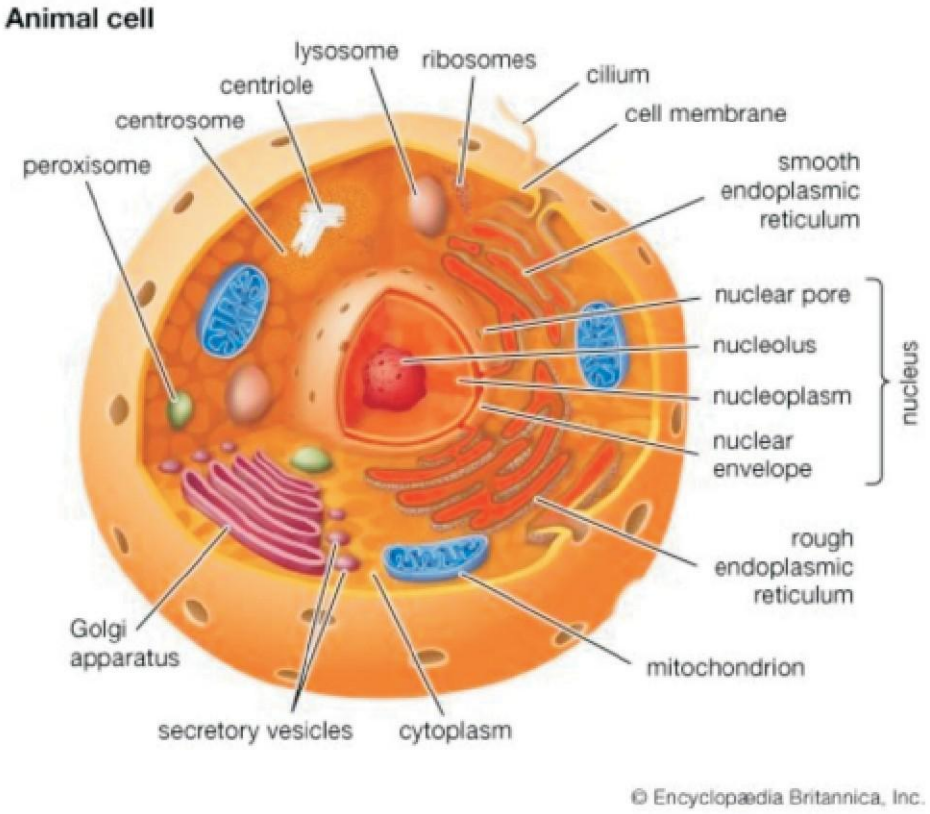

कोशिका एक विशिष्ट और विशेष कार्य करती है। इस कारण से 200 अलग–अलग प्रकार की कोशिकाओं में से प्रत्येक में एक अलग संरचना, आकार और कार्य होता है, और अलग–अलग अंग होते हैं।

कोशिका संरचना (Cell structure)

कोशिकाओं की संरचना जटिल होती है। इनकी आंतरिक एवं बाह्य संरचना विभिन्न घटकों से निर्मित होती है। कोशिका के ये घटक कोशिकांग (organellel cell) कहलाते हैं तथा सभी कोशिकांग कुछ विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करते हैं। कोशिकाओं को संरचना की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है –

(1) कोशिका कला या भित्ति (Cell membrane or Cell wall)

(2) कोशिका द्रव्य (Cytoplasm)

(3) केन्द्रक (Nucleus)

1.4.1 कोशिका कला या भित्ति (Cell Membrane)

कोशिका के सभी अवयव एक पतले आवरण द्वारा घिरे रहते हैं जिसे प्लाज्मा झिल्ली अथवा कोशिका भित्ति कहा जाता है। कोशिका झिल्ली एक अर्ध–पारगम्य सजीव झिल्ली है जो प्रत्येक सजीव कोशिका के जीवद्रव्य (cytoplasm) को घेर कर रखती है। कोशिका झिल्ली का निर्माण तीन परतों से मिलकर होता है, इसमें से बाहरी

एवं भीतरी परतें प्रोटीन द्वारा तथा मध्य वाली परत का निर्माण लिपिड या वसा द्वारा होता है। यह कोशिका की आकृति का निर्माण करती है एवं जीव द्रव्य की रक्षा करती है। प्लाज्मा झिल्ली को जीवकला (Cell Membrane), जैविक झिल्ली (Biological Membrane) तथा प्लाज्मालेमा (Plasmalemma) आदि भी कहते हैं।

कोशिका कला के कार्य –

1. प्लाज्मा झिल्ली (कोशिका कला) विभिन्न प्रकार के अणुओं तथा आयनों को कोशिका के अन्दर आने–जाने पर नियंत्रण रखती है। तथा कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) में आयनिक सान्द्रता (Ionic concentration) के अन्तर को बनाए रखने में मदद करती है।
2. यह विसरण (Diffusion), परासरण (Osmosis), प्रोटीन संश्लेषण (protein synthesis), डी.एन.ए. प्रतिलिपिकरण (D.N.A. Replication) आदि में सहायता करती है।
3. यह बाह्य उत्तेजनाओं को ग्रहण करती है।
4. इससे होकर ही कोशिका रक्त से पोषक तत्वों एवं ऑक्सीजन को ग्रहण करती है और त्याज्य पदाथ कार्बन डाइ ऑक्साइड को बाहर निकालती है।

1.4.2 कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm)

कोशिका में कोशिका झिल्ली (Cell Membrane) के अंदर केन्द्रक को छोड़कर सम्पूर्ण पदार्थों को कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm) कहते हैं। यह सभी कोशिकाओं में पाया जाता है तथा कोशिकाझिल्ली के अंदर तथा केन्द्रक झिल्ली के बाहर रहता है। यह रवेदार, जेलीनुमा, अर्द्धतरल पदार्थ है। यह पारदर्शी एवं चिपचिपा होता है। यह कोशिका के 70% भाग की रचना करता है। कोशिकाद्रव्य का निर्माण विभिन्न कार्बनिक पदार्थों (कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा) तथा अकार्बनिक पदार्थों (खनिज, लवण एवं जल) से होता है। सभी कोशिकांग (organelle cell) कोशिकाद्रव्य में ही स्थित होते हैं। कोशिका की अधिकांश महत्वपूर्ण क्रियाएँ कोशिका द्रव्य में ही सम्पन्न होती हैं। यह कोशिका को एक निश्चित स्वरूप बनाए रखने में तथा कोशिकाओं को उनके स्थान पर स्थिर रखने में सहायक होती हैं।

(i) कोशिका तरल (Cytosol)

(ii) कोशिकांग (Cell Organelles)

कोशिकातरल (Cytosol) कोशिकद्रव्य का वह भाग है जिसमें कोशिकांग नहीं पाए जाते हैं। यह छोटे–छोटे भागों में विभाजित रहता है जो कि कोशिका द्रव्य की झिल्ली द्वारा आबद्ध (Bound) रहता है। कोशिका तरल को अन्तःकोशिकीय तरल (Intracellular Fluid) अथवा साइटोप्लाज्मिक मैट्रिक्स (Cytoplasmic Matrix) भी कहा जाता है।

कोशिका द्रव्य में अनेक संरचनाएँ उपस्थित होती हैं जिनके अलग–अलग कार्य होते हैं। इन संरचनाओं को कोशिकांग (cell organelle) कहते हैं। कोशिकाद्रव्य में निम्नलिखित कोशिकांग पाए जाते हैं :–

(a) अन्तःप्रदव्यी जालिका (Endoplasmic Reticulum)

(b) गॉल्जी उपकरण अथवा गाल्जीकाय (Golgi complex)

(c) लाइसोसोम (Lysosome)

(d) माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria)

(e) राइबोसोम (Ribosomes)

(f) तारककाय (Centrosomes)

(g) रसधानियाँ (Vacuoles)

(h) माइक्रोबॉडीज अथवा साइटोसोम्स (Microbodies or Cytosomes)

(a) अन्तःप्रदव्यी जालिका (Endoplasmic Reticulum)

अंत प्रदव्यी जालिका (ER) नलिकाओं (Tubules) तथा चपटी थैलियों (Flattened sacs) का एक संजाल होती है। अंतःप्रदव्यी जालिका स्तनधारी जीवों की लाल रक्त कणिकाओं के अतिरिक्त लगभग जीवों की केन्द्रक युक्त कोशिकाओं में पायी जाती है। अंतःप्रदव्यी जालिका कोशिका कला (cell membrane) से कोशिकाद्रव्य में होते हुए केन्द्रक कला तक विस्तृत रहती है। इसके भीतर का स्थान ल्यूमेन (Lumen) कहलाता है। राइबोसोम की उपस्थिति के आधार पर अन्तःप्रद्रव्यी जालिका निम्नलिखित दो प्रकार की होती है–

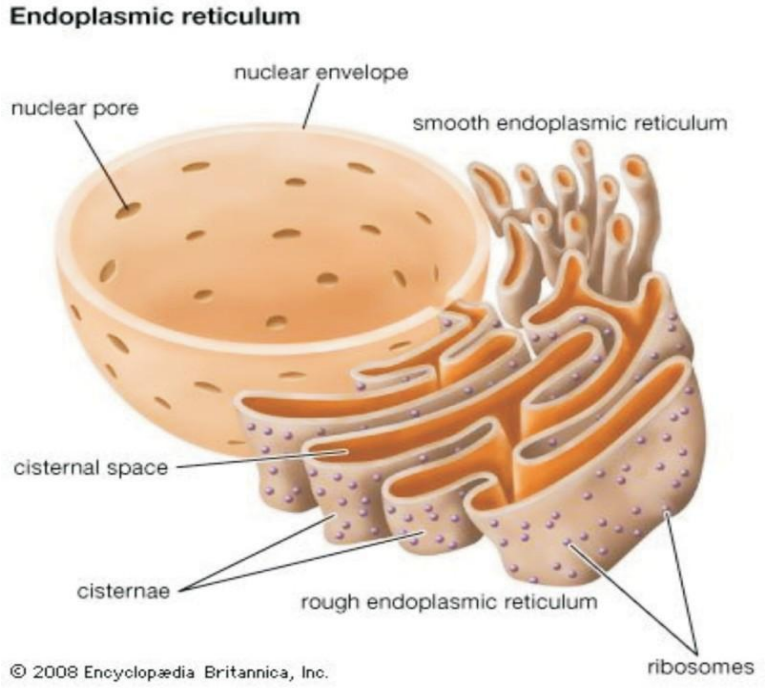

(i) चिकनी सतह वाली अंतः प्रद्रव्यी जालिका (Smooth Surfaced ER)

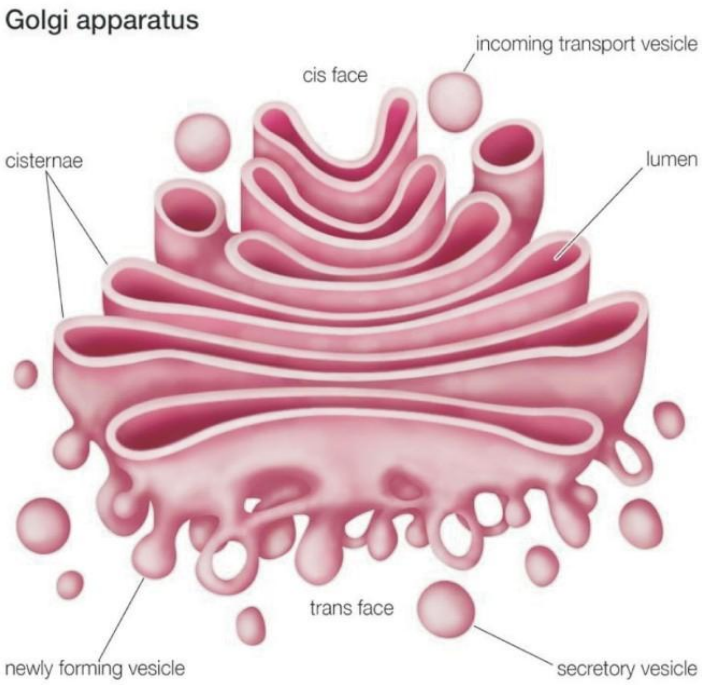

(ii) खुरदरी सतह वाली अंतः प्रद्रव्यी जालिका (Rough Surfaced ER)

(i) चिकनी सतह वाली अंतः प्रद्रव्यी जालिका (Smooth Surfaced ER) % यह नलिकाओं के संजाल (Tubule of Network) के रूप में होती है। यह कार्बोहाइड्रेट तथा लिपिड्स का संश्लेषण करती हैं। कोशिका झिल्ली के निर्माण के लिए लिपिड्स ;फॉस्फोलिपिड्स, कोलेस्ट्रॉल आदि) अत्यंत आवश्यक होते हैं। यकृत कोशिकाओं में चिकनी सतह वाली अंतः प्रद्रव्यी जालिका ऐसे एन्जाइम्स (Enzymes) का उत्पादन करती है जो कुछ निश्चित योगिकों को निराविष करती है।

मांसपेशियों में यह जालिका मांसपेशीय कोशिकाओं के संकुचन (contraction) में सहायक होती है तथा मस्तिष्क कोशिकाओं में स्त्री एवं पुरुष के हार्मोन्स (Hormones) का संश्लेषण करती हैं।

(II) खुरदरी सतह वाली अंतः प्रद्रव्यी जालिका (Rough Surfaced ER) % इसे कणिमय अंतः प्रद्रव्यी जालिका (Granular Endoplasmic Reticulum) भी कहते हैं क्योंकि इसकी सतह पर राइबोसोम्स (Ribosomes) उपस्थित होते हैं।

यह जालिका कोशिका झिल्ली तथा प्रोटीन का संश्लेषण करती है। इस पर उपस्थित राइबोसोम अनुवाद अथवा प्रतिलिपिकरण (Translation or Replication) प्रक्रिया के द्वारा अनेक प्रोटीन का संश्लेषण करते हैं। कुछ श्वेत कणिकाओं (WBCs) अथवा ल्यूकोसाइट्स (Leukocytes) में यह जालिका प्रतिरक्षियों (Antibodies) का भी निर्माण करती है।

अग्न्याशयी कोशिकाओं (Pancreatic Cells) में यह जालिका इन्सुलिन (Insulin) का उत्पादन करती है।

(b) गॉल्जी उपकरण अथवा गॉल्जीकाय (Golgi Complex)

गॉल्जी उपकरण विभिन्न कोशिका पदार्थो के विनिर्माण, उनके संग्रहण तथा परिवहन हेतु उत्तरदायी होता है इसलिए इसे यूकैरियॉटिक कोशिकाओं का विनिर्माण एवं परिवहन केन्द्र (Manufacturing and Shipping Centre) कहा जाता है। कोशिका के प्रकार के अनुसार उसमें गॉल्जी उपकरण की संख्या कम अथवा अधिक हो सकती है। गॉल्जी उपकरण में अर्द्धवृत्ताकार एवं सपाट थैली सदृश संरचनाऐं होती हैं, जिन्हें सिस्टरनी (Cisternae) कहा जाता है। प्रत्येक संरचना एक झिल्ली के द्वारा कोशिका से पृथक रहती है। यह कोशिका का मुख्य स्रावण अंग (Secretory Organ) है। यह लाइसोसोम एवं पैरॉक्सीसोम (Peroxisomes) के निर्माण में सहायता करता है।

(c) लाइसोसोम (Lysosome)

लाइसोसोम एन्जाइम्स की गोलाकार थैलियाँ (Spherical Sacs) हैं जो झिल्ली युक्त होती हैं। लाइसोसोम में उपस्थित एन्जाइम अम्लीय (Acidic) होते हैं जो कोशिकीय वृहद्अणुओं (Cellular Macromolecules) का पाचन करने में सक्षम होते हैं। लाइसोसोम झिल्ली इसके आंतरिक भागों को अम्लीय बनाए रखने में तथा पाचक एन्जाइम्स को शेष कोशिका से पृथक रखने में सहायक होती है। परन्तु यदि कोशिकीय उपापचय में व्यवधान उत्पन्न होता है और लाइसोसोम झिल्ली क्षतिग्रस्त हो जाती है तो पाचक एन्जाइम अपनी ही कोशिका का पाचन कर देते हैं और कोशिका नष्ट हो जाती है। इसीलिए, लाइसोसोम को कोशिका की आत्महत्या की थैली (Suicide Bag of cell) कहा जाता है।

लाइसोसोम में उपलब्ध एन्जाइम

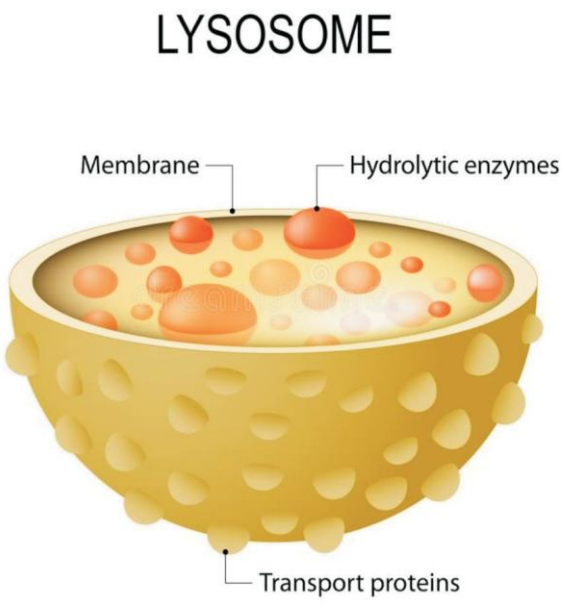

- प्रोटिएज (Protease)
- राइबोन्यूक्लिएज (Ribonuclease)
- डि–ऑक्सीराइबो न्यूक्लिएज (Deoxyribonuclease)
- फॉस्फेटज (Phosphatase)।

लाइसोसोम के प्रमुख कार्य (Major Function of Lysosome)

1. अंतः कोशिकीय पाचन (Intracellular Digestion) : लाइसोसोम पाचक एन्जाइमों की सहायता से कोशिका द्रव्य में उपस्थित विभिन्न घटकों का पाचन करता है।
2. मृत कोशिकाओ का निवारण (Removal of Dead Cells) : लाइसोसोम मृत हो चुकी रोगग्रस्त तथा क्षतिग्रस्त कोशिकाओं को नष्ट करने में सहायक होते हैं।
3. प्रोटीन संश्लेषण में सहायता (Help in Protein Synthesis) : लाइसोसोम कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण की प्रक्रिया में भी सहायक होते हैं।
4. उपस्थिल तथा अस्थिल ऊतकों में आत्मलयन (Autolysis in Cartilage and bone Tissues) विटामिन A की अधिकता होने पर कोशिका विषाक्तता (Cell Poisoning) की स्थिति उत्पन्न होती है। परिणामस्वरूप, लाइसोसोम की झिल्ली (Lysosomal Mambrane) में कुछ व्यवधान उत्पन्न होता है, जिससे कोशिकीय एन्जाइमों का स्राव होता है और उपस्थिल तथा अस्थिल ऊतकों में आत्मलयन (Autolysis) अर्थात् स्वतः विनाश (Self Destruction) प्रारम्भ हो जाताहै।

(d) माइट्रोकॉन्ड्रिया (Mitrochondria)

माइटोकॉण्ड्रिया की खोज रिचर्ड आल्टमेन (Richard Altmann) नामक वैज्ञानिक ने 1890 ई. में की थी। यह कोशिका द्रव्य में पायी जाने वाली बहुत महत्वपूर्ण रचना है, जो कोशिका द्रव्य में बिखरी रहती है। माइटोकॉण्ड्रिया दोहरी झिल्ली से घिरा हुआ आबद्ध (Double Membrane Bound) कोशिकांग है, जो अधिकांश यूकैरियॉटिक कोशिकाओं के कोशिका द्रव्य में उपस्थित रहता है। यह कोशिकांग मुख्य रूप से कोशिका के पाचन तंत्र (Digestive System) के रूप में कार्य करता है। यह पोषक पदार्थों को विघटित करके कोशिका के लिए ऊर्जा युक्त अणुओं के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोशिकीय श्वसन (Cellular Respiration) से सम्बन्धित अनेक जैव रासायनिक क्रियाएँ माइटोकॉण्ड्रिया में सम्पन्न होती है। माइटोकॉण्ड्रिया की बाह्य झिल्ली इसकी सतह को आवरण प्रदान करती है। इसकी आंतरिक झिल्ली की संरचना अपेक्षाकृत जटिल होती है, जिसमें अनेक मोड़दार संरचनाएँ पायी जाती हैं जिन्हें वलय (Cristae) कहते हैं।

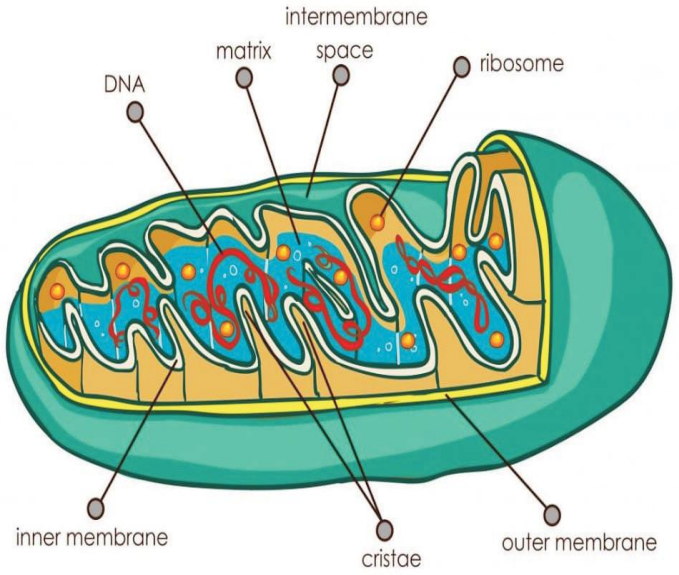

A basic diagram of a mitochondrion

माइटोकॉण्ड्रिया की बाह्य झिल्ली आयनों, पोषक अणुओं व ऊर्जा अणुओं (ADP एवं ATP) आदि के लिए स्वतंत्र रूप से पारगम्य (Freely permeable) होती है। जबकि इसकी आंतरिक झिल्ली केवल ऑक्सीजन तथा ATP अणुओं के लिए ही पारगम्य होती है।

(e) रसधानियाँ अथवा रिक्तिकाएँ (Vacuoles)

रिक्तिकाएँ कोशिका में पोषण पदार्थ तथा अपशिष्ट पदार्थ का भण्डार केन्द्र (Storage Center) होती है। रिक्तिकाओं की संरचना सरल होती है। इन पर टोनोप्लास्ट (Tonoplast) नामक झिल्ली का आवरण होता है। इसके अन्दर रिक्तिका रस नामक तरल भरा होता है।

(f) तारकाय (Centrosome)

तारकाय एक बेलनाकारा (Cylinder) कोशिकांग है जो परस्पर लम्बवत् तारक केन्द्रकों (Centrioles) से निर्मित होता है। प्रत्येक तारक केन्द्र समान दूरी पर स्थित ट्यूबुलिन नामक प्रोटीन के 9 परिधीय तन्तुओं (Peripheral Fibrils) से निर्मित होता है।

तारक केन्द्रक कोशिक विभाजन (Cell Division) में तथा सिलिया (Cilia) एवं कशाभिका (Flagella) के निर्माण में भाग लेते हैं। तारकाय का मुख्य कार्य सूक्ष्म नलिकाओं (प्रोटीन की खोखली नली) अर्थात् माइक्रोट्यूबुल्स को संगठित करना है जो कि कोशिकीय कंकाल (Cytoskeleton) को स्थिर संरचना प्रदान करतीहै।

(g) राइबोसोम (Ribosome)

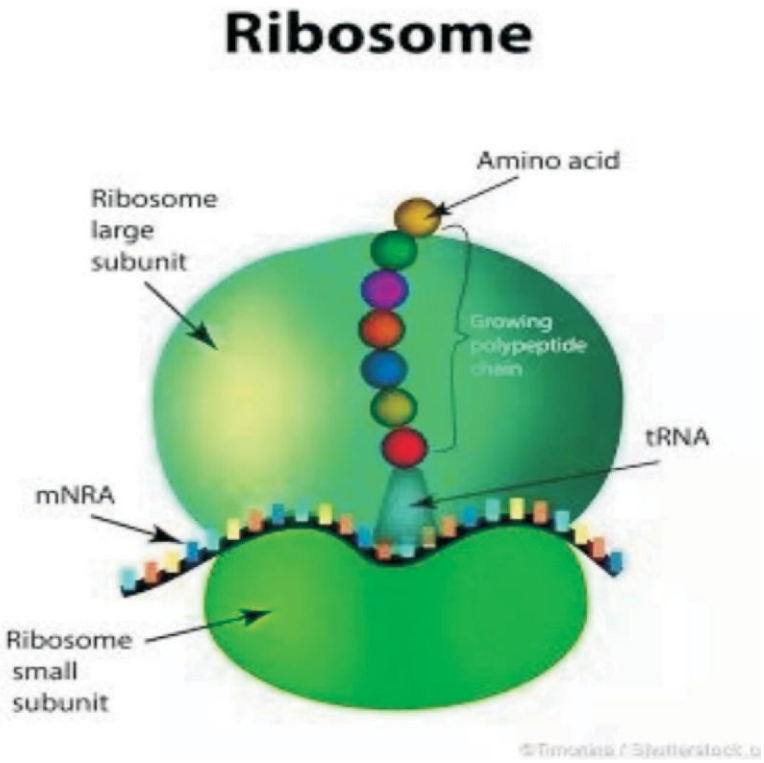

राइबोसोम जटिल संरचना वाले सूक्ष्म कण हैं जो सामान्यतः अंतः प्रद्रव्यी जालिका से संयुक्त होते हैं तथा केन्द्रक, माइटोकॉण्ड्रिया तथा हरित लवक आदि कोशिकांगों में भी उपस्थित होते हैं। राइबोसोम राइबोन्यूक्लिक अम्ल (RNA) तथा प्रोटीन के संयोग से निर्मित होते हैं। इसीलिए इन्हें राइबोन्यूक्लियो प्रोटीन (Ribonulceoprotein) भी कहा जाता है। संरचनात्मक स्तर पर ये दो उपइकाइयों (Sub-Units) से निर्मित होते हैं छोटी उप इकाई पर एम.आर.एन.ए. (m-RNA) जुड़े होते हैं। ये दोनों उप इकाइयाँ एक उपइकाई r-RNA तथा दूसरी उपइकाई के प्रोटीनों के मध्य अंतःक्रिया के द्वारा जुड़ी होती है। राइबोसोम्स प्रोटीन का निर्माण करते हैं। विभिन्न कोशिकीय कार्यो– जैसे– क्षतिग्रस्त कोशिकाओं के पुनर्निर्माण अथवा रासायनिक प्रक्रियाओं के निर्देशन आदि के लिए प्रोटीन की आवश्यकता होती है। आकार एवं अवसादन गुणांक (Sedimentation Coefficient) के आधार पर राइबोसोम दो प्रकार के होते हैं–70S राइबोसोम तथा 80S राइबोसोम। 70S राइबोसोम की बड़ी उप इकाई 50S तथा छोटी उप इकाई 30S होती है। 80S राइबोसोम की बड़ी उप इकाई 60S एवं छोटी उप इकाई 40S होती है। कभी–कभी एक से अधिक राइबोसोम एक साथ मिलकर एक विशिष्ट संरचना बनाते हैं, जिसे पॉली–राइबोसोम या पॉलीसोम्स (Polysomes) कहते हैं।

राइबोसोम का मुख्य कार्य अमीनों अम्ल के द्वारा प्रोटीन संश्लेषण में सहायता करना है।

(h) माइक्रोबॉडीज अथवा साइटोसोम्स (Microbodies or cytosomes)

माइक्रोबॉडीज तथा साइटोसोम्स गोलाकार सूक्ष्म संरचनाएँ हैं जिनका व्यास (Diameter) 0.2–1.5 माइक्रोमीटर के मध्य होता है। यह कोशिकाद्रव्य में उपस्थित होती है और इन पर एकल फॉस्फोलिपिड (Single Phospholipid) की झिल्ली का आवरण पाया जाता है।

माइक्रोबाडीज के अन्तर्गत परऑक्सीसोम (Peroxisomes), ग्लाइऑक्सीसोम (Glyoxysome), ग्लाइकोसोम (Glyecosomes) तथा हाइड्रोजेनोसोम (Hydrogenosomes) को सम्मिलित किया जाता है।

माइक्रोबाडीज में एन्जाइम्स पाए जाते हैं जो कोशिक के अंदर जैव रासायनिक अभिक्रियाओं (Biochemical Reactions) में भाग लेते हैं।

परॉक्सीसोम नामक माइक्रोबॉडी वृहद् अणुओं को विघटित करने में तथा हानिकारक पदार्थ को निराविष (Detoxify) करने में सहायक होते हैं।

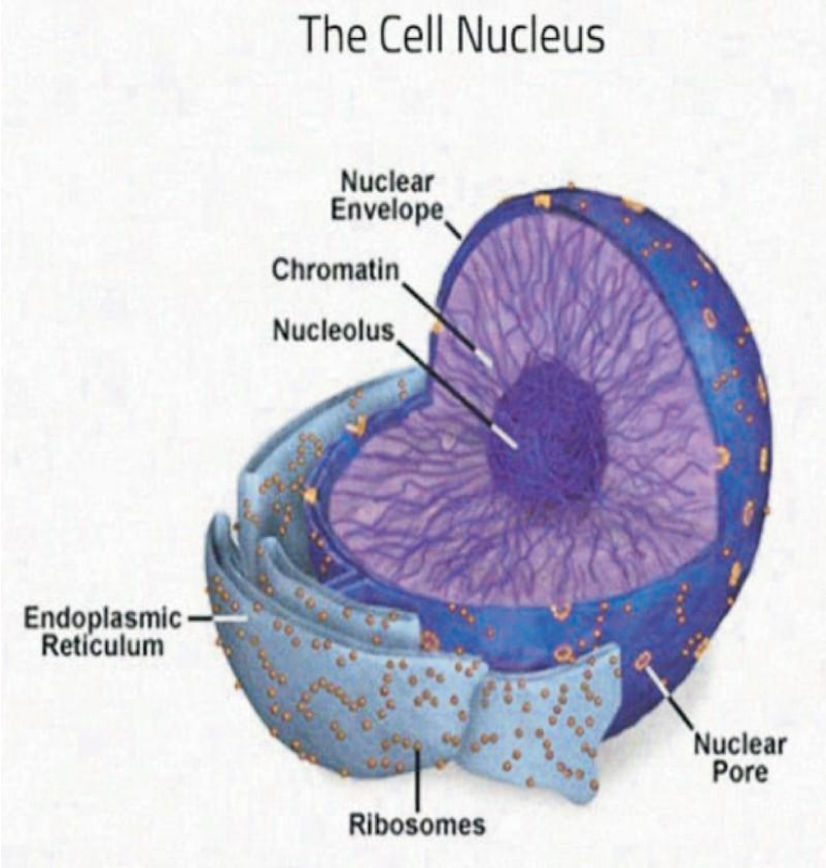

1.4.3 केन्द्रक (Nuclues)

कोशिका में केन्द्रक की खोज 1831 ई. में स्कॉटिश वनस्पतिशास्त्री रॉबर्ट ब्राउन (Robert Brown) ने की थी। केन्द्रक कोशिकीय क्रियाओं का नियंत्रण केन्द्र (Control Centre) होता है। संरचनात्मक दृष्टि से केन्द्रक गहरे रंग का एवं सामान्य आकार का होता है। यह कोशिका के आनुवंशिक पदार्थ का भण्डार गृह (Storehouse) होता है जो प्रजनन (Reproduction) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

केन्द्रक को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया जाता है –

(i) केन्द्रक कला (Nuclear Membrane)

यह प्लाज्मा झिल्ली की भाँति दोहरी झिल्ली की बनी होती है तथा केन्द्रक के चारों ओर एक अवरण बनाती है। प्रत्येक झिल्ली लाइपोप्रोटीन से बनी एक कला होती है।

इसमें अनेक केन्द्रक छिद्र होते हैं जिसके द्वारा केन्द्रक द्रव्य एवं कोशिका द्रव्य के बीच पदार्थो का आदान–प्रदान होता है। यह केन्द्रक तथा कोशिकाद्रव्य के मध्य पदार्थों के आवागमन को नियन्त्रित करती है।

केन्द्रक द्रव्य (Nucleoplasm)

कोशिका द्रव्य के समान केन्द्र में भी एक अर्द्ध तरल पदार्थ भरा होता है जिसे केन्द्रक द्रव्य कैरियोप्लाज्म (Karyoplasm) अथवा केन्द्रक रस (Nucleus sap) कहा जाता है। केन्द्र द्रव्य में जल, प्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्ल उपस्थित होते हैं। यह केन्द्रक में उपस्थित कोशिकांगों के लिए एक निलंबन पदार्थ (Suspention Substance) का कार्य करता है।

केन्द्रक द्रव्य केन्द्रक के आकार एवं संरचना को बनाए रखने में सहायता करता है। इसके अतिरिक्त यह कोशिका उपापचय (Cell Metabolism) एवं अन्य कार्यो में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(ii) केन्द्रिका (Nucleolus)

केन्द्रक द्रव्य में एक छोटी गोलाकार या अंडाकार संरचना पायी जाती है जिसे केन्द्रिका (Nucleolus) कहते हैं। केन्द्रिकाएँ RNA के संश्लेषण तथा कोशिका विभाजन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

(iii) क्रोमैटिन धागे (Chromatin Threads)

केन्द्रक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग क्रोमैटिन धागे हैं, जो रासायनिक दृष्टि से एक न्यूक्लियोप्रोटीन (Nucleoprotein) होते हैं, अर्थात् ये न्यूक्लिक अम्ल (DNA) और हिस्टोन (Histone) नामक क्षारीय प्रोटीन के मिश्रण से बने होते हैं। क्षारीय प्रोटीन विशेष रूप से क्षारीय अमीनों अम्ल से बना होता है।

क्रोमैटिन धागे परस्पर संयोजित होकर एक जालीनुमा संरचना का निर्माण करते हैं जिसे क्रोमैटिन जालिका (chromatin Reticulum) कहा जाता है। वास्तव में यह संरचना आभासी होती है क्योंकि क्रोमैटिन धागों के सिरे परस्पर जुड़े नहीं होते हैं।

गुणसूत्र (Chromosome)

कोशिका विभाजन के समय क्रोमैटिन धागे एक–दूसरे से पृथक हो जाते हैं और संकुचित होकर छोटे एवं मोटे हो जाते हैं, इन्हीं संकुचित क्रोमैटिन धागों को गुणसूत्र (Chromosome) कहते हैं।

गुणूसत्र का क्रियात्मक भाग जीन (Gene) कहलाता है। जीन जीवों की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी का आनुवंशिक सूचनाओं (Genetic Information) के वाहक होते हैं।

● डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड–डी.एन.ए. (Deoxyribonucleic Acid-DNA)

DNA एक न्यूक्लिक एसिड (Nucleic Acid) है जो प्रोटीन के साथ मिलकर क्रोमोसोम की संरचना बनाता है। यह कोशिका के केन्द्रक में धागे के रूप में फैला रहता है। डी.एन.ए. की कुछ मात्रा केन्द्रक के अतिरिक्त माइटोकॉण्ड्रिया में पाई जाती है।

मूल रूप से DNA एक आनुवंशिक पदार्थ (Genetic Material) है जो लक्षणों या गुणों को माता–पिता से सन्तानों में पहुँचाने का कार्य करता है।

DNA अनेक न्यूक्लियोटाइड (Nucleotide) का बहुलक होता है।

● राइबोन्यूक्लिक एसिड (आर.एन.ए.) (Ribonucleic Acid (R.N.A.)

आर.एन.ए. कोशिका द्रव्य में बिखरा रहता है। यह एकल कुण्डलित (Single Stranded) संरचना है। जिसमें फॉस्फेट एवं राइबोज शर्करा की संयुक्त इकाइयाँ एकांतर पर स्थित होती हैं। डी.एन.ए. के समान आर.एन.ए. में भी राइबोज से 4 क्षारक संयुक्त होते हैं। परन्तु इसमें थायमीन के स्थान पर यूरेसिल (Uracil) जुड़ा होता है।

R.N.A. तीन प्रकार के होते हैं –

1. मैसेंजर आर.एन.ए., (m-RNA) : यह DNA में निहित सूचनाओं को प्रोटीन संश्लेषण स्थल (Protein Synthesis Site) पर लाने का कार्य करता है।
2. राइबोसोमल आर.एन.ए. (r-RNA) : इसका निर्माण केन्द्रिका (Nucleolus) में होता है। यह कोशिका में उपस्थित समस्त आर.एन.ए. का लगभग 80% होता है। इसका मुख्य कार्य राइबोसोम के संरचनात्मक संगठन में सहायता करना है।
3. ट्रांसफर आर.एन.ए. (t-RNA) : यह सबसे छोटा आर.एन.ए. है। जिसमें 75 से 95 राइबोन्यूक्लियोटाइड उपस्थित होते हैं। इसका मुख्य कार्य अमीनों अम्लों को प्रोटीन संश्लेषण स्थल (राइबोसोम) पर लाना है। एक कोशिका में उपस्थित कुल RNA का 16-18% भाग t-RNA होता है।

1.5 ऊतक की संरचना एवं कार्य

एक ही प्रकार की संरचना और कार्य करने वाले कोशिकाओं के समूह को ऊतक कहते हैं। मानव शरीर में लाखों कोशिकाएँ होती हैं। इनमें से अधिकतर कोशिकाएँ कुछ ही कार्यों को संपन्न करने में सक्षम होती हैं। ऐसी कोशिकाएँ जो एक तरह के कार्यों को करने में दक्ष होती हैं सदैव एक समूह में होती हैं।

कोशिकाओं का वह समूह जो शरीर के किसी निश्चित स्थान विशिष्ट पर कार्य करते हैं। ऊतक तंत्र कहलाता

है। ऊतक तंत्र में अन्तर्निहित कोशिकाओं की संरचना समान या भिन्न होती हैं, जबकि उद्‌गम (origin) एक समान कोशिकाओं से होता है।

मनुष्य में विभिन्न प्रकार के ऊतक पाए जाते हैं, जो मानव की जीवन–शैली (Life Style) के अनुकूल होते हैं। ऊतकों का निर्माण करते समय कोशिकाएं आपस में एक दूसरे से एक विशेष अन्तराकोशिकीय पदार्थ (Intercellular substance) के द्वारा जुड़ी और सम्बन्धित रहती हैं। बहुत से ऊतक मिलकर शरीर के अंगों (organs), जैसे– आमाशय, गुर्दे, यकृत, मस्तिष्क आदि का निर्माण करते हैं। प्रत्येक अंग का भी अपना विशिष्ट कार्य होता है। विभिन्न अंग परस्पर स्वरयन्त्र (Larynx)] श्वास प्रणाल (Trachea) एवं फेफड़े मिलकर श्वसन तंत्र

(संस्थान) का निर्माण करते हैं, जो कि शरीर एवं वायुमण्डल के बीच ऑक्सीजन एवं कार्बन डाई ऑक्साइड का आदान–प्रदान करता है।

ऊतक के प्रकार एवं संरचना

मानव शरीर में निम्नलिखित चार प्रकार के ऊतक पाए जाते हैं –

1. उपकला ऊतक (Epithelial Tissues or Epithelium)
2. संयोजी ऊतक (Connective Tissue)
3. पेशी ऊतक (Muscular Tissues)
4. तंत्रिक ऊतक (Nervous Tissues)

1.5.1 **उपकला ऊतक (Epithelial Tissues or Epithelium)-** उपकला ऊतक अंगों को ढकने के साथ ही रक्षात्मक बाह्य आवरण भी प्रदान करता है। शरीर की त्वचा एवं आंतरिक अंगों की श्लैष्मिक झिल्ली का निर्माण इसी ऊतक के द्वारा होती है। त्वचा, मुँह, आहारनली, रक्तवाहिनी नली का अस्तर, फेफड़े की कुपिका, वृक्कीय नली आदि सभी उपकला ऊतक से बने होते हैं। उपकला ऊतक की कोशिकाएँ एक–दूसरे के समीप होती हैं। अर्थात् अन्तरकोशिकीय स्थान नहीं पाया जाता है। इस ऊतक की कोशिकाओं का निर्माण कोलेजन (Collagen) प्रोटीन (Protein) तथा प्रोटियोग्लाइकन (Proteoglycan) द्वारा होता है।

उपकला ऊतक के कार्य (Functions of Epithelium Tissues)

(i) यह चिपकने, स्रावण (Secretion) तथा अवशोषण (Absorption) में सहायता करता है।

(ii) ये शरीर के अन्दर स्थित बहुत से अंगों और गुहिकाओं (cavities) को ढ़कते हैं।

(iii) ये भिन्न–भिन्न प्रकार के शारीरिक तंत्रों को एक दूसरे से अलग करने के लिए अवरोध का निर्माण करते हैं।

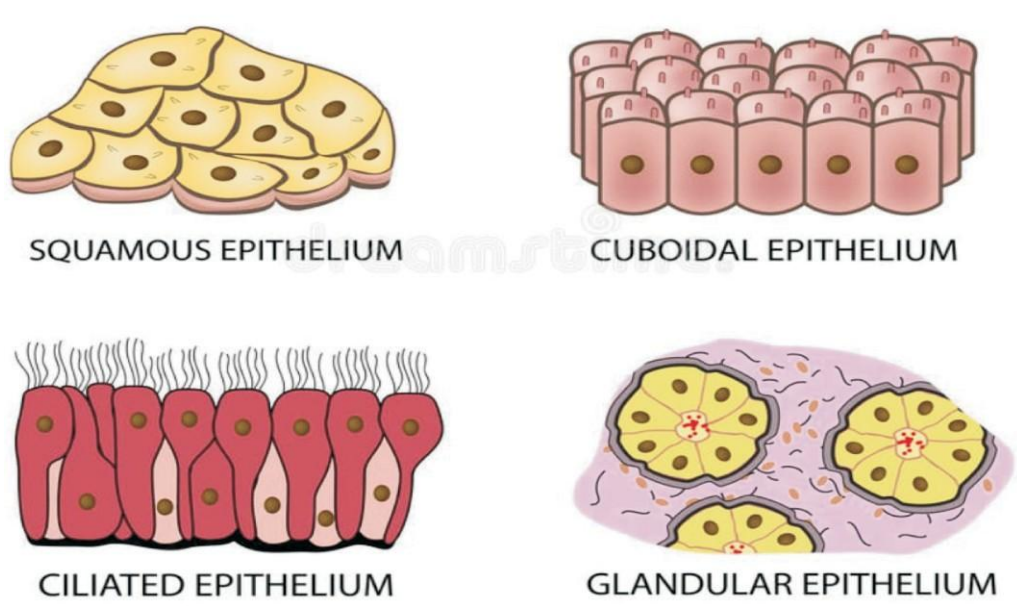

(iv) यह एक अनवरत (continuous) परत का निर्माण करती है। इन परतों के मध्य चिपकने वाले पदार्थ (fluid) उस स्थान को भर देते हैं जिससे इन ऊतकों में अन्तरकोशिकीय स्थान अनुपस्थित होता है।

(v) यह बाहरी वातावरण और शरीर के विभिन्न अंगों के बीच पदार्थों के आदान–प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका नभाती है।

उपकला ऊतकों के प्रकार (Types of Epithelial Tissues)

सरल उपकला ऊतक (Simple Epithelium Tissues)

(i) शल्की एपिथीलियम (Squamous Epithelium)

(ii) घनाकार एपिथीलियम (Cuboidal Epithelium)

(iii) स्तम्भाकार एपिथीलियम (Calumnar Epithelium)

(iv) पक्ष्माभि एपिथीलियम (Ciliated Epithelium)

(v) छदम स्तरित एपिथीलियम (Pseudostratified Epithelium)

संयुक्त उपकला ऊतक (Compound Epithelium Tissues)

(i) स्तरित संयुक्त एपिथीलियम

(Stratified compound Epithelium)

(ii) परिवर्ती संयुक्त एपिथीलियम

(Transitional compound Epithelium)

सरल उपकला ऊतक

सरल उपकला ऊतक कोशिकाओं की एकल परत से बने होते हैं। जो मुख्यतः स्रावी तथा अवशेषी सतह पर पाए जाते हैं। इन्हें संरचना एवं आकार के आधार पर निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जाता है –

(i) शल्की एपिथीलियम (Squamous Epithelium) :

इनकी कोशिकाएँ चपटी (flat) होती हैं। ये बहुत पतले तथा कोमल स्तर का निर्माण करती हैं। शरीर का रक्षात्मक कवच इन कोशिकाओं का बना होता है। इसका केन्द्रक चपटा होता है जो मध्य में पाया जाता है तथा जो कोशिका सतह को कुछ उभार देता है।

शल्की एपिथीलियम त्वचा, मुख की परत, श्वसनियों, अन्तःकर्ण, मुखगुदा, ग्रसनी, कार्निया, रूधिर नलिका, (Blood vessels), आहारनाल (Oesophagus), जीभ (Tongue), वायुकोष (Alveoli) के ऊपर पाये जाते हैं। ये ऊतक सुरक्षा, स्रावण (secretion) तथा गैसों के विनिमय में सहायता करते हैं।

(ii) घनाकार एपिथीलियम (Cuboidal Epithelium) :

इसकी कोशिकाएँ घनाकार होती हैं और प्रत्येक कोशिका में एक गोलाकार केन्द्रक होता है जो शरीर को यांत्रिक सहायता (Mechanical support) प्रदान करती है। यह लार ग्रन्थियों (Salivary Glands), वृक्क नलिकाओं (Lung Canals), मूत्रमार्ग (Urethra) एवं थायरॉइड ग्रन्थियों (Thyroid glands) आदि में पाई जाती है। इस प्रकार की उपकला अंगों की रक्षा करती है। इसका मुख्य कार्य सुरक्षा, स्रावण (secretion), अवशोषण (absorption) एवं उत्सर्जन (Exretion) करना है।

(iii) स्तम्भाकार एपिथीलियम (Columnar Epithelium) :

इसकी कोशिकाएँ चौड़ाई में कम तथा ऊँचाई में अधिक अर्थात् आयताकार होती हैं। इस प्रकार की उपकला में कोशिकाओं का आकार विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है। इसकी कोशिकाएँ एक–दूसरे से सटी रहती हैं इसका केन्द्रक कोशिका के आधार में स्थित होता है। यह सामान्यतः आमाशय (stomach), आंतों के स्तर, वायुकोष्ठों (Alveolie) तथा अधिकांश ग्रन्थियों में पायी जाती हैं। ये आंत के आन्तरिक भाग का निर्माण करती है। जिसमें भोजन का अवशोषण होता है। यह अवशोषण (Absorption) एवं स्रावण (Secretion) जैसे दो मुख्य कार्य करती है।

(iv) पक्ष्माभि एपिथीलियम (Ciliated Epithelium) :

इस प्रकार के ऊतक की कोशिकाएँ सामान्यतः स्तम्भाकार होती हैं। लेकिन कहीं–कहीं घनाकार भी पायी जाती हैं। हर कोशिका में स्वतंत्र सिरे पर 20 से 30 बालों के समान रचनाएं पायी जाती हैं। जिन्हें रोमिकाएँ (Cilia or Flagellae) कहते हैं। जिस सिरे पर रोमिकाएं अवस्थित होती हैं उसमें आधारी कणों (basal particles) की एक पंक्ति होती है तथा हर आधारी कण से एक रोमक (cilium) लगा रहता है। ये आधारी कण कोशिका के सेन्ट्रियोल के अंश (fragments) होते हैं। इस प्रकार की उपकला सामान्यतः डिम्ब वाहिनियों (Fallopian tubes), श्वसन मार्गों

तथा सुषुम्ना की मध्य नलिका आदि में पायी जाती है। रोमिकाएं अपनी रोमक गति (ciliary movement) करती हैं जो कोशिकाओं की जीवित अवस्था में हमेशा होती रहती हैं, रोमक गति प्रति सेकण्ड दस से बीस बार होती है। इसमें एक बार रोमिकाएं झुकती है (effective phase) और दूसरी बार सीधी अवस्था में लौट आती हैं (return phase)। इसी रोमक गति से डिम्ब (ovum) डिम्ब वाहिनी से गर्भाशय की ओर खिसकता है तथा श्वसन मार्गों से धूल, म्यूकस (श्लेष्मा) आदि गले की ओर बढ़ते रहते हैं।

(v) छद्म स्तरित उपकला ऊतक (Pseudostratified Epithelium)

यह उपकला एक कोशिकीय होती है परन्तु दो कोशिकीय परत जैसी प्रतीत होती है। इसलिए इसे छद्म स्तरित उपकला कहते हैं। ये कोशिकाएँ स्तम्भाकार होती हैं, जिसमें केन्द्रक उपस्थित होता है। ये ऊतक कुछ ग्रन्थियों की बड़ी नलिकाओं में उपस्थित होते हैं, जैसे– लार ग्रन्थियों, नर व मादा के मूत्रमार्ग तथा घ्राण श्लेष्म। ये वायुनाल तथा ब्रोंकाई में भी पाए जाते हैं। ये ऊतक सुरक्षा तथा स्राव का कार्य करते है। यह पुरुषों के मूत्रनाल में मूत्र व वीर्य का तथा कण्ठ से वायुनाल तक वायु के प्रवाह में सहायता करते हैं।

संयुक्त उपकला ऊतक

इन ऊतकों का निर्माण कई स्तरों से किया जाता है। जो सरल उपकला ऊतकों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली व मोटे होते हैं। स्तरित होने के कारण इनमें स्राव तथा अवशोषण कम पाया जाता है। संयुक्त उपकला ऊतक दो प्रकार के होते हैं –

(i) स्तरित संयुक्त उपकला (Stratified Compound Epithelium) :

यह उपकला कोशिकाओं की बहुत सी परतों से मिलकर बनती है। केरेटिन (Karatin) के जमाव के कारण उपरिस्थ (Superficial) परत श्रंगी (horny) हो जाती है। यह त्वचा में पायी जाती है। बाल, नाखून, दांतों का इनेमल आदि इसी वर्ग के एपिथीलियल ऊतक है। इसकी कांटेदार बनावट के कारण इन कोशिकाओं को 'शक कोशिकाएँ (prickle cells) भी कहा जाता है। रगड़ एवं घर्षण से उपस्थित परतों की कोशिकाएँ लगातार झड़ती रहती है। गहराई में स्थित परत की कोशिकाओं में कोशिका विभाजन होते रहने से इन कोशिकाओं की क्षतिपूर्ति होती रहती है। यह उपकला वातावरणीय प्रभाव, यान्त्रिक दबाव, रगड़ खाने तथा चोट पहुँचने आदि से अपने नीचे स्थित रचनाओं की रक्षा करती है।

(ii) परिवर्ती संयुक्त उपकला (Transitional Compound Epithelium)

परिवर्ती उपकला में कोशिकाओं की तीन–चार परतें होती हैं तथा यह एक परत वाली सरल उपकला (Simple Epithelium) एवं अनेकों परत वाली स्तरित उपकला के बीच वाले स्थान में पायी जाती है। इसलिए इसे अन्तवर्ती उपकला या परिवर्ती उपकला कहा जाता है। इनमें दो केन्द्रक पाए जाते हैं। यह उपकला गुर्दे की गोणिका (Pelvis of Kidney), मूत्रनलियों (ureters), मूत्राशय तथा मूत्रमार्ग (Urethra) के ऊपरी भाग में पायी जाती है। यह उपकला उत्सर्जित पदार्थों को तन्त्र (system) में दोबारा अवशोषित होने से रोकती है।

1.5.2 संयोजी ऊतक (Connective Tissues)

ऐसे ऊतक जिनकी कोशिकाएँ आपस में कम जुड़ी होती है और अंतरकोशिकीय आधात्री (gangue) में धंसी होती है। संयोजी ऊतक कहलाती हैं। यह शरीर के विभिन्न कोशिकाओं, ऊतकों और अंगों के मध्य स्थित होता है

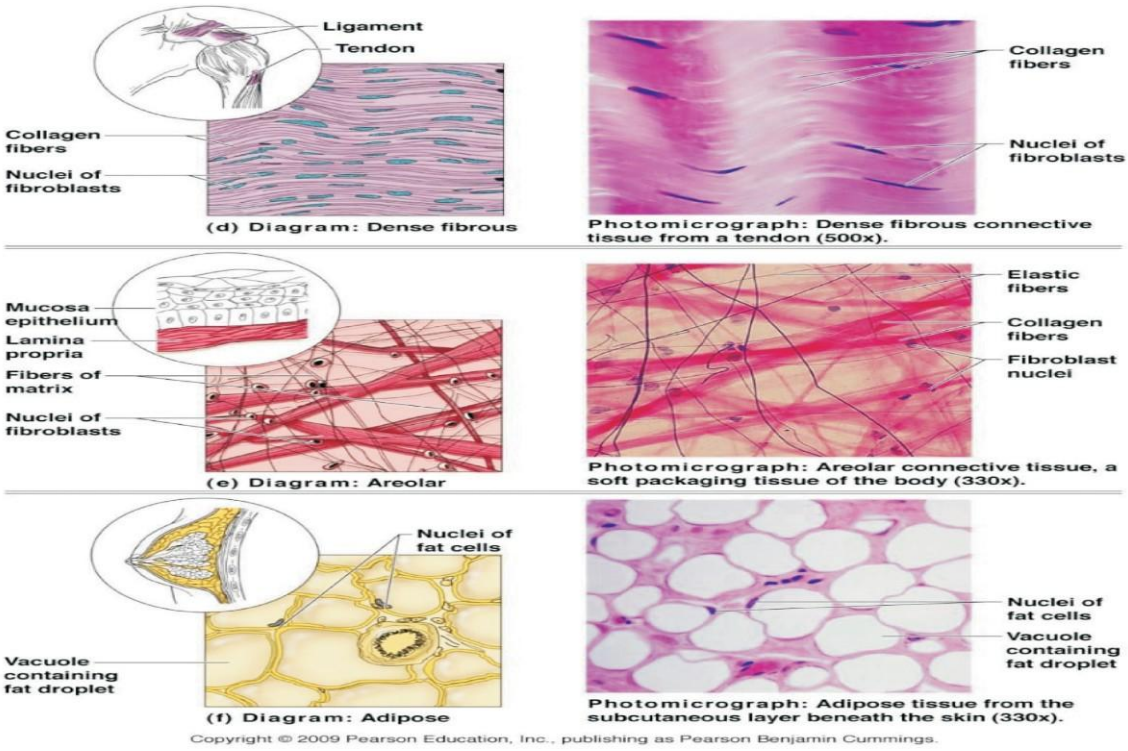

Copyright © 2009 Pearson Education, Inc., publishing as Pearson Benjamin Cummings.

तथा सभी अंगों को परस्पर बाँधने का कार्य करता है। अन्य ऊतकों की अपेक्षा शरीर में इस प्रकार के ऊतक अधिक पाए जाते हैं संयोजी ऊतकों में विभिन्न प्रकार की कोशिकाएँ जैसे मैक्रोफेज, मॉस्ट कोशिकाएँ, लसिका कोशिकाएँ, फाइब्रोसाइट्स व प्लाज्मा कोशिकाएँ आदि पाई जाती हैं। इन कोशिकाओं के चारो ओर इलास्टिक (Elastic Fibres) एवं रेटीकुलर तन्तु (Reticular Fibres) का जाल बना होता है। जिसमें अन्य प्रोटीन तत्व भी है।

संयोजी ऊतक निम्नलिखित प्रकार के होते हैं –

संयोजी ऊतक

(क) तरल अथवा संवहनीय संयोजी ऊतक	(ख) वास्तविक संयोजी ऊतक	(ग) कंकाल ऊतक

(क) तरल अथवा संवहनीय संयोजी ऊतक

(i) लसीका (Lymph) – लसीका

लसीका एक रंगहीन अर्द्ध ठोस (Sem-Solid) मैट्रिक्स होता है। जिसमें लसीका कोशिकाएँ (Lymphocytes)

अधिक संख्या में पायी जाती हैं। इनका अधिकांश भाग केन्द्रक से ही भरा रहता है। लसीका कोशिकाओं के अतिरिक्त लसीका में सूक्ष्म भित्तियों वाली नलिकाएं – लसीका वाहिनियाँ भी होती हैं, जिनमें वाल्ब भी रहते हैं और इन्हीं वाल्बों के कारण लसीका एक दिशा में बहती है।

इस प्रकार के ऊतक–लसीका पर्वों (Lymph nodes), प्लीहा (spleen), टान्सिल्स, एपेंडिक्स, छोटी एवं बड़ी आँतों की श्लेष्म कला, अस्थिमज्जा, थाइमस ग्रन्थि आदि में पाये जाते हैं। इसमें श्वेत रक्त कणिकाएँ (White Blood cells) corpuscles : WBCs) उपस्थित होती है। लसीका में रूधिर की अपेक्षा कम मात्रा में कैल्शियम, फॉस्फोरस, ऑक्सीजन पाया जाता है, परन्तु कार्बन डाइऑक्साइड और अवशिष्ट पदार्थ अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। लसीका में उपस्थित लिम्फोसाइट्स रोगाणुओं के कारण होने वाले संक्रमण से हमारी सुरक्षा करते है। साथ ही पोषक पदार्थों का परिवहन कर प्रतिरक्षा तंत्र (Immune System) का निर्माण करते हैं।

(ii) रूधिर (Blood)

रूधिर एक तरल संयोजी ऊतक है जो लाल रंग का गाढ़ा (कुछ चिपचिपा) द्रव है। यह प्लाज्मा एवं रक्त कणों से मिलकर निर्मित होता है। रक्त गैसों, पचे हुए भोजन, हार्मोन और उत्सर्जी पदार्थो को शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में संवहन करता है। शरीर के समस्त भागों में ऊर्जा का वितरण करता है।

रक्त का मुख्य कार्य हीमोग्लोबिन द्वारा वायुमण्डल में अवशोषित ऑक्सीजन (O_2) को शरीर के विभिन्न ऊतकों तक पहुँचाना है। इसके अतिरिक्त विमुक्त कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) को वापस उत्सर्जी अंगों में ले जाना है। रक्त रोगों से रक्षा एवं शरीर के तापमान को नियंत्रित करने में सहायता प्रदान करता है। श्वेत रक्त कणिकाएँ जीवाणुओं को नष्ट करने का कार्य करती है और प्लेटलेट्स रक्त का थक्का बनाने व घाव भरने का कार्य करती है।

(ख) वास्तविक संयोजी ऊतक

(i) जालवत संयोजी ऊतक (Reticular Connective Tissues)

जालवत संयोजी ऊतक की कोशिकाओं के मध्य कोशिका द्रव्य में कई विशिष्ट प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जो इनकी जालीनुमा संरचना का निर्माण करते है। इस तरह के ऊतक प्लीहा (Spleen), यकृत (Liver) और अस्थि मज्जा (Bone Marrow) में पाये जाते हैं।

(ii) रंजकीय संयोजी ऊतक (Pigmented Connective Tissues)

इस संयोजी ऊतक की कोशिकाएँ परस्पर संयोजित न होकर पृथक होती हैं। जिन्हें रंजक कोशिकाएँ कहा जाता है। ये ऊतक संरचनाओं को रंग (colour) देने का कार्य करते हैं। इनकी कोशिकाओं के मध्य पीले (Yellow), भूरे (Brown), काले (Black) एवं नीले (Blue)] मिलैनिन वर्णक (Melanin pigment) के कण पाए जाते हैं। ये ऊतक आँख में तथा मानव त्वचा में पाए जाते हैं।

(iii) शिथिल संयोजी ऊतक (Loose Connective Tissues)

यह एरिओलर संयोजी ऊतक के नाम से भी जाना जाता है एवं सम्पूर्ण शरीर में त्वचा, माँसपेशियों के मध्य, रक्त नलिकाओं के चारों ओर, उपकलाओं (Epithelium) के नीचे, श्वांसनली (Trachea) एवं अस्थि मज्जा में पाया जाता है।

इसमें असीमित आकार की मैक्राफेजज (Macrophages) कोशिकाएँ हानिकारक, निरर्थक एवं मृत कोशिकाओं का भक्षण करती है।

इसमें असीमित प्रकार की चपटी एवं बड़ी फाइब्रोसाइट्स (Fibrocytes) तथा फाइब्रोब्लास्ट्स (Fibroblasts) पायी जाती है। इन ऊतकों से मैट्रिक्स तथा तंतुमय प्रोटीन स्रावित होता है।

मैट्रिक्स में उपस्थित मास्टर कोशिकाओं से हिस्टामीन, हिपैरिन, सिरोडोनिन आदि स्रावित होती हैं। ये जलन, एलर्जी, प्रतिस्कदनकारी व सूजन आदि प्रतिक्रियाओं में भाग लेते हैं।

(ii) संयोजी ऊतक (Dense Connective Tissues)

इन्हें घने रेशेदार संयोजी ऊतक भी कहा जाता है इनके अधात्री (Matrix) में सामान्यतः फाइब्रोसाइट्स कोशिकाओं की संख्या अधिक होती है। ये मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं –

(I) स्नायु (Ligament) : यह श्वेत कोलेजन तंतुओं (White Collagen Tissues) से निर्मित होता है। यह दो अस्थियों को आपस में एक–दूसरे से जोड़ने का कार्य करते हैं। ये ऊतक बहुत लचीले एवं मजबूत होते हैं। स्नायु में अधात्री (Matrix) या तरल ऊतक (Tissues Fluid) अत्यंत निम्न होता है।

(II) कण्डरा (Tendon) : कण्डरा मजबूत तथा सीमित लचीलेपन वाले रेशेदार ऊतक होते हैं। जो अस्थियों को माँसपेशियों से जोड़ता है।

(ग) कंकाल ऊतक (Skeletal Tissues)

यह ऊतक मानव शरीर को यांत्रिक सहायता प्रदान करते हैं जो शरीर के आन्तरिक भागों में पाये जाते हैं। यह शरीर के विभिन्न भागों को जोड़ कर कंकाल तंत्र (Skeletal System) का निर्माण करते हैं। इनको दो प्रमुख भागों में विभाजित करते हैं।

(i) (Bone) : यह अन्त कंकाल (Inner Skeletal) का निर्माण कर शरीर को एक निश्चित आकार प्रदान करती है। यह ऊतक मजबूत और कठोर होता है। जो शरीर के अंगों एवं माँसपेशियों को सहारा प्रदान करती है। अस्थि कोशिकाएँ कठोर आधात्री (Matrix) में धँसी होती है। जो कैल्शियम तथा फॉस्फोरस से निर्मित होती हैं, इनकी कोशिकाओं को ऑस्टियोब्लास्ट (Osteoblast) भी कहा जाता है।

(ii) (Cartilage) : उपास्थि की कोशिकाओं के मध्य पर्याप्त स्थान होता है। जिसके चारो ओर द्रव से भरा हुआ एक आवरण होता है। जिसे लैकुना (Lacuna) कहा जाता है इसकी ठोस अधात्री (Matrix) प्रोटीन एवं शर्करा से

निर्मित होती है। यह अस्थियों के जोड़ों को समतल (Plane) बनाती है। उपास्थि नाक, कान और श्वासनली में भी उपस्थित होती है।

1.5.3. पेशी ऊतक (Muscular Tissues)

इसमें उत्तेजनशीलता (Irritablility), चालकता (Conductivity) तथा लचीलेपन (Elasticity) का गुण होता है। पेशीय ऊतक में अन्तरकोशिकीय पदार्थ बहुत कम होता है, जिससे तन्तु या कोशिकाएँ बहुत पास–पास सटी होती हैं। पेशीय ऊतक लंबी एवं पतली (संकरी) कोशिकाओं से निर्मित होती है। जिन्हें पेशीय रेशा या तंतु (Muscle Fibre) कहा जाता है। इन ऊतकों में संकुचन का विशिष्ट गुण होता है। यह एक विशेष प्रकार का प्रोटीन होता है जिसे संकुचन प्रोटीन कहते हैं।यह कंकाल के साथ मिलकर विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के लिए विशेष उत्तरदायी होती हैं। शरीर का लगभग 40-50% भाग पेशीय ऊतकों से बना होता है। पेशीय ऊतक के आन्तरिक भाग में पाये जाने वाल द्रव और केन्द्रक को क्रमशः सार्कोएप्लाज्म (Sarcoplasm) एवं सार्कोमेबर (Sarcomere) कहते हैं।

पेशी ऊतकों के कार्य

पेशीय ऊतक संकुचन के गुण के कारण अंगों को गति प्रदान करते हैं साथ ही अस्थि को सहायता प्रदान करते है। हृदय स्पंदन, रक्त व लसिका का प्रवाह व उत्सर्जी पदार्थो को संवहन (Vascular) में सहायता प्रदान करते है पेशीय कोशिकाएँ अतिक्रियाशील होती है। शरीर के कुल ताप का अधिकांश इनकी क्रियाशीलता के कारण ही उत्पन्न होता है। अतः इन पेशियों के संकुचन आदि से शरीर का तापमान संतुलित बना रहता है।

पेशी ऊतक तीन प्रकार के होते हैं –

(क) रेखित पेशी ऊतक

(Striped Muscular Tissue)

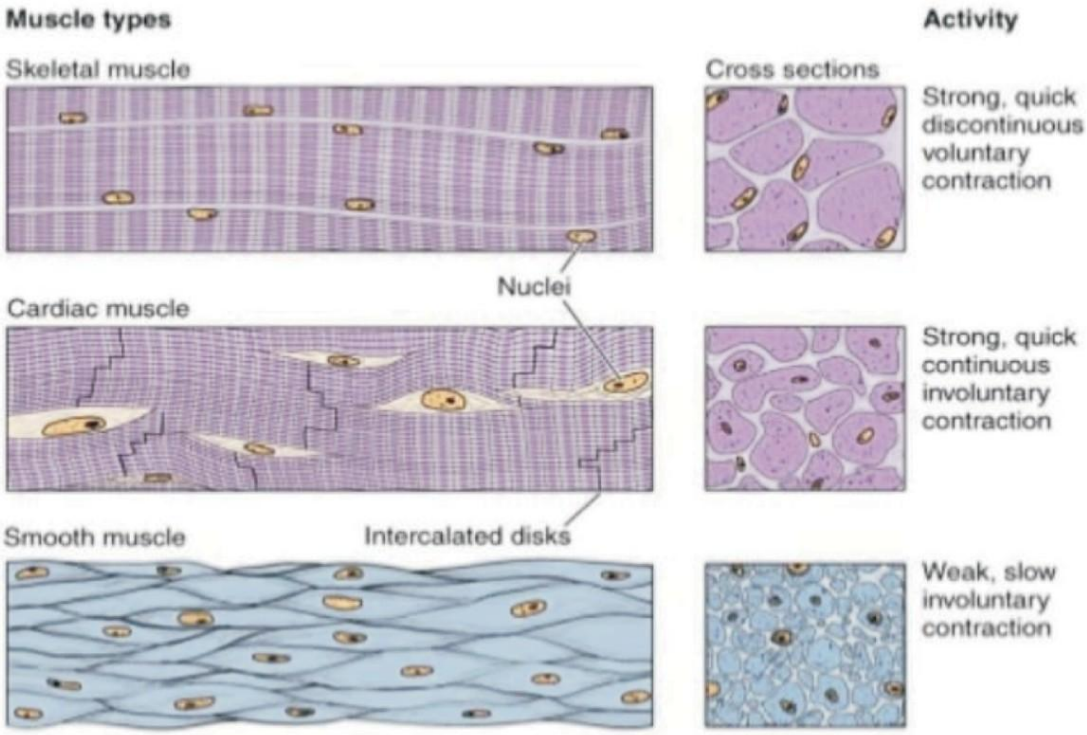

(ख) अरेखित पेशीय ऊतक

(Unstriped Muscle Tissue)

(ग) हृद पेशी (Cardiac Muscle)

(क) रेखित पेशीय ऊतक (Striped Muscular Tissue)

इस ऊतक की कोशिकाएँ लम्बी (Long) बेलनाकार (Cylindrical), शाखारहित (Branchless) एवं बहुकेन्द्रीय (Multinucleated) होती है।

इस प्रकार की पेशियाँ मुख्य रूप से हाथ, पैर, गर्दन, आँख तथा अन्य ऐसे अंगों में पायी जाती हैं जो हमारी इच्छा के अधीन कार्य करती हैं। ये पेशियाँ प्रायः अपने दोनों सिरों पर अस्थियों से जुड़ी होती है अतः इन्हें कंकाल पेशियाँ (Skeletal Muscles) भी कहा जाता है तथा अधिकांश पेशियाँ अपनी इच्छानुसार तंत्रिका तंत्र के नियंत्रण में कार्य करती हैं। इस कारण इन्हें ऐच्छिक पेशियाँ (Voluntary Muscles) भी कहा जाता है। ये पेशियाँ निरन्तर कार्य करने पर थक जाती है और इन्हें विश्राम की आवश्यकता होती है।

ख. अरेखित पेशीय ऊतक (Unstriped Muscle Tissue)

अरेखित पेशियाँ पतले, लम्बी व केन्द्रक युक्त तंतुमय कोशिकाओं से निर्मित होती है। इनमें हल्की–गहरी अनुप्रस्थ धारियाँ नहीं होती है इस कारण इन्हें अरेखित पेशियाँ कहते हैं। इसी प्रकार इनका संकुचन हमारी

इच्छानुसार नहीं होता इसलिए इन्हें अनैच्छिक पेशियाँ (Involuntary Muscles) कहते हैं। इनकी कार्यदक्षता पेशीय ऊतक से अधिक होती है।

ये पेशियाँ आहारनाल, श्वासनाल, पित्ताशय एवं नेत्र की आइरिस (Iris) एवं वृषण (Testicle) में पायी जाती है।

संरचना के आधार पर अरेखित पेशी ऊतकों में दो प्रकार के तन्तु पाए जाते हैं–

(i) प्राथमिक तन्तु (Primary Myofilament : ये मायोसिन के बने होते हैं।

(ii) द्वितीयक तन्तु (Secondary Myofilament : ये एक्टिन ट्रोपोमायोसिन तथा ट्रोपोमिन के बने होते हैं।

अरेखित पेशीय ऊतकों के प्रकार

एक इकाई (Single Unit) बहु इकाई (Multi Unit)

यह खोखले अंगों की दीवारों (भित्तियों) जैसे पाचन नाल, गर्भाशय, मूत्राशय व मूत्रनाल में पायी जाती हैं।

ये त्वचा, आँख की आइरिस तथा रूधिर नलिकाओं की दीवारों पर पायी जाती है।

ग. हृदय पेशीय (Cardiac Muscles)

ये पेशियाँ छोटे बेलनाकार तथा शाखान्वित पेशीय तंतुओं से निर्मित होती हैं तथा हृदय भित्तियों का निर्माण करती हैं। संरचना में यद्यपि ये रेखित पेशियों के समान होती हैं, परन्तु कार्यात्मक रूप से अरेखित पेशियों की भाँति अनैच्छिक होती हैं।

यह हृदय में लयबद्ध संकुचन और प्रसार करती है और इसी से शरीर में रूधिर का परिवहन होता है। ये सामान्यतः फेफड़ों की नसों (Pulmonary Veins) में पायी जाती हैं।

1.5.4 तंत्रिका ऊतक (Nervous Tissues)

तंत्रिका ऊतक की कोशिकाएँ बहुत शीघ्र उत्तेजित होती हैं और उत्तेजना को सम्पूर्ण शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाती हैं। तंत्रिकाओं का संवहन हमें इच्छानुसार अपनी पेशियों को गति करने में सहायक होता है। मस्तिष्क, मेरूरज्जु तथा तंत्रिकाएँ सभी तंत्रिका ऊतकों से निर्मित होती हैं।

एक तंत्रिका ऊतक की कोशिकाओं को तंत्रिका कोशिका या न्यूरॉन (Neurons) कहते हैं, जो तंत्रिका ऊतक की मुख्य इकाई है जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता है। यह शरीर की सबसे लम्बी कोशिका है।

तंत्रिका कोशिकाओं के तीन प्रमुख भाग हैं –

(i) तंत्रिका कोशिकाएँ (Nerve Cells or Neurons)

(ii) तंत्रिका तन्तु (Nerve Fiber)

(iii) न्यूरोग्लिया (Neuroglia)

(i) तंत्रिका कोशिकाएँ– तंत्रिका कोशिका (Nerve Cells) के निम्नलिखित तीन भाग होते हैं।

(a) कोशिकाकाय (साइटॉन)– यह तंत्रिका कोशिका का मुख्य भाग है, जिसमें एक केन्द्रक व चारों ओर कोशिकाद्रव्य में प्रोटीनयुक्त निसिल्स के रंगीन कण होते हैं।

(b) वृक्षिकाएं (डेण्ड्रॉन)– ये कोशिकाकाय से निकले प्रवर्धी (डेण्ड्राइट्स) है जिनसे एक से अधिक डेण्ड्रॉन निकलते हैं।

(c) तंत्रिका या एक्सॉन – साइटॉन से न्यूरीलेमा में बंद लम्बा तथा बेलनाकार प्रवर्धी निकलता है। जो एक–न्यूरान से दूसरे न्यूरॉन तक संवेदनाएँ या संदेशवाहक का कार्य करता है।

2. तंत्रिका तन्तु (Nervous Fibers)

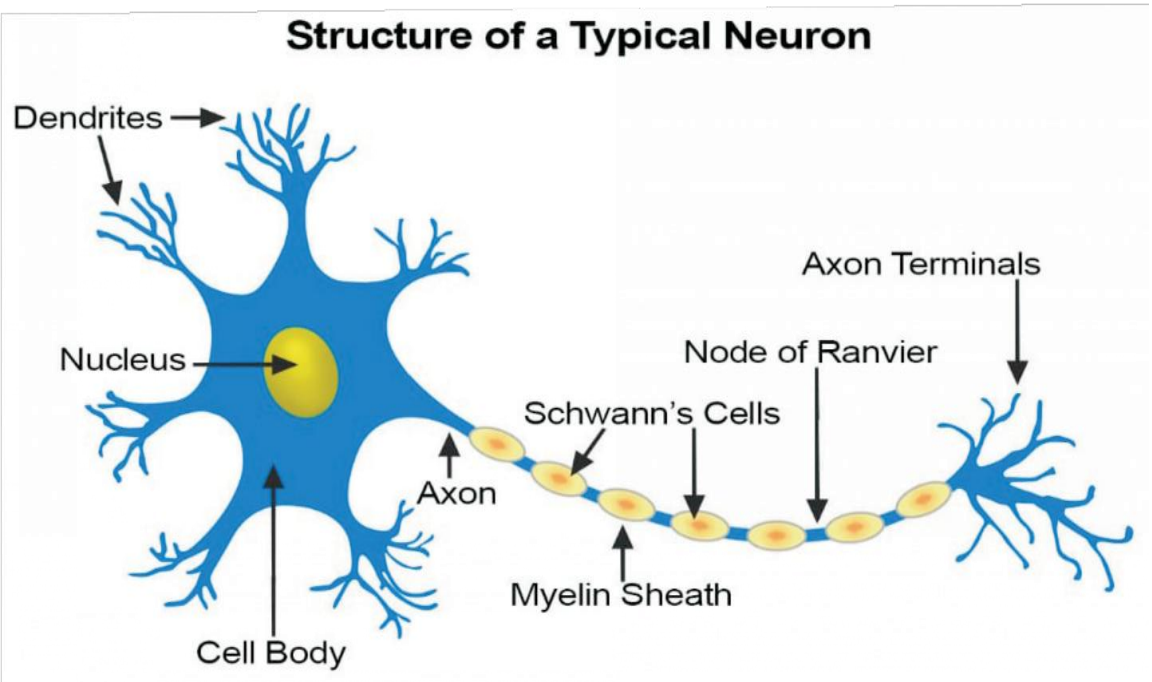

संयोजी ऊतक के द्वारा बहत से तंत्रिका रेशे एक साथ मिलकर एक तंत्रिका का निर्माण करते हैं। यह मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। संवेदी तन्तु (Sensory Fiber), आवेग (Impulse) को ग्राही अंगों (Receptors) से मस्तिष्क या मेरूरज्जु में ले जाते हैं और इसके विपरीत प्रेरक तन्तु (Motor Fiber) आवेग को मस्तिष्क या मेरूरज्जु से कार्यकारी (Effector) अंगों में ले जाते हैं।

3. न्यूरोग्लिया (Neuroglia) यह एक विशेष प्रकार की तंत्रिकीय कोशिक है, जो केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (CNS) में यूरॉन के साथ उपस्थित होती है।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

(1) शरीर की सूक्ष्मतम इकाई का नाम है :

(अ) कोशिका (ब) ऊतक (स) अंग (द) संस्थान

(2) समान गुण वाली एक ही आकार की तथा एक ही कार्य करने वाली कोशिकाअें के समूह को कहते हैं :

(अ) ऊतक (ब) अणु (स) अंग (द) संस्थान

(3) ऊतक कितने प्रकार के होते हैं :

(अ) 3 (ब) 4 (स) 6 (द) 7

(4) दो या अधिक तरह के ऊतक एक साथ मिलकर बनाते हैं :

(अ) अंग (ब) संस्थान (स) कोशिका (द) इनमें से कोई नहीं

(5) निम्न में से कौन सा ऊतक का भेद है :

(अ) उपकला एवं संयोजी ऊतक (ब) पेशी ऊतक

(स) तंत्रिका ऊतक (द) उपर्युक्त सभी

1.6 सारांश

मानव शरीर अनेक कोशिकाओं के समूह से बना होता है। कोशिकाएँ आकार व आकृति तथा क्रियाएं/कार्य की दृष्टि से भिन्न होती है। मानव शरीर की कोशिका केन्द्रक व कोशिकाद्रव्य से बना होता है। कोशिका में कोशिकाद्रव्य कोशिका झिल्ली द्वारा घिरा होता है। कोशिका झिल्ली विभिन्न प्रकार के आयनों तथा अणुओं के कोशिका के अन्दर आने–जाने पर नियंत्रण रखती है। कोशिका के कोशिकाद्रव्य में कोशिकांग – लाइसोसोम, माइटोकॉण्ड्रिया, राइबोसोम, तारककाय, रसधानियाँ, माइक्रोबॉडीज व अन्तः प्रद्रव्यी जालिका पाए जाते हैं। सभी कोशिकांग विभिन्न एवं विशिष्ट प्रकार के कार्य करते हैं। केन्द्रक में केन्द्रिका व क्रोमेटिन का तंत्र मिलता है। यह अंगों के कार्य को ही नियंत्रित नहीं करता, बल्कि अनुवांशिकी में प्रमुख भूमिका अदा करता है अतः कोशिका जीवन की संरचनात्मक व क्रियात्मक इकाई होती है।

ऊतक एक ही प्रकार की संरचना एवं कार्य करने वाली कोशिकाओं के समूह से बनते हैं। बहुत से ऊतक मिलकर अंगों का निर्माण करते हैं। मानव शरीर में मुख्यतः चार प्रकार के ऊतक– उपकला ऊतक, संयोजी ऊतक, पेशी ऊतक तथा तंत्रिका ऊतक होते हैं। ये ऊतक जल एवं पोषक पदार्थों के अवशोषण में सहायता करते हैं। ये अंगों की चोट को ठीक करने, संक्रमण तथा रसायनों के हानिकारक प्रभाव से रक्षा करते हैं। शरीर से उत्सर्जी पदार्थो की निकासी में सहायता करते हैं। ऐसे बहुत से कार्य ऊतकों के द्वारा मानव शरीर में संचालित किए जाते हैं। निष्कर्ष रूप में उपर्युक्त विवेचन से आप समझ गए होंगे कि किस प्रकार से मानव शरीर निर्मित हुआ है।

1.7 शब्दावली

कोशिका – मानव शरीर की मूलभूत इकाई

ऊतक – कोशिकाओं का समूह

कोशिकांग – कोशिका के अन्दर स्थित विशिष्ट संरचात्मक घटक

आधात्री – अर्द्ध–चन्द्राकार

ऐच्छिक पेशियाँ – जिन पेशियों की क्रियाओं पर नियंत्रण रहता है।

अनैच्छिक पेशियाँ – जिन पेशियों की क्रियाओं पर नियंत्रण नहीं रहता है।

1.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. (अ) कोशिक

2. (अ) ऊतक

3. (ब) 4

4. (अ) अंग

5. (द) उपर्युक्त सभी

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्रिपाठी : नरेन्द्र नाथ (2004)– सरल जीवन विज्ञान, भाग–2, कोलकाता : शेखर प्रकाशन।
2. डॉ0 रमेश गुप्ता, डॉ0 एम. पी. कौशिक (2019) आधुनिक जीवविज्ञान, भाग–2 प्रकाश पब्लिकेशन्स, मुज़फ्फरनगर, (उ0प्र0)।
3. ब्रह्मवर्चस मानव शरीर रचना एवं क्रियाविज्ञान, प्रकाशन श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार।
4. डॉ. मुकुन्द स्वरूप वर्मा (2013) मानव–शरीर–रचना–विज्ञान प्रकाशन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
5. गुप्त, प्रो0 अनन्त प्रकाश (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन, आगरा।
6. शर्मा डॉ0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार रेलवे रोड, रोहतक।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. – कोशिका की संरचना एवं कार्यो का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 2. – ऊतक की संरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 3. – निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –

(क) जीवद्रव्य

(ख) केन्द्रक

(ग) पेशी ऊतक

इकाई – 2 अस्थियाँ व संधियाँ – संरचना, प्रकार व कार्य

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 कंकाल तंत्र – एक परिचय

2.4 कंकाल के कार्य

2.5 अस्थियों की संरचना एवं प्रकार

- 2.5.1 अक्षीय कंकाल
- 2.5.2 उपांगीय कंकाल

2.6 अस्थि संधियों की संरचना, प्रकार एवं कार्य

- 2.6.1 पूर्ण सन्धि
- 2.6.2 अपूर्ण सन्धि
- 2.6.3 अचल सन्धि

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 : प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने मानव शरीर की सूक्ष्मतम इकाई कोशिका तथा एक ही प्रकार की संरचना एवं कार्य करने वाले कोशिकाओं के समूह ऊतक के विषय में अध्ययन किया। मानव शरीर विभिन्न तंत्रों से मिलकर बना है। शरीर का एक अति महत्वपूर्ण संस्थान कंकाल तंत्र है। मानव शरीर का ढाँचा को अस्थि पंजर या कंकाल तंत्र कहते हैं। मानव कंकाल शरीर की आन्तरिक संरचना होती है। यह जन्म के समय लगभग 300 हड्डियों से बना होता है, शिशुओं में 213 हड्डियाँ पायी जाती हैं और युवास्था में कुछ हड्डियों के संगठित (जुड़ने) होने से यह 206 तक सीमित हो जाती हैं सभी हड्डियाँ एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं। हड्डियों के ऊपर मांसपेशियाँ होती हैं जिनकी सहायता से हड्डियों के जोड़ों को हिलाया डुलाया जाता है। हड्डियाँ एवं मांस पेशियाँ शरीर के आन्तरिक अंगों की सुरक्षा करती हैं।

संधि या जोड़ शरीर के उन स्थानों को कहते है, जहाँ दो अस्थियाँ (हड्डियाँ) एक दूसरे से मिलती हैं, जैसे कंधे, कुहनी आदि। इनका निर्माण शरीर में गति सुलभ करने और यांत्रिक आधार हेतु होता है। प्रस्तुत इकाई में आप मानव कंकाल तंत्र व मानव संधियों की संरचना व कार्य का अध्ययन करेंगे तथा ये भी जानेंगे कि ये कितने प्रकार की होती हैं।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र के विषय में सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- अस्थियों की संरचना, उनके स्थान एवं स्वरूप को जान सकेंगे।
- अस्थि पंजर में अस्थियों के आकार, उनके संगठन के विषय में जान सकेंगे।
- अस्थियों के विभिन्न कार्यों की विवेचना कर सकेंगे।
- संन्धियों की संरचना, उनके स्थान एवं कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

2.3 कंकाल तंत्र– एक परिचय

क्या आपने कभी सोचा है कि क्या आपको आकार एवं चलने हिलने में कौन मदद करता है ? हमारे शरीर को और अधिक जाने कैसे हमारे नाजुक अंग हृदय, मस्तिष्क और फेफड़े सुरक्षित हैं और यह ढांचा किसका बना है। कंकाल तत्र में शरीर की सभी हड्डियां शमिल है और इसमें हड्डियों के जोड़ भी आते हैं। कंकाल भीतरी अंगों की सुरक्षा करता है यह शरीर को आकार देता है। इसके कारण खड़े रहने व चलने में मदद मिलती है। शरीर के लिए जरूरी खनिज भी इन्हीं हड्डियों में जमा होते हैं और इन्हीं में रक्तकणों का भी निर्माण होता है। हमारी मांसपेशियां हड्डियों के सहारे खिंचती है और चलने फिरने में हमारी मदद करती हैं। कंकाल का कवच न हो तो सिर और छाती

पर पड़ा मामूली सा धक्का भीतरी अंगों को बहुत ज्यादा नुकसान पहुंचा सकता है। कंकाल तंत्र की हड्डियां कई मायनों में लोह व स्टील से भी ज्यादा मजबूत होती हैं। हड्डियां एक कठोर संरचना एक संयोजी ऊतक है। उपस्थि एक लचीला संयोजी ऊतक जो नाक और कान की तरह हड्डियों और अन्य क्षेत्रों के बीच जोड़ों में मौजूद हैं। हमारा शरीर अस्थियों, उपास्थियों, शिरा (टेंडन), स्नायु/अस्थिरज्जु (लिंगमेंट), संयोजी ऊतकों से निर्मित होती है। सभी अस्थियाँ विभिन्न प्रकार की सन्धियों (जोड़ों) द्वारा एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। मानव शरीर की यह आधारी संरचना कंकाल तंत्र (Skeletal System) कहलाती है।

कोशिकाओं से नई हड्डियों के बनने एवं जुड़ने की प्रक्रिया को अस्थि भवन (Bone Development) कहा जाता है। सामान्यतः 20-25 वर्ष की आयु में सभी हड्डियों का निर्माण हो जाता है। अस्थि भवन परीक्षण (Bone Development test) द्वारा मनुष्य की आयु का पता लगाया जाता है।

जीव जन्तुओं के शरीर में उपस्थिति के आधार पर, कंकाल दो प्रकार के होते हैं–

1. बाह्य कंकाल (Exoskeleton)

शरीर के बाहरी परत में पाये जाने वाले कंकाल को बाहरी कंकाल कहते हैं। ये मूल रूप से अपरिपक्व बाहरी त्वचा (ectoderm) या मध्य जनस्तर (Mesoderm) से बनता है। यह भीतरी अंगों की रक्षा करता है और उसका संरक्षण करता है। यह मृत होता है। जैसे मछलियों के शल्क, कछुए की बाहरी सख्त परत, पक्षियों के पंख आदि।

2. अन्तः कंकाल (Endoskeleton)

यह कंकाल मानव शरीर के भीतर पाया जाता है और यह मध्यजनस्तर (Mesoderm) से बनता है। ये लगभग सभी कशेरूकी जंतुओं में पाया जाता है और शरीर की मुख्य संरचना का निर्माण करता है।

संरचना के आधार पर आंतरिक कंकाल दो मूल घटकों से बना होता है।

(i) अस्थि (Bone)

अस्थि कोलैजन तन्तुओं (Collagen Fibres) तथा कैल्शियम व मैग्नीशियम लवणों से निर्मित ठोस एवं कठोर संयोजी ऊतक है। सबसे पहले अस्थियों का निर्माण उपास्थियों से होता है। इस प्रक्रिया को अस्थि निर्माण (Ossification) कहा जाता है। अस्थियों के निर्माण में दो प्रकार की कोशिकाएं भाग लेती हैं– अस्थिकोरक (Osteoblast) तथा अस्थिशोषक (Osteoclast)। अस्थिकोरक से अस्थियों का बाह्य ठोस भाग तथा अस्थिपोषक में मज्जा गुहा (Marrow cavity) का निर्माण होता है। अस्थियों का 38% भाग ओसीन (Ossein) नामक प्रोटीन से तथा 62% भाग अकार्बनिक लवणों (मुख्यतः कैल्शियम, फॉस्फेट तथा मैग्नीशियम फॉस्फेट) का बना होता है, जिसके कारण अस्थियाँ ठोस तथा कठोर होती हैं।

अस्थियों के ऊपर तंतुमय संयोजी ऊतकों का एक आवरण उपस्थित होता है, जिसे परि–अस्थिका (Periosteum) कहा जाता है। यह परि–अस्थिक स्नायु (Ligament) अथवा कण्डरा (Tendon) द्वारा माँसपेशियों

से जुड़ी रहती हैं।

अस्थि मज्जा (Bone Marrow)

मोटी और लंबी अस्थियों में एक खोखली गुहा (Hollow Cavity) पायी जाती है। जिन्हें अस्थि या मज्जा गुहा (Marrow Cavity) कहते हैं। इस गुहा में एक तरल पदार्थ पाया जाता है। इस पदार्थ को अस्थि मज्जा (Bone Marrow) कहते हैं।

(ii) उपास्थि (Cartilage)

उपास्थि मानव शरीर में पाया जाने वाला लचीला संयोजी ऊतक है। यह हमारी मज्जा में स्थापित कॉन्ड्रोसाइट्स कोशिकाओं से बने होते हैं। कान की हड्डी, नाक की हड्डी, अस्थियों के जोड़, आदि उपास्थि के बने होते हैं।

उपास्थि की संरचना को देखे तो ये कोलेजन या एलॉस्टिन के बने होते हैं। उपास्थि में रक्त वाहिकाएँ (Blood vessels) तथा तंत्रिकाएँ (Nerves) अनुपस्थित होती हैं। इसलिए ये असंवेदनशील होती हैं। उपास्थि के ऊपर पेरीकॉण्ड्रियम (Perichondrium) नामक एक तंतुमय झिल्ली (Fibrous Membrane) का आवरण होता है जो उपास्थि के क्षतिग्रस्त होने की स्थिति में इसके पुनर्निर्माण (Regeneration) में अत्यन्त सहायक होती है।

उपास्थि में कैल्शियम लवण अनुपस्थित होते हैं तथा उनके स्थान पर कॉण्ड्रोइटिन (chondroitin) नामक लोचशील पदार्थ पाया जाता है, जो उपास्थि को लोचशीलता प्रदान करता है।

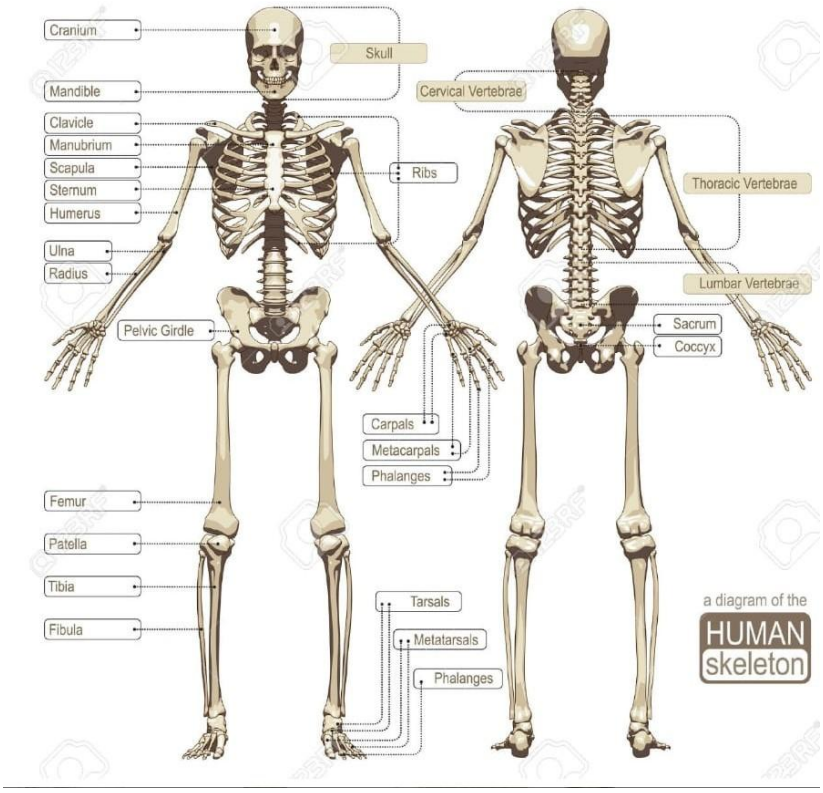

2.4 कंकाल के कार्य (Functions of Skeleton)

1. कंकाल एक ढांचे (Framework) का काम करता है तथा कोमल ऊतकों को सहारा देता है।
2. यह शरीर के अंदरूनी कोमल अंगों की रक्षा करता है जैसे मस्तिष्क की रक्षा कपालीय हड्डियां करती हैं। इसी तरह हृदय एवं फेफडों की रक्षा पर्शुकाएँ (Ribs), सुषुम्ना रज्जु (Spinal cord) की रक्षा कशेरूक दण्ड (Vertebral column) तथा मूत्राशय, मलाशय आदि अंगों की रक्षा श्रोणी (Pelvis) की हड्डियाँ करती है।
3. यह पेशियों की मदद से अस्थि–संधियों (हड्डी के जोड़) को स्वतंत्र गति करने की क्षमता प्रदान करता है।
4. अस्थि ऊतक शारीरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक विभिन्न खनिजों (मुख्यतः कैल्शियम एवं फॉस्फोरस) तथा वसा के भण्डार क्षेत्र (Reservoir) होते हैं।
5. यह अस्थि मज्जा (bone Marrow) में रक्त कोशिकाओं का निर्माण करते हैं।

2.5 अस्थियों की संरचना एवं प्रकार

अभी तक आपने हड्डियों के प्रकार को अपनी उपस्थिति और संरचना के आधार पर जाना इस भाग में आप जानेगें कि मानव शरीर के अन्तर्गत कौन–कौन सी हड्डियाँ है और इन्हें किस प्रकार से पहचाना जा सकता है। हमारे कंकाल में कुल 206 हड्डियां हैं। ये चार बुनियादी आकारों में मिलती हैं लम्बी हड्डियां जैसे बांह की हड्डी, छोटी हड्डियां जैसे कलाई एवं टखने की हड्डी, चपटी हड्डियां जैसे खोपड़ी और कंधे की हड्डी और अनियमित आकार की हड्डियां जैसे रीढ़ की हड्डी। कंकाल तंत्र दो हिस्सों में बंटा है पहला अक्षीय कंकाल, जिसकी हड्डियां लम्बाई में जुंड़कर शरीर की लम्बी धुरी बनाती है जैसे खोपड़ी, मेरूदण्ड और छाती की हड्डियां। और दूसरा है बाहरी कंकाल। बाहरी कंकाल में कन्धे की हड्डियां, शरीर के ऊपरी भाग की बाहरी हड्डियां, कूल्हे और निचले भाग की हड्डियां शामिल हैं। ऊपरी भाग की बाहरी हड्डियां कन्धे की हड्डियों के सहारे अक्षीय कंकाल से जुड़ती हैं। कूल्हे की हड्डियां शरीर के निचले भाग की हड्डियों का अक्षीय कंकाल से जोड़ती हैं।

मानव कंकाल तंत्र को मुख्यतः दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है –

(1) अक्षीय कंकाल तंत्र

(2) उपांगीय कंकाल तंत्र

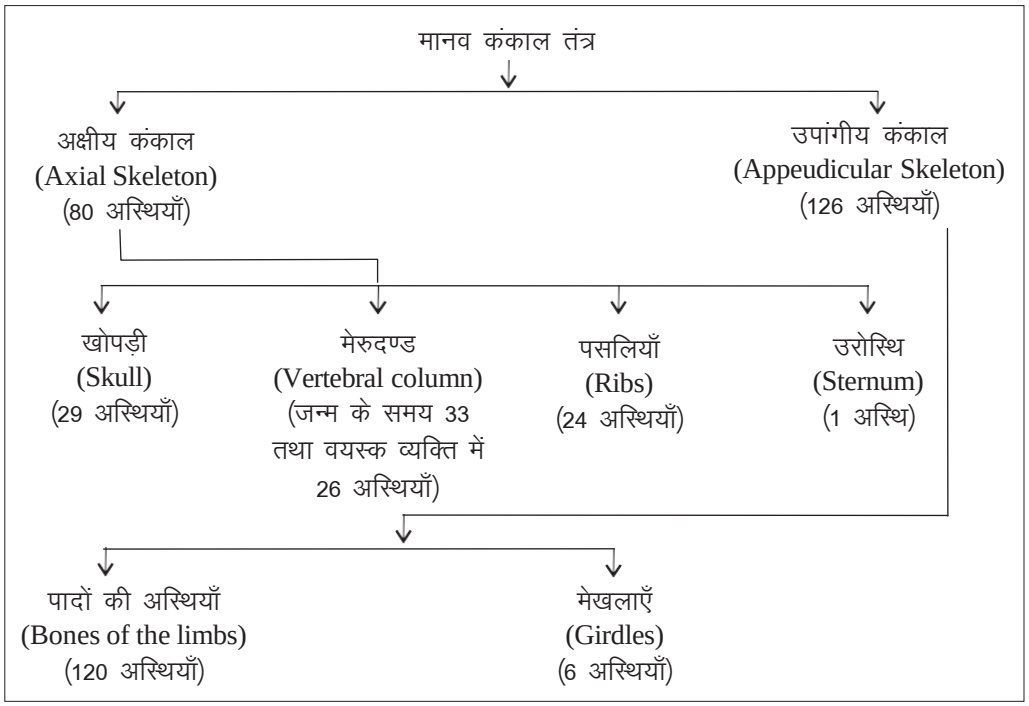

2.5.1 अक्षीय कंकाल तंत्र (Axial Skeleton)

संरचना की दृष्टि से अक्षीय कंकाल को चार भागों में विभाजित किया गया है– (i) खोपड़ी (ii) मेरूदण्ड (iii) पसलियाँ (iv) उरोस्थि

(i) खोपड़ी (Skull)

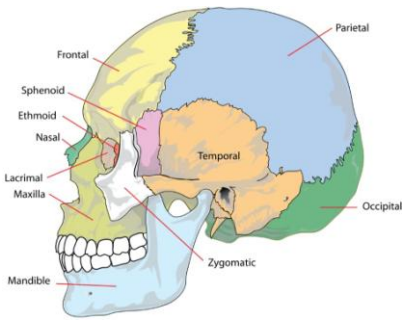

खोपड़ी मानव कंकाल का सबसे ऊपरी भाग है। खोपड़ी कपाल और चेहरे की हड्डियों से बनी है। कपाली खोपड़ी का सबसे कठोर हस्सिा है और यह मस्तिष्क को संरक्षित करता है चेहरे की हड्डियां चेहरे को आकार देती हैं। खोपड़ी की सभी हड्डियां फर्म है और यह हिलती नहीं है। केवल खाने व बात करने के लिए हमारे निचले जबड़ों की हड्डियां मदद करती हैं। चेहरे की हड्डियों द्वारा गठित दो खांच (Sockets), आंखो की रक्षा करती है। मानव खोपड़ी में कुल 29 अस्थियाँ होती हैं। इनमें से 8 अस्थियाँ परस्पर संयुक्त होकर कपाल (cranium) का निर्माण करती हैं जो मस्तिष्क को सुरक्षा प्रदान करता है। 14 अस्थियाँ चेहरे की आधारी संरचना का निर्माण करती हैं तथा 6 अस्थियाँ दोनों कानों के भीतर स्थित होती हैं, जिन्हें कर्णास्थियाँ (Ear ossicles) कहते हैं। इनके अतिरिक्त निचले जबड़े के नीचे घोड़े की नाल के आकार की कण्ठिका अस्थि (Hyoid Bone) होती है।

मानव खोपड़ी में अस्थियों का विवरण

(अ)	कपाल	ऑक्सिपिटल	1	
	(Cranium)	पैराइटिल	2	
		फ्रॅण्टल	1	8
		टेम्पोरल	2	
		स्फीनॉइड	1	
		एथमॉइड	1	
(ख)	चेहरे की अस्थियाँ	नेजल	2	
	(Facial Bones)	वोमर	1	
		टरबाइनल	2	14
		लैक्राइमल	2	
		जाइगोमैटिक	2	
		पैलेटाइन	2	
		मैक्सिला	2	
		मेंडिबल	1	
(स)	कर्ण अस्थियाँ	मैलियस	2	
	(Ear Ossicles)	इंकस	2	6
		स्टेपीज	2	
(द)	हाइऔइड अस्थि	हाइऔइड	1	1
	(Hyoid Bone)			
	खोपड़ी में कुंल अस्थियाँ			29

(अ) कपाल (Cranium)- कपाल में कुल आठ हड्डियां हैं जो नीचे दिये गये भागों में विभाजित की गयी हैं–

(i) पूर्व कपालास्थि (Frontal Bone) - यह ललाट के सामने की ओर रहती है। यह संख्या में एक होती है। इसे 'सम्मुख कपालास्थि' अथवा 'ललाटास्थि' भी कहते हैं। यह सिर की सम्पूर्ण अस्थियों के सामने अग्रभाग में स्थित है। इसके दो भाग होते हैं। ऊपरी गोल भाग को पट्टक (squama) तथा निम्न भाग को 'पिण्ड'; कहा जाता है। यह अस्थि मस्तिष्क को ऊपर से ढँके रखती है तथा ललाट का निर्माण करती है।

(ii) पश्चकपालास्थि (Occipital Bone) - यह हड्डी सिर के सबसे पिछले भाग में स्थित होती है। यह भी संख्या में एक होती है। इसके भी दो भाग– पट्टक तथा पिण्ड होते हैं। इन दोनों के मध्य में एक बहुत बड़ा गोल छिद्र होता है, जिसे –महाछिद्र' अथवा 'महाविवर' (Foramen Magnum) कहा जाता है। पट्टक (squama) के मध्य में दो छोटी गोल अस्थि का उभार होता है, जिसे 'कपाल गुलिका' (Occipital Tubercle) कहा जाता है। इस गुलिका से एक बहुत मोटा तथा दृढ़ तन्तु शुरू होता है, जो रीढ़ की हड्डियों (कशेरूकाओं) के ऊपर की श्रेणियों में जुड़ा रहता है।

(iii) पार्श्व कपालास्थि (Parietal Bones) - ये अस्थियाँ संख्या में दो होती हैं तथा अगली कपालास्थि (Frontal Bone) तथा पिछली कपालास्थि (Occipital bone) के बीच में रहती हैं। ये आकार में गोल है। ये दोनों अस्थियाँ एक दूसरे से मिलकर एक गुम्बद जैसा बनाती हैं, जो प्रमस्तिष्क के बगल के हिस्से को भलीभाँति ढककर रखता है। ये दोनों अस्थियाँ शैशवास्था में प्रायः मुलायम रहती हैं तथा 5-6 महीने तक आपस में नहीं जुड़ पाती, लेकिन बाद में जुड़ कर कठोर हो जाती हैं।

(iv) शंखास्थि (Temporal Bone) - यह अस्थियाँ सिर के दोनों ओर बगल में स्थित होती हैं। यह संख्या में दो होती हैं। इसके ऊपर पार्श्व कपालास्थि (Parietal bone), सामने ललाटस्थि (Frontal bone), पीछे पश्च कपालास्थि (Occipital Bone) तथा नीचे अधोहन्वास्थि (Mandible) रहती है। इसमें दो छिद्र होते हैं– एक कान का छिद्र तथा दूसरी नीचे की ओर का छिद्र, जिसे (carotid canal) कहा जाता है और जिसके द्वारा (Internal Carotid Artery) मस्तिष्क के भीतर प्रवेश करती है।

(v) कीलकास्थि अथवा जतूकास्थि (Sphenoid Bones) - यह चौड़ी अस्थि मस्तिष्क के आधार पर दोनों शंखास्थियों (Temparal bone) के भीतर पर फैलाए हुए चमगादड़ की तरह रहती है। यह संख्या में एक होती है।

(vi) शैविरास्थि अथवा झर्झरास्थि (Ethmoid Bone) - यह अस्थि नाक के ऊपर तथा आँख के पीछे की ओर होती है।

(ब) चेहरे की अस्थियाँ (Facial Bones) - हमारा मानवीय चेहरा कुल चौदह हड्डियों के मिलने से बना है। जोकि निम्न हैं –

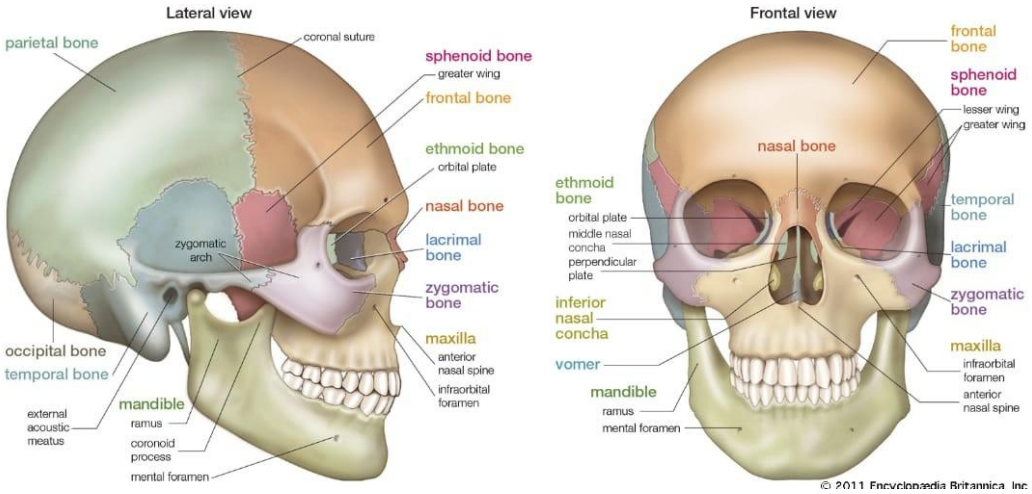

ऊर्ध्वहन्वास्थियाँ (Maxillary Bones) - ये चेहरे की सबसे बड़ी असमान आकार की हड्डियाँ होती हैं जो मध्य रेखा में एक–दूसरे से जुड़कर ऊपर वाले जबड़े को बनाती हैं। प्रत्येक ओर की ऊर्ध्वहन्वास्थि (Maxilla) में एक खोखली काय (body) होती है जिसमें वायुविवर (Maxillary sinus) स्थित होता है तथा मैक्सिला की इस खोखली काया में खोपड़ी की अग्र भाग की ललाटीय (Frontal) गण्डास्थि (gygomatic) तालु (Palatine) और दन्त उलूखलीय (alveolar) नामक उभार (process) मौजूद रहते हैं। वयस्क होने से पहले चेहरे की हड्डी की लम्बाई मैक्ज़िला (Maxilla) की वृद्धि होने से ही बढ़ती है।

(i) अधोहन्वास्थि (Mandible) - यह चेहरे की दूसरी हड्डी है। यह निचले जबड़े की अकेली (Single) हड्डी है जो ठुड्डी (chin) का निर्माण करती है। यह चेहरे की सबसे बड़ी एवं मजबूत हड्डी होती है। (मैक्ज़िला को छोड़कर)। इसके दाएं एवं बाएं भाग जन्म के पहले या दूसरे वर्ष के दौरान केन्द्र में स्थित संयोजिका (Symphysis Menti) पर एक साथ जुड़ जाते हैं।

कान की अस्थिकाओं (Ossicles) और गले की अस्थि (hyoid bone) को छोड़कर खोपड़ी की हड्डियों में सिर्फ यह एक गतिशील अस्थि होती है।

(ii) कपोलास्थियाँ या गण्डास्थियाँ (Zygomatic or Malar Bones) - यह चेहरे की तीसरी हड्डी है। कपोलास्थियों के द्वारा ही गालों (Cheeks) के उभार बनते है। इनसे नेत्र गुहाओं के तल तथा किनारे की भित्तियों का कुछ भाग बनता है। इनसे टैम्पोरल उभार निकलता है, जो टैम्पोरल अस्थि के गण्डास्थिक उभार से जुड़कर गण्डास्थिक आर्च बनता है।

(iii) ताल्वास्थियाँ (तालू की अस्थियाँ) (Palatine bone) - यह चेहरे की चौथी हड्डी है। यह अस्थियाँ Maxilla के पीछे होती है तथा कठोर तालू का पिछला भाग, नासिका गुहा का तल, पार्श्वीय भित्तियों और नेत्रगुहा का तल वाला भाग बनाती है। कठोर तालू पेलेटाइन उभार एवं मैक्सिज़लरी अस्थियों से बना होता है।

(iv) नासास्थियाँ (Nasal Bones) - यह चेहरे की पांचवी हड्डी है। ये छोटी–छोटी दो अस्थियाँ होती हैं जो नाक के

ऊपरी भाग के पुल (bridge of the nose) को बनाती है। इसके अलावा ये फ्रन्टल, इथमॉइड और मैक्जिलरी अस्थि के साथ जुड़ी होती है तथा निचली नासा (उपास्थि) कार्टिलेज से सम्बंद्धित रहती हैं।

(v) सीरिकास्थि (Vomer Bone) - यह चेहरे की छठी हड्डी है। यह संख्या में एक ही होती है। यह अस्थि दोनों नासिका गुहाओं के बीच नासिका पटल (nasal septum) का ज्यादातर भाग बनाती है। अगर यह अस्थि नासिका गुहा में एक तरफ ज्यादा खिसक जाती है तो उस अवस्था को डेवीटेड पटल (deviated septum) कहा जाता है। श्लेष्मिक कला (Mucosa) में सूजन या जलन पैदा होने पर एक या दोनों नासिका गुहाएं बन्द हो जाती है।

(स) कर्ण अस्थियाँ (Ear Ossicles) - कान में कुल मिलाकर छः हड्डियां होती हैं। यानि एक कान में तीन हड्डियां होती हैं। ये कर्ण गुहा के भीतर एक–दूसरे के पीछे जुड़ी हुई होती हैं। जिसमें बाहर की ओर 'मैलियस' बीच में 'इनकस' तथा भीतर की ओर 'स्टेपीज' होती है। स्टेपीज हमारे शरीर की सबसे छोटी हड्डी होती है।

(द) हाइऔइड अस्थि (Hyoid bone) - हाइऔइड अस्थि दिखने में घोड़े के नाल की तरह की संरचना है। यह गर्दन के आगे के भाग में तथा मध्य में ठुड्डी (chin) और थाइरायड कार्टिलेज (Thyroid Cartilage) के बीच में स्थित होती है। यह मेंडिबल (Mandible) के सामने से होते हुए मेरुदण्ड की तीसरी सर्वाइकल वरटीब्रा (cervical vertebra C3) तक लेटी अवस्था में फैली रहती है।

मेरुदण्ड (Vertebral Column or backbone or spine)- रीढ़ की हड्डी या कक्षीय रुखास्तम की छोटी–छोटी हड्डियों से बना है। कक्षीय रूखायें बीच में खोखली होती हैं और एक साथ जुडी रहती है। रीढ़ की हड्डी इनके बीच में होती है। मानव शरीर में 'रीढ़ की हड्डी' को कशेरूक दण्ड या मेरुदण्ड (Vertebral Calumn) कहा जाता है। मेरूदण्ड में 33 अस्थियाँ होती हैं। ये अस्थियाँ आपस में एक शृंखला की भाँति जुड़ी रहती हैं और इन्हें 'कशेरूक' (Vertebra) कहा जाता है। यह पीठ के ठीक बीचों–बीच स्थित है। मेरूदण्ड पश्च कपालास्थि (Occipital Bone) के निचले भाग से आरम्भ होकर नीचे गुदा के समीप समाप्त होता है। मेरूदण्ड की सिर से पुच्छ तक निम्नलिखित 5 भागों में वर्गीकृत किया गया है–

मेरूदण्ड में कशेरूकाओं का विभाजन

क्र.सं.	भाग	कशेरूकाएँ	संक्षिप्त में (abbreviate)
1.	ग्रीवा (Cervical)	07	C1 - C7
2.	वक्ष (Thoracic)	12	T1 - T12
3.	कटि (Lumbar)	05	L1 - L5
4.	त्रिकास्थि (Sacrum)	05	S1 - S5
5.	अनुत्रिकास्थि (Coccyx)	04	
	योग	**33**	

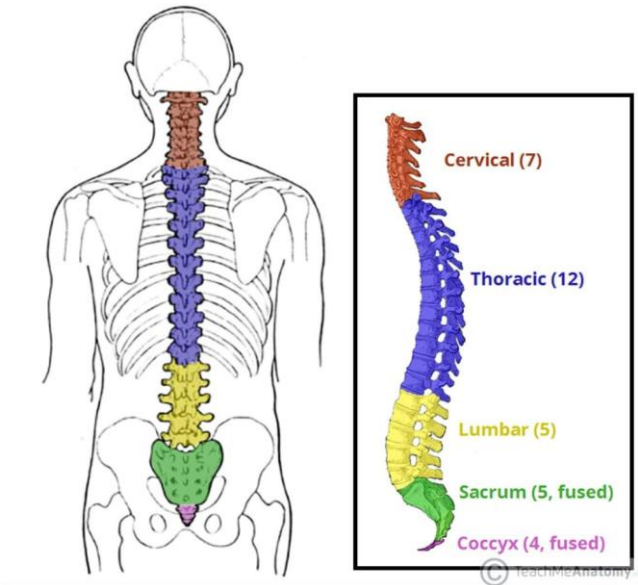

Fig 1 – The vertebral column viewed from the side. The five different regions are shown and labelled.

1. **ग्रीवा कशेरूका (Cervical Verterea) (C1 - C7)** - ये संख्या में कुल 7 होते हैं। ग्रीवा कशेरूका को दो भागों में बाँटा गया है। ऊपरी सर्वाइकल भाग (C1 और C2) तथा निचला सर्वाइकल (C3 से C7) तक / C1 को 'एटलस' (Atlas) तथा C2 को 'अक्ष' (Axis) कशेरूका कहा जाता है। खोपड़ी की ऑक्सीपिटल अस्थि (Occipital bone) से ग्रीवा कशेरूका का ऊपरी भाग जुड़ा होता है।

एटलस **(Atlas) (C1)** - एटलस (C1) पहली ग्रीवा कशेरूका है इसे संक्षिप्त में C1 कहा जाता है। यह अस्थि खोपड़ी को सहारा देती है। इसकी बनावट अन्य कशेरूकाओं से भिन्न होती है। इस कशेरूका में पिण्ड नहीं होता, अपितु उसकी जगह एक घुमावदार लम्बी अस्थि रहती है, जो अग्रचाप बनाती है। यह कशेरूका एक छल्ले (ring) जैसी संरचना होती है। इसका कण्टक बहुत ही छोटा होता है तथा ऑक्सीपिटल अस्थि (occipital bone) से आरम्भ हुई मांसपेशियाँ उसी के ऊपर आकर लगती है।

अक्ष (Axis bone) (C2)- यह दूसरी ग्रीवा कशेरूका (coevical vertebra) है। जिसे C2 भी कहते हैं।

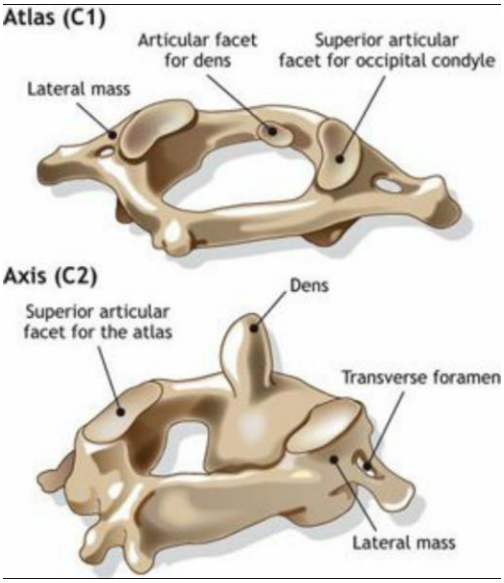

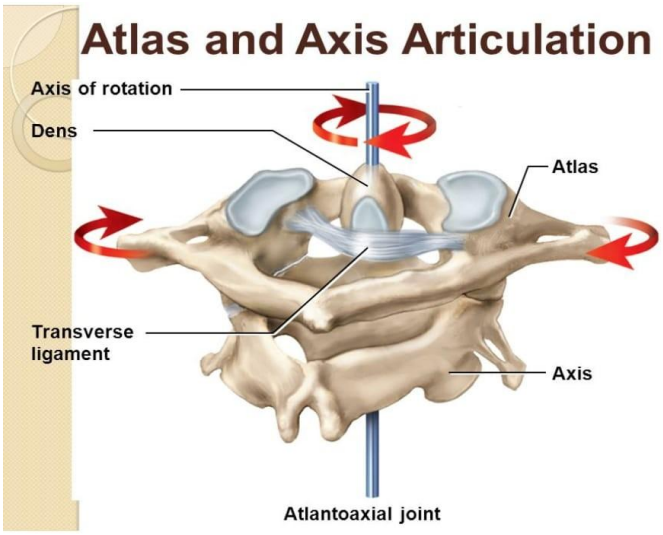

इसके पिण्ड पर एक नुकीला उभार ऊपर की ओर उठा रहता है, जिसे 'दन्ताभ प्रवर्ध' (odontoid Process) कहते हैं। इसके ऊपरी नुकीले भाग के ऊपर, ऑक्सीपिटल अस्थि (Occipital bone) के निचले भाग से आरम्भ होने वाला एक बहुत मोटा तथा दृढ़ तन्तु लगा रहता है। इसके पिण्ड के अगले हिस्से के ऊपर एक गहरी क्यारी–सी बनी होती है, जिसके ऊपर प्रथम कशेरूक (C1) का अग्रचाप आकर जुड़ जाता है। C2 के दन्ताभ प्रवर्ध एक प्रकार का धुरी और पट्टा (Pivot and collar) बनाते हैं जो खोपड़ी (skull) और एटलस (Atlas) को दन्ताभ प्रवर्ध के चारों ओर घूमने में मदद करते हैं।

C3 से C7 तक की कशेरूकाओं की संरचना सामान्य कशेरूकों जैसी होती है।

2. **वक्ष (Thoracic Vertebrae)-** ये संख्या में कुल 12 होती हैं। इन्हें संक्षिप्त में (T1 -T12) के रूप में जाना जाता है। इनकी स्थिति ग्रैव कशेरूका (cervical vertebrae) तथा कटि कशेरूका (LumberVertebrae) के मध्य

यानी (C7 से T1 के बीच) रहती है। ये वक्ष स्थल के पिछले घेरे का निर्माण करते हैं। cervical vertebrae की अपेक्षा इनका पिण्ड बड़ा होता है, परन्तु कशेरूका छिद्र (vertebral Forman) कुछ संकरा होता है। इनके दोनों ओर अनुप्रस्थ–उभार (Transverse Process) होते है, जो पसली की अस्थियों से जुड़ी होती है।

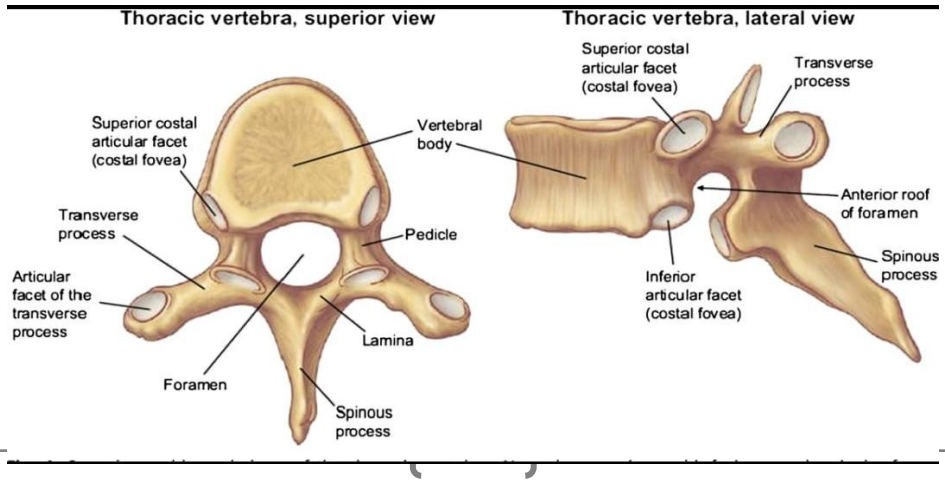

3. **कटि कशेरूका (Lumber Vertebrae)-** ये संख्या में 5 होते हैं (L1 - L5)। तथा वक्ष कशेरूका (Thoracic vertebrae) एवं त्रिक कशेरूका (sacral vertebrae) के मध्य (T12 से S1 के बीच) में रहती है। इनके दोनों किनारों पर वृक्क (kidney) रहती है।

4. **त्रिकास्थि (Sacral Vertebrae)-** ये संख्या में 5 होते हैं, (S1 - S5) परन्तु एक दूसरे से मिले रहने के कारण

ये एक ही अस्थि का रूप ग्रहण कर लेते हैं। इनकी उपस्थिति कटि कशेरूका तथा अनुत्रिक कशेरूका (coccyx) के मध्य में होती है। ये कशेरूका दोनों श्रोणि अस्थियों (Hip bones) के मध्य स्थित होते हैं तथा श्रोणि (Pelvis) की पश्चिमी सीमा का निर्माण करते हैं।

5. **अनुत्रिकास्थि अथवा पुच्छ कशेरूकाएँ (Coccygeal Vertebrae)-** ये कशेरूकाएँ संख्या में 4 होती हैं, परन्तु परस्पर मिली रहने के कारण एक ही अस्थि जैसी प्रतीत होती है।

मेरूदण्ड गर्दन तथा धड़ को आधार प्रदान करता है। इस प्रकार यह मनुष्य को खड़े होने तथा खड़े होकर चलने में सहायता करता है। मेरूदण्ड गर्दन तथा धड़ को मोड़ने में सहायता करता है।

पसलियाँ (Ribs)

पसलियां एक चपटी अस्थियां (Flat Bones) होती हैं। ये हमारे हृदय और फेफड़े की सुरक्षा करती हैं। ये शरीर के पीछे मेरुदण्ड तथा सामने की ओर उरोस्थि नामक हड्डी से जुड़ी होती है और एक पिंजड़े के समान दिखाई देती है। इसलिए इसे अस्थिपिंजर भी कहते है। मानव शरीर में कुल 24 पसलियाँ होती हैं, जो 12 जोड़ियों के

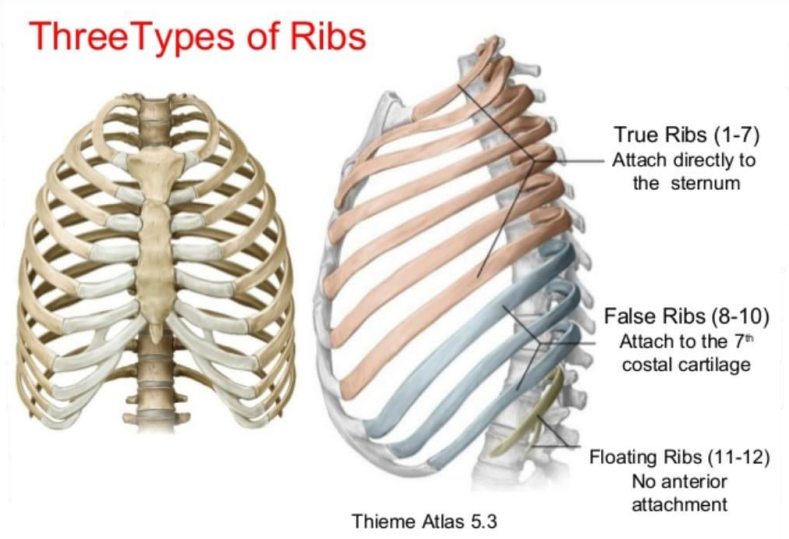

रूप में होती हैं।

1 से 7 जोड़े तक की कुल 14 पसलियाँ पीछे की ओर मेरूदण्ड की किसी वक्ष कशेरूका (Thoracic

Vertebrae) से तथा आगे की ओर उरोस्थि (Sternum) नामक एक लम्बी एवं चपटी अस्थि से जुड़ी होती है। इन पसलियों को वास्तविक पसलियाँ (True Ribs) कहा जाता है।

8वें से 10वें जोड़े तक की कुल 6 पसलियाँ सामने की ओर उरोस्थि में प्रत्यक्षतः न जुड़कर अपने ऊपर की पसलियों से जुड़ी होती हैं। इसी कारण इन्हें छद्म पसलियाँ (False Ribs) कहा जाता है।

11वें एवं 12वें जोड़े की कुल 4 पसलियाँ पीछे की ओर वक्ष कशेरूकाओं से जुड़ी होती है। परन्तु आगे की ओर पूर्णतः स्वंतत्र होती हैं। इसलिए इन्हें तैरती पसलियाँ (Floating Ribs) कहा जाता है।

उरोस्थि (Sternum or Breast Bone)

उरोस्थि एक लम्बी एवं चपटी अस्थि है, जो वक्षीय पिंजर के ठीक मध्य (यानी जो पसलियों के पिंजर को सामने से जोड़ती है) में स्थित होती है। मानव शरीर की लगभग सभी पसलियाँ पीछे की ओर वक्ष कशेरूकाओ से तथा आगे की ओर उरोस्थि से जुड़ी रहती हैं। पसलियाँ तथा उरोस्थि परस्पर मिलकर वक्षीय पिंजर (Thorocic Cage) का निर्माण करती हैं।

2..5.2 उपांगीय कंकाल (Appendicular Skeleton)

बाहरी कंकाल या उपांगीय कंकाल में कन्धे की हड्डियां, शरीर के ऊपरी भाग की बाहरी हड्डियां, कूल्हे व निचले भाग की हड्डियां शामिल हैं। ऊपरी भाग की हड्डियां कंधे के सहारे अक्षीय कंकाल से जुड़ी रहती हैं। कूल्हे की हड्डियां शरीर के निचले भाग की हड्डियों को अक्षीय कंकाल से जोड़ती हैं। शरीर के ऊपरी भाग की बाहरी हड्डियां जिसमें ऊपरी बांह, निचली बांह, कलाई व हथेली की हड्डियां होती हैं। शरीर के निचले हिस्से की हड्डियों में ऊपर की ओर जांघ, नीचे पांव, ऐड़ी व पंजों की हड्डियां होती हैं।

मानव के उपांगीय कंकाल सम्मिलित संरचनाएँ अक्षीय कंकाल का उपांग (Appendages) होती हैं। उपांगीय कंकाल के अन्तर्गत निम्नलिखित संरचनाओं को सम्मिलित किया जाता है–

उपांगीय कंकाल के भाग (Parts of Appendicular Skeleton)

अंशमेखला (Shoulder or Pectoral Girdle)	अग्रपाद (Upper or Forelimbs)	श्रोणि मेखला (Pelvic Girdle)	पश्चपाद् (Lower or Hind Limbs)

अंशमेखला (Pectoral Girdle) -

हमारे प्रत्येक हाथ के कंकाल को अक्षीय कंकाल से जोड़कर सहारा देने के लिए कंधे की हड्डी होती है। जिसे अंशमेखला कहते हैं। इसमें दो हड्डियाँ होती हैं– 1. हँसली या अक्षक (clavicle) तथा 2. अंसफलक अर्थात् स्कैपुला (Scapula)।

1. **हँसली या अक्षक (Clavicle or Collar bone) :** यह एक लम्बी तथा पतली "S" के आकार की क्षैतिज

हड्डी होती है जो पहली पसली से ऊपर की ओर तथा समाने की ओर स्थित रहती है। इसका हमारे शरीर की मध्य रेखा की ओर वाला सिरा गोल होता है और उरोस्थि से जुड़ा रहता है। बाहर की ओर वाला सिरा चौड़ा और चपटा होता है तथा अंसफलक के ऐक्कोमिथन प्रवर्ध (acromian process) से जुड़ा रहता है।

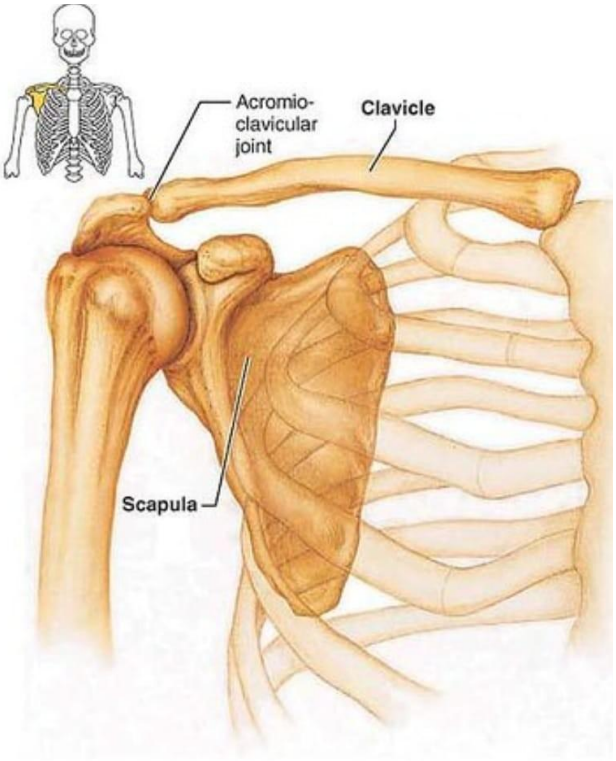

(a) Articulated pectoral girdle

2. **अंसफलक अर्थात् स्कैपुला अस्थि (Scapula or Shoulder Blade) :** यह एक बड़ी चपटी और त्रिकोण के आकार की हड्डी होती है जो अपनी ओर के कन्धे के नीचे हमारी पीठ के ऊपरी भाग में स्थित रहती है। इसका हमारे शरीर की मध्य रेखा की ओर वाला किनारा कशेरूकदण्ड से लगभग 5 सेमी दूर होता है। इसके इसी किनारे के पिछली सतह पर उभरा एक कांटेनुमा उभार (spine) होता है जो इसके किनारे पर एक असंपुष्ट या ऐक्रोमियन उभार (acromian process) के रूप में निकला रहता है। हँसली का बाहरी सिरा इसी उभार से जुड़ा होता है। इस उभार के ठीक नीचे की ओर ग्लीनॉइड गुहा (glenoid cavity) नामक गहरा गर्त होता है जिसमें बाहु की हड्डी–प्रगण्डिका (humerus)– का सिर धँसा रहता है।

ऐक्रोमियन प्रवर्ध के निकट, ऊपर की ओर निकला, एक अन्य असंतुण्ड अर्थात् कोरैकॉइड प्रवर्ध (coracoid process) होता है जिस पर पेशियाँ लगी होती हैं।

अग्रपाद अथवा हाथ (Forelimbs)

हमारे प्रत्येक हाथ में तीन भाग होता हैं। ऊपर से नीचे की ओर इन्हें क्रमशः बाहु, प्रबाहु तथा हस्त कहते हैं। इनमें निम्नलिखित हड्डियाँ होती हैं–

1. **बाहु या प्रगण्ड (Arm) हड्डी :** बाहु में प्रगण्डिका अर्थात् ह्यूमरस (humerus) नामक एक ही हड्डी होती है। इसका पीछे बाहर की ओर एक बड़ा–सा उभार या गुलिका (greater tubercle) तथा आगे की ओर एक छोटा–सा उभार या गुलिका (lesser tubercle) होती है। इन दोनों उभारों के बीच में बाइसिपिटल खाँच (bicipitel groove) होती है। प्रगण्डिका का प्रमुख भाग अर्थात् दण्ड (shaft) ऊपर की ओर बेलनाकार, बीच में त्रिकोण के आकार तथा नीचे की ओर चपटा और

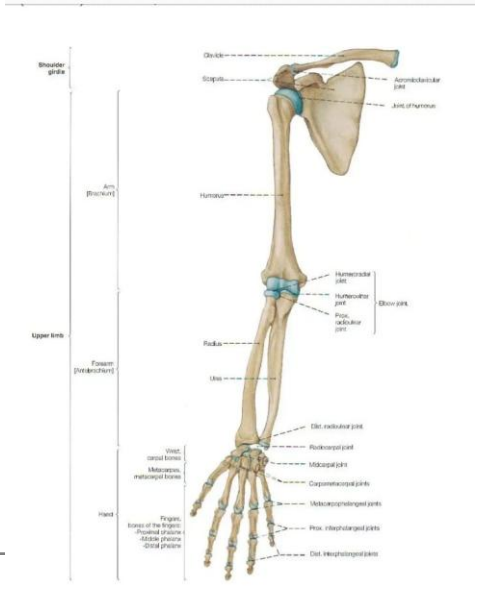

चौड़ा होता है। इसके बीच में बाहर की ओर डेल्टॉइड उभार (deltoid
ridge) होता है जिस पर पेशियाँ लगी रहती हैं।

प्रगण्डिका का निचला छोर कुहनी (elbow) पर प्रबाहु की हड्डियों– रेडियस तथा अल्ना (radius and ulna)– से जुड़ने के लिए उपयोजित होता है। इस पर आगे की ओर मुण्डक अर्थात् कैपिटुलम (capitulum) नामक छोटा गोल–सा उभार होता है जो रेडियस के शीर्ष से जुड़ा रहता है। इसके ठीक ऊपर की ओर रेडियल गर्त या गड्डा
(radial fossa) होता है जिसमें बाँह के मुड़ने पर रेडियस का सिर घुस जाता है। मुण्डक के ठीक भीतर की ओर, अल्ना से जुड़ने के लिए ट्रॉक्लिया (trochlea) नामक सन्धितल होता है। ट्रॉक्लिया के ठीक नीचे की ओर कोरोनॉइड गर्त (coronoid fossa) होता है जिसमें बाँह के मुड़ने पर अल्ना का कोरोनॉइड प्रवर्ध (coronoid process) घुसता है। कुहनी पर पीछे की ओर एक ओलीक्रेनन गर्त (olecranon fossa) होता है जिसमें बाँह के सीधी होने पर अल्ना का ओलीक्रेनन प्रवर्ध (olecranon process) धँसता है।

2. **प्रबाहु (Forearm) की हड्डियाँ** : इसमें रेडियस तथा अल्ना, दो हड्डियाँ होती हैं। अल्ना (ulna) भीतर की ओर अर्थात् छोटी अंगुली की ओर स्थिति और रेडियस से कुछ लम्बी होती है। इसके कुहनी की तरफ के सिरे अर्थात् समीपस्थ (proximal) सिरे पर ओलीक्रेनन प्रवर्ध (olecranon process) होता है, जो कुहनी का पीछे की ओर का उभार होता है। आगे की ओर इसका कोरोनॉइड प्रवर्ध (coronoid process) होता है। इन दोनों के बीच एक बड़ी ट्रॉक्लिर खाँच (trochlear notch) में बांह की ट्रॉक्लिया फिट रहती है। ट्रॉक्लियर खाँच के ठीक नीचे बाहर की ओर अरीय खाँच (radial notch) होती है जिसमें रेडियस का शीर्ष फिट रहता है। अल्ना का कलाई की ओर का भाग गोल से शीर्ष के रूप में होता है। रेडियस (radius) पार्श्व की ओर अर्थात् अंगूठे की ओर स्थित होती है। इसका कुहनी वाला छोर चपटे से शीर्ष (head) के रूप में फूला होता है। यह कुहनी पर प्रगण्डिका के मुण्डक से तथा अल्ना के रेडियल गर्त से जुड़ा होता है। शीर्ष के कुछ ही पीछे इस पर एक अरीय उभार (radial tuberosity) होता है जिस पर पेशियाँ लगी होती हैं। रेडियस की दण्ड (shaft) कलाई की ओर का भाग चौड़ा होकर कलाई की हड्डियों से जुड़ी होती हैं।

3. **हस्त (Hand or Manus) की हड्डियाँ** : हथेली की हड्डियों में तीन भाग होते हैं– कलाई (wrist), हथेली (palm) तथा अंगुलियाँ (fingers)। कलाई में दो पंक्तियों में स्थित तथा स्नायुओं द्वारा परस्पर जुड़ी 8 छोटी–छोटी हड्डियाँ होती हैं जिन्हें कार्पल्स (carpals) कहते हैं। हथेली में पाँच लम्बी, बेलनाकार मेटाकार्पल्स (metacarpals) होती हैं। जिनमें अंगूठे की सीध वाली प्रथम मेटाकार्पल सबसे छोटी होती है। प्रत्येक मेटाकार्पल के दोनों सिरे फूले हुए होते हैं। कलाई की ओर वाले सिरे को आधार छोर (base), बीच के भाग को दण्ड (shaft) तथा अंगुली की ओर के भाग को शीर्ष (head) कहते हैं। अंगुलियों के कंकाल में छोटी–छोटी दण्डनुमा अंगुलास्थियाँ (phalanges) होती

है जिनकी संख्या अंगूठे में दो तथा अन्य अंगुलियों में तीन–तीन होती हैं।

श्रोणिमेखला (Pelvic or Hip Girdle)

हमारी टाँगों के कंकाल अर्थात् निचले बाहरी कंकाल को अक्षीय कंकाल से जोड़कर सहारा देने के लिए कूल्हे की हड्डियां होती हैं। जिसे मेखला कहते हैं। यह दो हड्डियों के आपस में मिलने से बनती हैं। कशेरूकदण्ड तथा आन्तरिक अंगों को भी इस मेखला से बहुत सहारा मिलता है। मेखला की दो हड्डियाँ चापनुमा (arch-like) होती हैं और इसका श्रोणि मेखला का आधा भाग बनाती है। इन हड्डियों को इन्नोमिनेट (innominate) या नितम्ब अर्थात् श्रोणि हड्डियाँ (coxal or hip bones) कहते हैं। आगे की ओर ये दोनों बीचोंबीच मध्य रेखा में श्रोणि संधायक (pubic syhmphysis) नामक अत्यधिक लचीले जोड़ पर परस्पर जुड़ी रहती हैं। पीछे की ओर ये मेरुदण्ड की त्रिकास्थि (sacrum) से जुड़ी होती है। नवजात शिशु की प्रत्येक नितम्ब हड्डी में तीन हड्डियाँ– इलियम (ilium), प्यूबिस (pubis) तथा इस्चियम (ischium)– होती हैं। कुछ ही दिनों में ये परस्पर जोड़कर श्रोणिमेखला बनाती हैं। तीनों हड्डियों के जुड़ने का स्थान श्रोणि मेखला के किनारे भाग को बनाती हैं जो मध्य में एक गहरे गड्डे के रूप में होता है जिसमें इस ओर की जाँघ की हड्डी– फीमर (femur)– का सिर धँसा रहता है। इस गर्त को श्रोणि–उलूखल या ऐसीटैबुलम (acetabulum) कहते हैं।

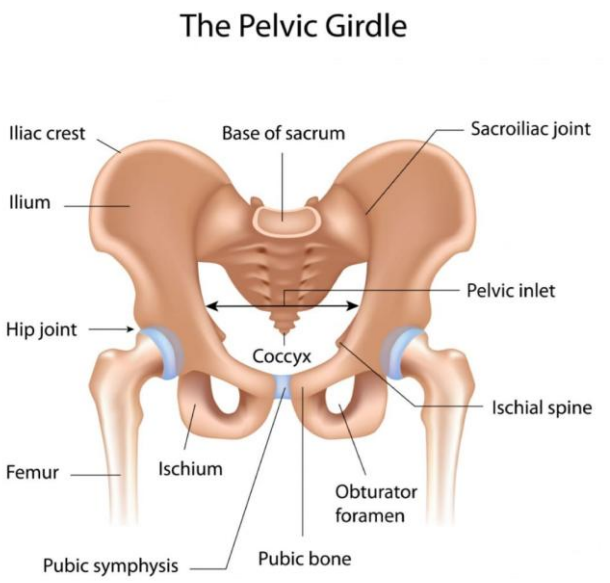

त्रिकास्थि (sacrum), अनुत्रिक (coccyx) एवं श्रोणिमेखला मिलकर एक चिलमचीनुमा (basin-like) संरचना बनाती है जिसमें मूत्राशय, मलाशय तथा स्त्रियों में गर्भाशय घिरा रहता है। श्रोणि संधायक (pubic symphysis) के अत्यधिक लचीला होने के कारण शिशु जन्म के समय यह संरचना अत्यधिक फैल जाती है।

पश्चपाद (Lower or hind limbs)

हमारी प्रत्येक टाँग यानी निचला बाहरी कंकाल भी तीन प्रमुख भाग, ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः जाँघ, जंघा तथा पैर होते हैं। इनमें निम्नलिखित हड्डियाँ होती हैं–

1. **जाँघ (Thigh)** जाँघ में केवल एक हड्डी होती है। जिसे फीमर (femur) कहते है। यह शरीर की सबसे लम्बी और सबसे भारी हड्डी होती है। इसका श्रोणि मेखला की ओर का सिरा गोल शीर्ष (head) होता है। जो श्रोणिमेखला के अपनी ओर के श्रोणि–उलूखल (acetabulum) में धँसा रहता है। शीषे के नीचे का कुछ भाग सँकरी ग्रीवा (neck) होती है। ग्रीवा के नीचे दो उभार होते हैं जो बाहर की ओर दीर्घ ट्रोकैन्टर (greater trochanter) तथा

भीतर की ओर लघु ट्रोकैन्टर (lesser trochanter) नामक होते हैं जिन पर जाँघों और नितम्बों की कुछ पेशियाँ लगी रहती हैं। जिसके कारण फीमर की लम्बी दण्ड (shaft) घुटने तक मध्य रेखा की ओर झुकी होती है।

2. **जानुफलक अर्थात् पटेला (Patella or Knee cap)** : हमारे घुटने पर आगे की ओर एक छोटी, त्रिकोण के आकार की हड्डी होती है जिसे पटेला कहते है। यह एक कण्डरा (tendon) में कैल्सिकरण (callcification) के कारण बनती है। ऐसी हड्डी को सिसैमॉइड (sesamoid) हड्डी कहते हैं। यह फीमर के अस्थिकन्दों से जुड़ी होती है। एक लचीले स्नायु द्वारा यह जंघा की टिबिया (tibia) हड्डी से भी जुड़ी रहती है। यह घुटने की सन्धि की सुरक्षा (protection) करती है और घुटने के मुड़ने में सहायता करती है।

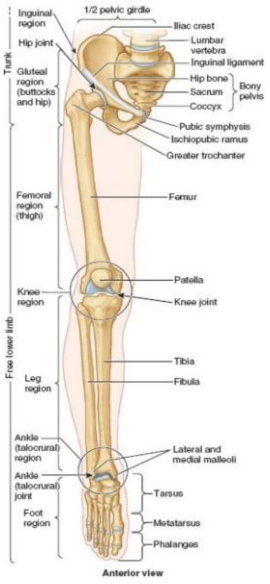

3. **जंघा या पाया (Crus or Shank) की हड्डियाँ** प्रत्येक टाँग की घुटने से नीचे के हिस्से में टिबिया (tibia) तथा फिबुला (fibula) नामक दो हड्डियाँ होती हैं। टिबिया बड़ी, मोटी और भीतर अर्थात् अंगूठे की ओर तथा फिबुला छोटी, पतली और बाहर अर्थात् छोटी पैर की अंगुली की ओर होती है। टिबिया के समीपस्थ, अर्थात् घुटने वाले सिरे पर दो उभार एक मध्यवर्ती और एक पार्श्वीय उभार या अस्थिकन्द (medial and lateral condyles) होते हैं जो फीमर के उभारों से जुड़े रहते हैं। पार्श्वीय अस्थिकन्द के निचले भाग पर फिबुला का गोल शीर्ष जुड़ा रहता है। दूरस्थ सिरे अर्थात पैरों के पंजों वाले सिरे पर टिबिया गुल्फ (ankle) की हड्डियों तथा फिबुला के दूरस्थ छोर से सन्धित होती है।

4. **पैरों (Foot or Pes) की हड्डियाँ :** प्रत्येक पैर में तीन भाग– गुल्फ (tarsus or ankle), तलुवा (sole) तथा पादांगुलियाँ (Toes)– होते हैं। गुल्फ में तीन पंक्तियों में सात टार्सल हड्डिया| (tarsal bones) स्थित होती हैं। तलुवे में पाँच लम्बी, बेलनाकार मेटाटार्सल हड्डियाँ (metatarsal bones) होती हैं। पादांगुलियों में अंगुलास्थियाँ (phalanges) होती हैं जिनकी संख्या अंगूठे में दो तथा अन्य अंगुलियों में तीन–तीन होती हैं।

खड़े होते, चलते और दौड़ते वक्त शरीर का सारा बोझ पांव और ऐड़ी पर पड़ता है। कुल 26 हडिडयों और 33 जोडो की मदद से ये इकाई कितने सारे काम बाखूबी कर ले जाती है। एक सामान्य व्यस्क का कंकाल 10 किलोग्राम से भी कम वजन का होता है। अगर मानव कंकाल की जगह इतना ही मजबूत स्टील का ढांचा बनाना पड़े तो यह ढांचा 400 किलोग्राम वजन का बनेगा, मगर उसमें कुदरती हड्डियों जैसी लोच और खुद को ठीक या दुरूस्त कर पाने की क्षमता बिल्कुल नहीं होगी। बेहद मजबूत या फौलाद से भी हल्की और अपनी मरम्मत खुद कर लेने की क्षमता रखने वाली हमारे शरीर की यह हड्डियां एक अद्भुत पदार्थ हैं। जो मानव शरीर को उसका खूबसूरत आकार देती हैं।

2.6 अस्थि संधियों की संरचना, प्रकार एवं कार्य

इस इकाई में अभी तक आपने हमारे शरीर में पायी जाने वाली हड्डियों के बारे में पढ़ा लेकिन क्या आप

जानते हैं कि हड्डियों के आपस में जोड़ने में सन्धियों का विशेष स्थान होता है। जोड़ एक ऐसी जगह है जो दो या दो से अधिक हड्डियों से जुड़ी होती है। हम जानते हैं कि मनुष्य का शरीर है उसमें 206 हड्डियां होती हैं। यह हड्डियां आपस में जुड़ी होती हैं। यह पर हम पढ़ेगें कि कौन–कौन सी सन्धि होती हैं? तीन प्रकार की सन्धियां होती है– पहली प्रकार की सन्धि है पूर्णरूपेण चल सन्धि, दूसरी प्रकार की सन्धि है अल्पचल सन्धि, तीसरी प्रकार की सन्धि है अचल सन्धि।

मानव कंकाल की अस्थियाँ विभिन्न स्थानों पर परस्पर जुड़कर शरीर को गतिशील बनाने में सहायता करती हैं। अस्थियों के इन्हीं जोड़ों को अस्थि सन्धियाँ (Articulations or joints) कहते हैं। इस अस्थि सन्धि स्थलों पर अस्थियाँ एक–दूसरे से लचीले स्नायुओं (Ligaments) द्वारा जुड़ी रहती हैं। स्नायुओं के लचीलेपन (Elasticity) के कारण अंगों को मोड़ना संभव हो पाता है। अस्थियों का वह सिरा जो अस्थि सन्धि की ओर स्थित होता है, उस पर उपास्थि (Cartilage) का एक आवरण फैला रहता है। प्रत्येक अस्थि–सन्धि पर जुड़ी अस्थियों के मध्य एक गुहा पायी जाती है जिसे साइनोवियल गुहा (Sinovial Cavity) कहते हैं। इस गुहा में एक साइनोवियल द्रव्य (Sinovial Fluid) भरा रहता है। अस्थि सन्धियों के अध्ययन को आर्थ्रोलॉजी (Arthrology) कहा जाता है।

अस्थि सन्धियों के प्रकार (Types of Bone joints)

गति एवं प्रकृति के आधार पर अस्थि सन्धियों को निम्नलिखि तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है–

2.6.1 पूर्ण सन्धि या चल (Perfect or Movable -Joint)

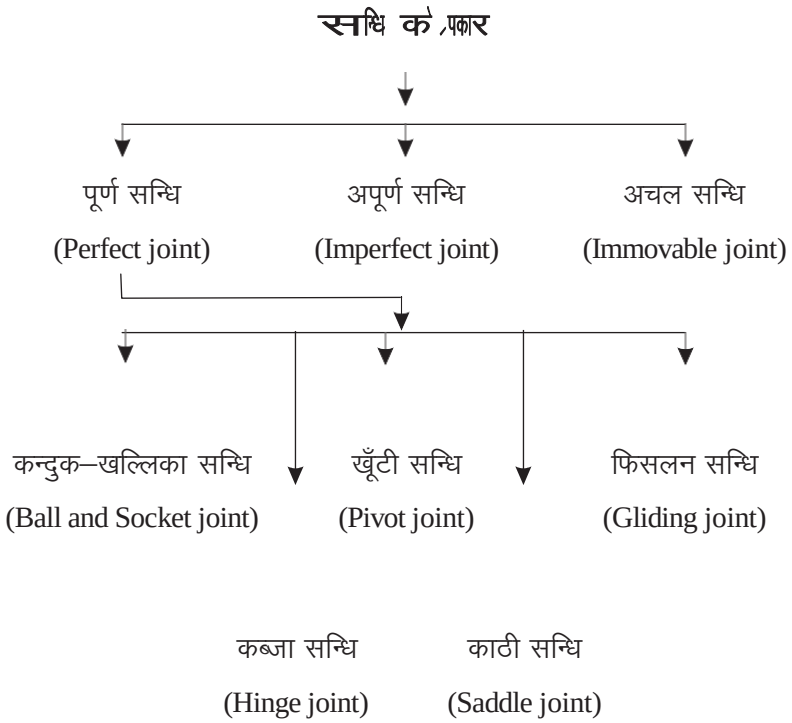

ऐसी सन्धि द्वारा जुड़ी हड्डियों के सिरे पर हायलाइन उपास्थि की टोपी मढ़ी रहती है, और दोनों हड्डियों के सिरे के बीच एक संकरा सा स्थान बचा रहता है पूरा सन्धि स्थान दृढ़ स्नायुओं (Ligaments) से बने एक सन्धि सम्पुट (Joint Capsule) में बन्द रहता है। सम्पुट के भीतर एक चिपचिपा गाढ़ा तरल पदार्थ भरा होता है। इस स्थान को

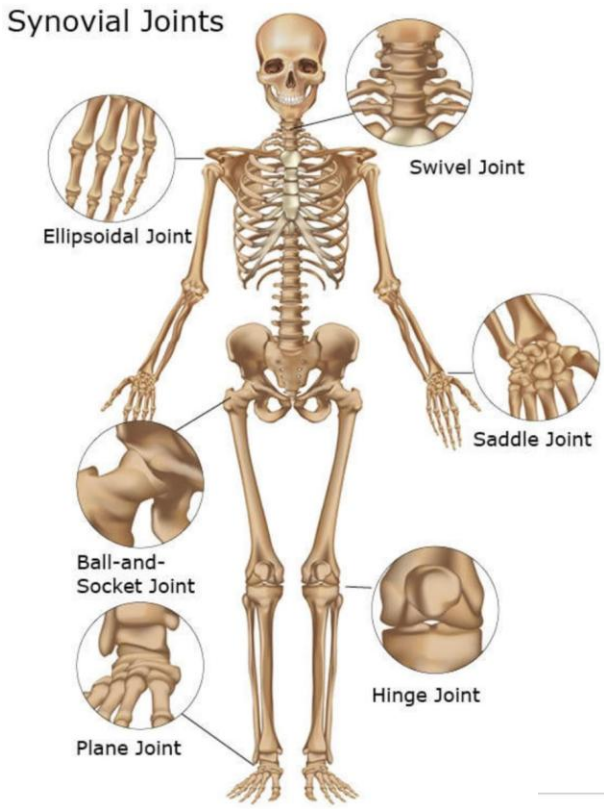

साइनोवियल गुहा (Synovial Cavity) तथा गाढ़े तरल को साइनोवियल तरल (Synovial Fluid) कहते हैं। इस द्रव का प्रमुख कार्य गति के दौरान अस्थियों के मध्य घर्षण को कम करना एवं सन्धि स्थान को चिकना बनाये रखना (To Lubricate) है।

पूर्ण सन्धि के माध्यम से जुड़ी हुई अस्थियाँ गति करने में पूर्णतः स्वतंत्र होती हैं एवं अन्य अस्थि संधियों की तुलना में यह संधि अस्थियों की गति हेतु अधिक स्थान एवं स्वतंत्रता प्रदान करती है।

मानव शरीर में पूर्ण सन्धियों के प्रकार

(i) कन्दुक–खल्लिका सन्धि (Ball and Socket Joint)

इस प्रकार की सन्धि में एक अस्थि का सिरा गेंद के समान गोल तथा दूसरी अस्थि का सिरा सॉकेट (Socket) की तरह होता है

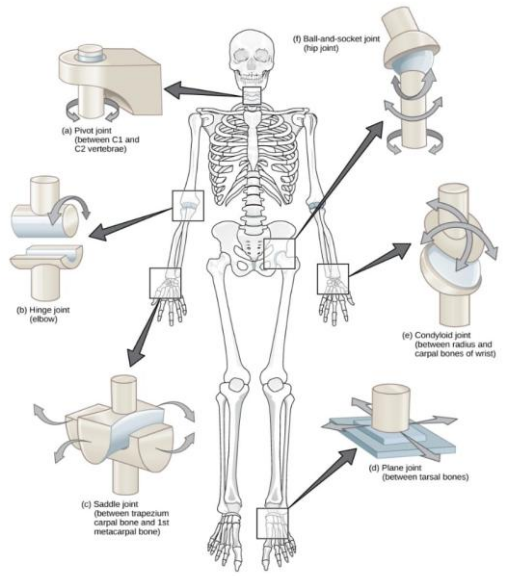

Figure 1. Different types of joints allow different types of movement. Planar, hinge, pivot, condyloid, saddle, and ball-and-socket are all types of synovial joints.

जिसमें पहली अस्थि का गोल सिरा फिट होता है। गोल सिरे वाली अस्थि ही ऊपर–नीचे तथा चारों दिशाओं में घूम सकती है। उदाहरणः अंश मेखला एवं ह्यूमरस की सन्धि तथा फीमर एवं श्रोणि मेखला की सन्धि।

(ii) कब्जा सन्धि (Hinge Joint)

यह अस्थि संधि दरवाजे में लगे कब्जे के समान दिखती है। कब्जा संधि में एक अस्थि का सिरा दूसरी अस्थि में बने गड्डे से जुड़ा होता है। इस प्रकार अस्थियाँ केवल एक दिशा में गति करने में सक्षम होती हैं। उदाहरण कोहनी तथा घुटने तथा अँगुलियों के पोरों की सन्धियाँ।

(iii) धुरी या खूँटी सन्धि (Pivot Joint)

ऐसी सन्धि में एक हड्डी धुरी की भांति स्थिर रहती है तथा दूसरी अपने गड्ढें द्वारा इसके ऊपर फिट होकर इधर–उधर गोलाई में घूमती है। इस अस्थि संधि को घूर्णी संधि (Rotatory joint) भी कहते हैं।

उदाहरणः दूसरी कशेरूका (Second Vertebra) के ओडोटॉयड प्रवर्ध (Odontoid Process) के ऊपर खोपड़ी को धारण किये हुये एटलस कशेरूका। उदाहरणः पैर की टिबिया एवं फिबुला अस्थियों के बीच घुटने के पास की सन्धि।

(iv) फिसलन सन्धि (Gliding Joint)

इस प्रकार की सन्धि में सन्धि स्थान पर हड्डियां एक–दूसरे के ऊपर आगे–पीछे या इधर–उधर फिसल सकती हैं, उदाहरणः रेडियस, अल्ना तथा कलाई की कार्पल्स अस्थियों की सन्धि तथा जंघा की टीबुओ फिबला तथा गुल्फ की हड्डियों के बीच ऐसी सन्धि पाई जाती है। कशेरूकों के सन्धि प्रवर्द्ध के मध्य की सन्धि। फिसलन सन्धि (Gliding joint) को समतल सन्धि (Flat joint) भी कहते हैं।

(v) काठी सन्धि (Saddle Joint)

यह कन्दुक खल्लिका सन्धि जैसी ही होती है लेकिन इस प्रकार की सन्धि में बॉल व सॉकेट कम विकसित होता है परन्तु, यह सन्धि बॉल व सॉकेट सन्धि से कुछ समानता रखती है। अतः बॉल वाली हड्डी चारों ओर अच्छी तरह नहीं घूमती।

उदाहरणः हाथ के अँगूठे की कार्पल्स व मेटाकार्पल्स अस्थियों की सन्धि, जिसके कारण अँगूठा अन्य अँगुलियों की अपेक्षा चारों तरफ घुमाया जा सकता है। इसे हैपी सन्धि (Happy joint) भी कहते हैं। इसमें एक अस्थि किसी अन्य अस्थि की अण्डाकार गुहा (Oval Shaped Cavity) में सटीक बैठती है। इन सन्धियों में द्विअक्षीय दोलन या संचलन आगे–पीछे तथा दायें–बायें ओर गतिशीलता सम्भव होती है। परन्तु घूर्णन (Rotation) सम्भव नहीं होता है।

2.6.2 अपूर्ण या अल्पचल सन्धि (Imperfect or Slightly Movable Joint)

ऐसी हड्डियों के सन्धि स्थानों पर स्नायुयुक्त, तन्तुयुक्त अथवा उपास्थीय ऊतक दोनों हड्डियों को जोड़ने का काम करता है। इस प्रकार की सन्धि ऊतक के कारण हड्डियों को गति की कुछ स्वतंत्रता मिल जाती है।

अपूर्ण सन्धि में हड्डियों के बीच साइनोवियल द्रव नही होता है। क्योंकि ऐसी सन्धियों मे बहुत थोड़ी गति या घुमाव होता है।

उदाहरणः कशेरूकाओं के बीच की हड्डियों के जोड़, श्रोणि मेखला की प्यूबिक हड्डियों का जोड़।

2.6.3 अचल सन्धि (Fixed Joint)

अचल सन्धि से जुड़ी हुई अस्थियाँ बिल्कुल भी गतिशील नहीं होती हैं। अर्थात् इनमें घुमाव अथवा गति का अभाव होता है। ये अस्थियाँ एक–दूसरे से बहुत पास जुड़ी रहती हैं।

उदाहरणः खोपड़ी (Skull) की अस्थियों की सन्धि। खोपड़ी की विभिन्न हड्डियों के बीच टेढ़ी–मेढ़ी सीवनों (Sutures) जैसे सन्धियां होती हैं। प्रत्येक सीवन पर जुड़ी हड्डियों के किनारे आरी की भांति कटे होते हैं। और प्रत्येक उभार दूसरी के गड्डे में फंसे रहते हैं।

2.6 अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

(1) खोपडी में कुल कितनी अस्थियाँ होती हैं ?

(अ) 22 (ब) 24 (स) 26 (द) 27

(2) कान में अस्थियों की संख्या है :

(अ) 10 (ब) 6 (स) 4 (द) 11

(3) निम्न में से कौन–सी चेहरे की अस्थि नहीं होती है ?

(अ) लैक्राइमल (ब) नेजल (स) पैलेटाइन (द) सैक्रम

(4) कॉक्सिक्स (Coccyx) अस्थि स्थित है :

(अ) चेहरे में (ब) वक्ष में (स) मेरूदण्ड में (द) पैर में

(5) वक्ष भाग में स्थित पसलियों की संख्या है :

(अ) 26 (ब) 24 (स) 10 (द) 15

(6) ह्यूमरस अस्थि सम्बन्धित है :

(अ) कलाई से (ब) भुजा से (स) मस्तिष्क से (द) इनमें से कोई नहीं

(7) निम्न में से कौन–सा जोड़ा सही है ?

(अ) स्कन्ध मेखला – क्लेविकल

(ब) अग्रबाहु – अलना एवं रेडियस

(स) जाँघ – फीमर एवं पटेला

(द) उपर्युक्त सभी

(8) कूल्हे का जोड़ निम्न में से किस प्रकार की संधि है ?

(अ) बॉल एवं सॉकेट प्रकार की संधि (ब) सैडल सन्धि

(स) ग्लाइडिंग सन्धि (द) इनमें से कोई नहीं

2.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों उपरोक्त विवरण में आपने अध्ययन किया कि अस्थि और संधियाँ शरीर की गति का कारण है। इसके अलावा अस्थियाँ शरीर के कोमल अंगों को सुरक्षा प्रदान करती है और शरीर को स्थूल आधार प्रदान करती है। अस्थियों के अन्दर रक्त का निर्माण होता है। कंकाल तंत्र अन्य तन्त्रों को सहारा देता है अस्थियों के कार्य के अलावा अस्थियों की संरचना उनका स्थान और विभाजन का अध्ययन किया। अस्थियों को आपस में जोड़ने वाली अस्थि संधियों का गति और संरचना के आधार पर सन्धि के प्रकारों का अध्ययन किया।

2.8 शब्दावली

अस्थि पंजर – कंकाल तंत्र या अस्थि तंत्र

कंकाल – अस्थियों का समूह

स्नायु – दो अस्थियों को जोड़ने वाले प्रतानवत/सूत्र रचनाएं

कण्डरा – मांसपेशियों को अस्थि से जोड़ने वाली रचनाएं

जानु – घुटना

मेरूदण्ड – पीठ की हड्डियाँ

वक्ष – सीना

कटि – कमर

अंश मेखला – कंधे की अस्थि

प्रगण्डिका – बांह की अस्थि

श्रोणिमेखला – नितम्ब (Hip) की अस्थि

पश्चपाद – पैर की अस्थियाँ

अग्रपाद – हाथ की अस्थियाँ

2.9 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. (अ) 22

2. (ब) 6

3. (द) सैक्रम

4. (स) मेरूदण्ड में

5. (ब) 24

6. (ब) भुजा में

7. (द) उपर्युक्त सभी

8. (अ) बॉल एवं सॉकेट

2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो. अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर व क्रियाविज्ञान सुमित प्रकाशन आगरा।
2. ब्रह्मवर्चस शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान।
3. गुप्ता, डॉ. रमेश, (2018) आधुनिक जीव विज्ञान, प्रकाश पब्लिकेशन, मुज़फ्फरनगर।
4. खान डॉ. गुलबहार, (2017) शरीर रचना तथा शरीर क्रिया विज्ञान, खेल साहित्य केन्द्र प्रकाशन।
5. वर्मा डॉ. मुकुन्द स्वरूप (2013) मानव शरीर रचना विज्ञान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रकाशन।

शारीरिक संरचना	कंकालीय संरचना	अंग	अस्थियों के नाम	संख्या	अंग की अस्थियाँ	कुल अस्थियाँ
(A) अक्षीय कंकाल						
1. सिर (Head)	(A) खोपड़ी	1. कपाल (Cranium)	ऑक्सिपिटल पैराइटल टम्पोरल फ्रंटल एथामॉइड स्फीनॉएड	1 2 2 1 1 1	8	29
		2. चेहरा (Face)	नेजल टरबाइनल लैक्रीमल वामर जाइगोमैटिक मैक्सिला पैलेटाइन मेंडिबल	2 2 2 1 2 2 2 1	14	
		3. कर्णास्थियाँ (Ear Ossicles)	मैलियस इंकस स्टेपीज	2 2 2	6	
		4. हॉइड (Hyoid)	हॉइड	1	1	
2. पीठ की अस्थि (Back Bone)	(B) कशेरूक दंड	1. गर्दन (Neck) 2. वक्ष (Thoracic) 3. कटि (Lumbar) 4. संक्रम (Sacrum) 5. पुच्छ (Tail)	ग्रीवा कशेरूकाएँ वक्ष कशेरूकाएँ कटि कशेरूकाएँ त्रिकास्थि कशेरूकाएँ अनुत्रिकास्थि कशेरूकाएँ	7 12 5 1 1	7 12 5 1 1	26
3. वक्ष (Thorax)	(C) उरोस्थि (Sternum)		उरोस्थि	1	1	1
	(D) पसलियाँ (Ribs)		पसलियाँ	24	24	24

(B) उपांगीय कंकाल						
1. वक्ष (Thorax)	(A) अंश मेखला		स्कैपुला क्लैविकिल	2 1	1	4
2. कूल्हा (Hip)	(B) श्रोणि मेखला (Pelvic girdle)	इनोमिलेट अस्थियाँ	सैक्रम कॉकिक्स	1 1	2	2
3. अग्रपाद (Fore limbs)		1. ऊपरीबाहु 2. प्रबाहु 3. कलाई 4. हथेली 5. अंगुलियाँ	ह्यूमरस रेडियस एवं अलना कार्पल्स मेटाकार्पल्स फैलेजिस	2 2+2 16 10 28	60	60
4. पश्च पाद (Hind Limbs)		1. जांघ 2. पिंडली 3. घुटना 4. टखना 5. तलुवा 6. अँगुलास्थियाँ	फीमर टिबिया फिबुला पैटेला टार्सल्स मेटाटार्सल्स फैलेजिस	2 2 2 2 14 10 28	60	60
मानव कंकाल में कुल अस्थियाँ				—	206	

इकाई– 3 पेशीय तंत्र – संरचना, प्रकार व कार्य

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 पेशीय संस्थान

3.4 पेशियों का नामकरण

3.5 पेशियों की संरचना

3.6 पेशियों के प्रकार

3.7 पेशियों के कार्य एवं गतियाँ

3.8 शरीर की मुख्य पेशिया

3.9 सारांश

3.10 शब्दावली

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों पिछली इकाई में आपने शरीर की संरचना कोशिका तथा ऊतकों की संरचना का अध्ययन किया जिसमें उसके कार्यों का भी अध्ययन किया। हमारे शरीर की गति, हलन–चलन पेशियों के सहयोग से ही होती है अर्थात हमारा चलना–फिरना, उठना–बैठना, भागना–दौड़ना या किसी भी दैनिक क्रियाकलाप के लिए हिलना–डुलना पेशियों के बिना तनिक भी संभव नहीं होता है। बिना पेशियों की गति के व्यक्ति मात्र एक मूर्ति बनकर रह जाता है, निश्चल, निश्चेष्ट और निष्क्रिय।

पेशियों में फैलने व सिकुड़ने की अद्‌भुत प्राकृतिक क्षमता होती है, क्योंकि ये संकुचनशील ऊतक की बनी होती है, पेशियाँ अस्थियों तथा त्वचा के बीच सुरक्षित रहती है। ये अस्थि–सन्धियों पर उपस्थित एवं स्थित होकर अस्थियों को परस्पर जोड़ने का कार्य करती हैं। अस्थियों को जोड़ने के लिए ये सिकुड़ती हैं। तथा फैलने के लिए ये सीधी होती हैं। अस्थियाँ शरीर को एक आकार देती हैं लेकिन उनकी गति/हलन–चलन पेशियों की सहायता से ही होती हैं। प्रस्तुत इकाई में आप पेशियों की संरचना, प्रकार व कार्य का अध्ययन करेंगे।

3.1 उद्‌देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त छात्र –

- पेशियों के संरचना, उनके प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।
- पेशियों के कार्य एवं गतियों को समझा सकेंगे।
- मानव शरीर की मुख्य पेशियों का वर्णन कर सकेंगे।
- मानव शरीर में पेशीय संस्थान की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

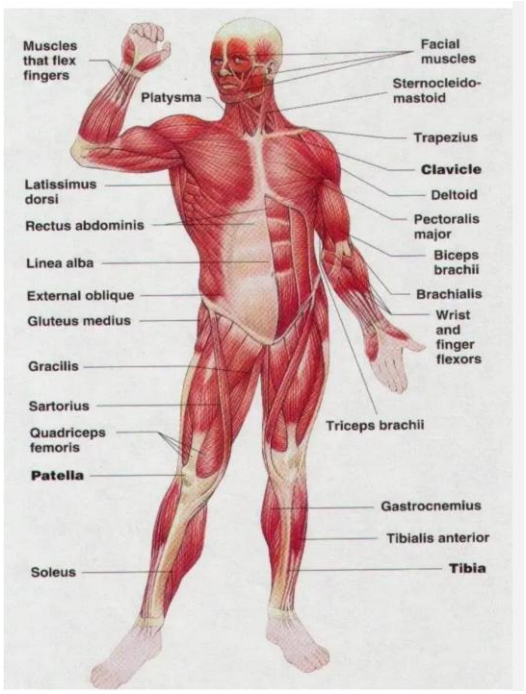

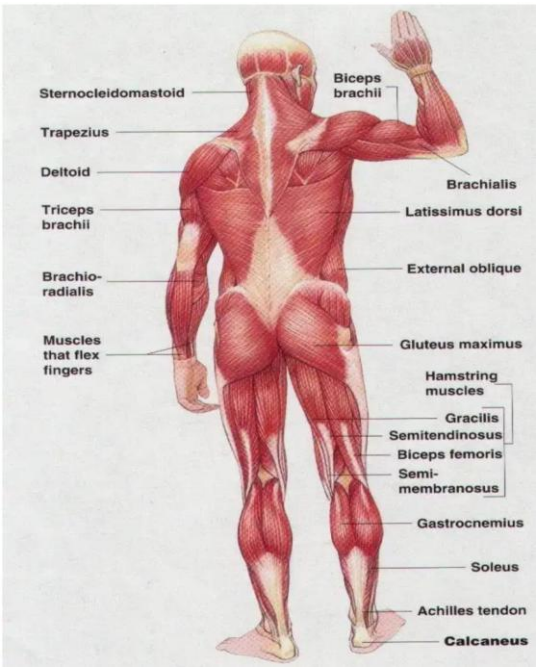

3.2 पेशीय संस्थान (Muscular System)

हमारे शरीर में जो अस्थि–तंत्र है यानि हड्डियों का जो ढाँचा है और जो बाहरी त्वचा है इसके बीच का अधिकांश भाग मांस–पेशियों से निर्मित होता है और इसी को हम इंग्लिश में कहते हैं muscles। ये पेशियाँ एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं से बनी हैं जिसे muscle cell के नाम से जानते हैं और ये कोशिकाएँ एक संकुचित ऊतक यानि संकुचनशील (contractile) ऊतक होती है। जिसकी कोशिकाएं लम्बे तन्तुओं के रूप में होती है।

Structure of Skeletal Muscle

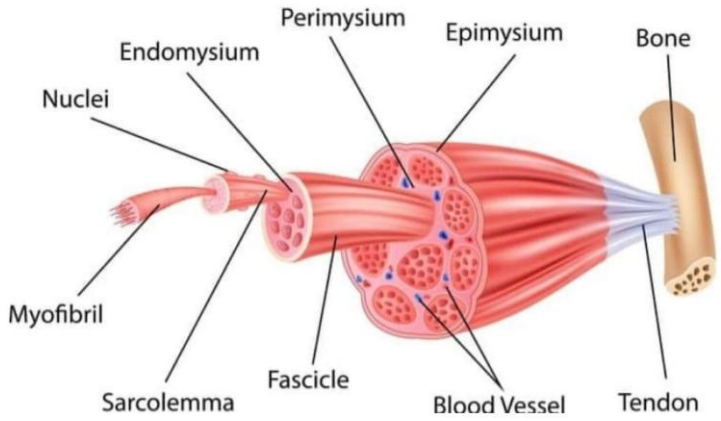

ध्याने दें– संकुचनशीलता, जीवद्रव्य का प्रमुख लक्षण है। जो पेशीय ऊतक की कोशिकाओं में सबसे अधिक होता है।

जन्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने एवं अंगों को हिलाने की क्षमता (Lcomotion and movement) पेशी ऊतक के कारण ही होती है। एक व्यक्ति अपने हाथोंको हिलाता है पैरों को हिलाता है, दौड़ता है, भागता है ये सारी जो क्रियाएं है ये किस वजह से हो पाती हैं ? उत्तर में पेशी ऊतकों की वजह से हो पाती हैं यानि जो हिलाने की क्षमता है इसी को लोकोमोशन (Locomotion) कहते हैं। यदि movement न होता तो मानव शरीर अकड़ जाता। हाथ–पैर आदि सभी आं हिलते–डुलते नहीं। पेशी कोशिकाएं भ्रूण के मीसोडर्म से बनती है किन्तु आँखों की आइरिर या सिलियरी (आँखों की सिलियरी मांसपेशियाँ) भ्रूण के एक्टोडर्म से बनती हैं। और बाकी पूरे शरीर में जहाँ भी पेशी कोशिकाएं है वह मीसोडर्म से ही बनती हैं। सामान्य रूप से कहें तो हमारे शरीर का औसतन 40%-50% भाग मीसोडर्म से ही बनता है।

पेशी कोशिकाओं के बीच–बीच में संयोजी ऊतक होता है। ये संयोजी ऊतक दो ऊतकों को बांधे रहता है। मनुष्य में कुल 639 पेशियाँ पायी जाती हैं। सबसे ज्यादा पेशियाँ पीठ में पायी जाती हैं 639 में से 180 पेशियाँ पीठ में होती हैं और सबसे मजबूत पेशियाँ जबड़े में पायी जाती हैं। मुस्कुराने के दौरान कुल 12 पेशियाँ काम करती हैं। 639 पेशियों के सामूहिक रूप को पेशी तंत्र या संस्थान कहते हैं।

पेशियाँ अस्थियाँ, उपास्थियाँ, लिगामेन्टों, तथा अन्य पेशियों से टेन्डन (Tendons) और एपोन्यूरोसिस

(Aponeuroses) के द्वारा जुड़ी रहती हैं। इन पेशियों का प्रत्येक तन्तु सार्कोलीमा नाम की झिल्ली से ढँका होता है। ये तन्तु समूहों में एकत्रित होकर छोटे–छोटे, समान्तर बण्डल्स बनाते हैं जिन्हें फेसीक्यूली कहते हैं। ये फेसीक्यूली एण्डोमाइसियम (Endomysium) नाम की संयोजी ऊतक की पतली परत से घिरे रहते हैं। बण्डल या फेसीक्यूली (Fasciculae) आपस में एक और मोटी परत पेरीमाइसियम (perimysium) से बँधे रहते हैं। यही शरीर में कंकालीय पेशियों के समूह बनाते हैं जो एपिमाइसियम (Epimysium) नाम की संयोजी ऊतक (रचना में एण्डोमाइसयिम और पेरीमाइसियम के समान) से घिरी रहती हैं।

अधिकांश कंकालीय पेशियाँ बीच में माँसल (Fleshy) और चौड़ी होती हैं, जिसे पेशी की बैली (Belly) कहा जाता है, तथा दोनों सिरों पर पतली होती है, जिन्हें टेण्डन्स (Tendons) कहा जाता है, जो अन्य ऊतकों से जु ड़ते ह ै।

टेन्डन्स (Tendons) – पेशियों के दोनों पतले सिरे (ends) टेन्डन्स (कण्डराएँ) कहलाते हैं, यह मांसपेशियों को हड्डी से जोड़ता है। इसमें प्रोटीन कोलेजन और इलास्टिन द्वारा प्रदान की जाने वाली कुछ लोच होती हैं, जो कि टेन्डन्स के प्रमुख रासायनिक घटक होते हैं। यह तन्तु या स्नायुबन्ध (Ligament) घने संयोजी ऊतक से मिलकर बना होता है। कैल्केनियल टेण्डन शरीर में सबसे मोटा टेन्डन होता है। जिसे एकीलस टेन्डन (Achilles tendon) कहते हैं। यह पैर की पिंडली को एड़ी की हड्डी से जोड़ता है। टेन्डन में लचीलापन नहीं होता, जिससे इनमें संकुचन नहीं होता। फेशिया और कण्डरा (टेन्डन) ऊतक के बीच का स्थान पैराटोन कहलाता है जो एक वसायुक्त ऊतक से भरा होता है।

एपोन्यूरोसिस (Aponeurosis)

यह दिखने में त्रिकोणाकार होती है। यह शरीर के कुछ भागों में जैसे उदरीय (पेट) भित्ति में टेन्डन फैलकर एक चपटी परत बनाते हैं जिसे एपोन्यूरोसिस (कण्डराकला) कहा जाता है। यह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कई पेशी आवरणों से जुड़ी रहती है। उदाहरण के तौर पर पामर एपोन्यूरोसिस (Palmaraponeurosis) जो कि हथेली की त्वचा के नीचे स्थित होती है और एक तन्तुमय आवरण बनाती है। ऐसे ही लिनिया एल्बा (Linea alba) जो कि उदर भित्तियों के तन्तुओं के आपस में मिलकर बनती है और नाभि के ऊपर एक नालीनुमा संरचना बनाती है जिसे हम प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं।

फैशिया (Fascia) – यह शरीर की सभी पेशियों को ढक कर तथा उन्हें आपस में बांध कर रखने के लिए तन्तुमय संयोजी ऊतक (fiubrous connective tissue) का एक आवरण बनाता है। इस आवरण को फैशिया या प्रावरणी (Fascia) कहते हैं यह दो प्रकार की होती हैं– उपरिस्थ (superfescial) तथा गहन (Deep) त्वचा की गहराई, खोपड़ी (scalp), हथेलियों एवं तलवों में उपस्थित फैशिया पायी जाती है। एक यह अलग–अलग जगहों पर अलग–अलग मोटाई में होती है। इसमें रक्त वाहिकाएँ, तन्त्रिकाएं, लसीका वाहिनियाँ तथा अनेक वसा कोशिकाएं पायी जाती हैं इसी कारण यह ढीले संयोजी ऊतक (Loose connective tissue)

की बनी होती हैं। यह एक रक्षात्मक परत बनाती है तथा इन वाहिनयों को बिना किसी रूकावट के गति करने में सहायता देती है।

गहन फैशिया उपरिस्थ फैशिया के नीचे स्थित होती है। यह घने संयोजी ऊतक (Dense connective tissue) की बनी होती है। यह पेशियों को बंधती तथा लपेटती है। इसमें भी कुछ मात्रा में रक्त वाहिकाएँ, तन्त्रिकाएँ, लसीका वाहिनियाँ तथा वसा कोशिकाएँ पायी जाती हैं।

3.3 पेशियों का नामकरण (Nomenclature of Muscles)

हमारे शरीर में पायी जाने वाली इन पेशियों को किस प्रकार पहचाना जाए, इस आधार पर पेशियों का नामकरण किया गया। पेशियों को नाम उनकी आकृति, नाप, पेशीय तन्तुओं का लक्ष्य, गति, उत्पत्ति और सम्मिलन

(बिंदु या भाग जिसके द्वारा एक मांसपेशी जुड़ी हुई हो), कार्य तथा हरकत के अनुसार होते हैं।

(i) आकृति (Shape) – उदाहरण के तौर पर आकृति के आधार पर डेल्टॉइड पेशी (Deltoid muscle) का नाम उसकी त्रिकोणाकार या डेल्टा आकृति, ट्रेपेज़ोइड पेशी (trapezoid muscle) का नाम डायमण्ड (Diomond) आकृति, तथा प्लेटिस्मा पेशी (Platysma muscle) का नाम (Plat = flat) चपटी आकृति के आधार पर रखा गया है।

(ii) नाप (Size) – उदाहरण इसमें वास्टस लेटेरालिस पेशी (Vastus lateralis muscle) का नाम "vastus" = great लम्बाई के आधार पर, पेक्टरॉलिस मेजर पेशी (Pectoralis majar muscle) तथा पेक्टरॉलिस माइनर पेशी (Pectoralis minar muscle) का नाम ज्यादा और कम के आधार पर रखा गया है।

(iii) पेशीय तन्तुओं का लक्ष्य (Orientation of muscle fibre) – इसके अन्तर्गत आड़ी–टेढ़ी और रेक्टस पेशी आती है। जीभ की ट्रांसवर्स पेशी (Transverse muscles of tongue) पेट की external oblique muscle तथा Rectus abdominal muscle इसके उदाहरण हैं।

(iv) गति (Action)- Flexor carpi radiatis muscle, extensor indicis muscle, supinator muscle आदि पेशियों के नाम उनकी गति के आधार पर रखे गये हैं।

(v) उत्पत्ति (Number of origins) – इन पेशियों के नाम उनकी उत्पत्ति स्थान की गिनती के आधार पर रखा गया है जैसे Biceps brachi muscle जिसकी उत्पत्ति दो बिन्दुओं पर, Tricep brachii muscle जिसकी तीन बिन्दुओं पर, Quadriceps femoris muscle जिसकी उत्पत्ति चार बिन्दुओं पर से होती है।

(vi) उत्पत्ति और सम्मिलन (Origin and insertion) – कुछ पेशियों के नाम उनके जुड़ने के स्थान के आधार पर रखा गया है जैसे sternohyoid muscle उरोस्थि (sternum) और हायॉइड (hyoid) हड्डियों से जुड़ी होती हैं।

(vii) कार्य (Function) – कुछ पेशियों के नाम उनके कार्य करने के आधार पर रखे गये हैं जैसे चेहरे की Risorius mucle में 'risus = laugh"।

(viii) स्थान (Location) –कुछ पेशियों के नाम उनकी स्थिति के स्थान के आधार पर रखा गया है, जैसे Supraspinatus तथा infraspinatus muscle जो scapulla के ऊपर और नीचे स्थित होती है, की स्थिति के अनुसार नामकरण किया गया है।

पेशियों का उद्‌गम एवं निवेशन (Origin and Insertion of Muscles)

(i) उद्‌गम– पेशी का वह सिरा जो संकुचन होने पर स्थिर अवस्था में होता है। अर्थात उस सिरे में कोई हलचल नहीं होती है, पेशी का उद्‌गम कहलाता है तथा ऐसा सिरा जिस हड्‌डी से जुड़ता है उस स्थान को उद्‌गम स्थल कहते हैं। पेशियों के उनके कार्य के अनुसार उनके उद्‌गम स्थल में परिवर्तन होते रहते हैं। पेशी का उद्‌गम स्थल सामान्य रूप से अक्षीय कंकाल के अधिक पास रहता है।

(ii) निवेशन – पेशी का वह सिरा जो गतिशील होता है पेशी का निवेशन कहलाता है अर्थात हड्‌डी के उस हिस्से से पेशी का निवेशन होता है। पेशी का निवेशन अक्षीय कंकाल से दूर होता है। पेशियों की क्रिया के अनुसार ही इनके उद्‌गम स्थल में परिवर्तन होते है, साथ ही निवेशन स्थल भी परिवर्तित हो जाते हैं।

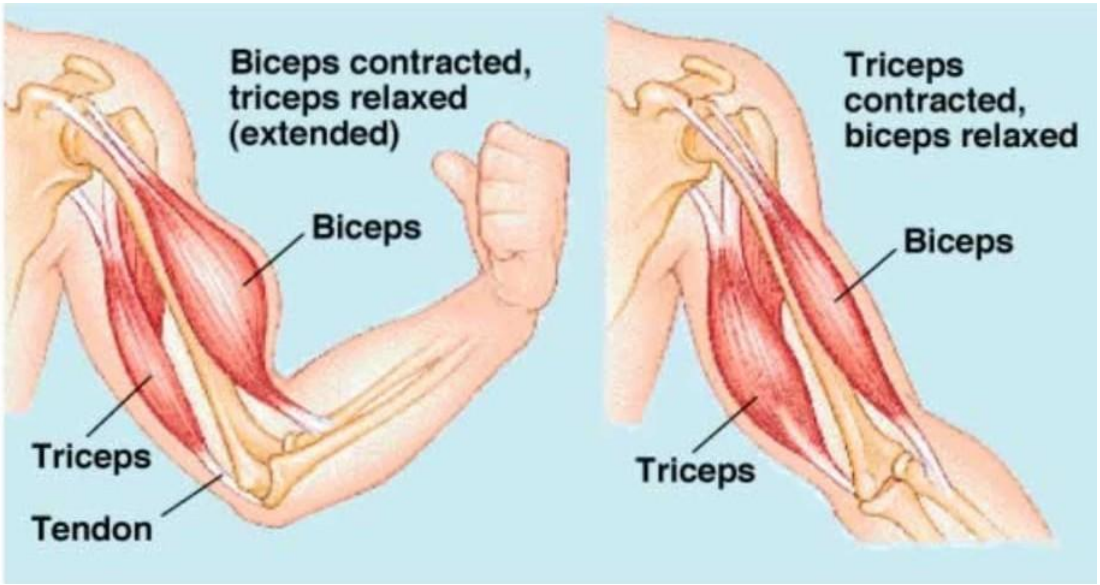

3.4 पेशियों की संरचना

पेशियों की बनावट पेशी तन्तुओं के विभिन्न आकारों में व्यवस्थित होने के कारण होती है। तन्तुओं के विभिन्न व्यवस्थाओं के फलस्वरूप ही पेशियों की शक्ति, गतिशीलता, स्थिरता, लचीलापन आदि होता है। पेशी के मध्य भाग के लम्बे होने से पेशी में गति अधिक होती है। मोटी पेशी में शक्ति अधिक होती है। पेशी में तन्तुओं की संख्या अधिक होने से पेशी में शक्ति अधिक होती है।

फेशीकिल्स (Fascicles) की व्यवस्था (arrangement) तथा उनके टेण्डन्स (Tendons) के जुड़ाव– स्ट्रेप पेशी (strap muscle), तकु ‍रूप तथा फ्यूजीफॉर्म (Fusiform) पेशी, पंख के समान या पीनेट पेशी

(Pennatemuscle) तथा गोलाकार पेशी (circular muscle) के रूप में होते हैं।

(i) स्ट्रेप पेशी (Strap muscle)- इन पेशियों तन्तुओं के समूह अक्ष के समानान्तर होते हैं। इन पेशियों में गति अधिक होती है लेकिन यह अधिक शक्तिशाली नहीं होती हैं। जैसे गर्दन की स्टर्नोहायॉइड पेशी (sternohyoid muscle) तथा उदरीय भित्ति (पेट की) की रेक्टस एब्डोमिनस पेशी।

(ii) फ्यूजीफार्म पेशी (Fusiform muscle)- यह तकले के आकार की होती है, इनका मध्य भाग (Belly) मोटा होता है, जैसे– बाँह की बाइसेप्स पेशी।

(iii) पीनेट पेशी (Pennate muscle)- इसके छोटे तन्तुओं का समूह टेण्डन के कोण (तिरछे) पर होते हैं अथवा पेशी की पूरी लम्बाई में टेन्डन के साथ–साथ होते हैं। ये पंख के समान दिखाई देते हैं। अधिकांश फेशिकिल्स प्रत्यक्षतः टेन्डन्स से जुड़ते हैं। समान्यतः अन्य तरह की पेशियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होती है। यह तीन प्रकार की होती है–

1. यूनिपीनेट पेशी (Unipennate muscles)
2. बाइपीनेट पेशी (Bipennate muscles)
3- मल्टीपीनेट पेशी (Multipennate muscles)

यूनिपीनेट पेशी में टेन्डन के एक ओर तिरछे फेशिकिल्स होते हैं, जैसे अगूठें की फ्लेक्सर पॉलिसिस लोगस पेशी (Flexor policis longus muscle) में बाइपीनेट पेशी में तिरछे फेशिकिल्स टेन्डन के दोनों ओर होते हैं, जिससे टेन्डन पर दोनों ओर से खिंचाव पड़ता है, जैसे टांग की रेक्टस फीमोरिस पेशी में। मल्टीपीनेट पेशी में अनेकों तिरछे फेशिकिल्स कुछ टेन्डन्स के साथ–साथ व्यवस्थित रहते हैं, जैसे कन्धे की डेल्टॉइड पेशी।

(iv) गोलाकार पेशी (Circular muscle)- इसमें फेशिकिल्स किसी छिद्र (Opening) अथवा रचना के चारों ओर व्यवस्थित रहते हैं, जैसे मुँह की ऑर्बिकुलेरिस ओरिस (Orbicularis oris) पेशी तथा नेत्र की ऑर्बिकुलेरिस ओकुलाई (Orbicularis oculi) पेशी।

3.5 पेशियों के प्रकार

पेशियां तीन प्रकार की होती हैं–

(i) ऐच्छिक पेशी (Voluntary muscle)

(ii) अनैच्छिक पेशी (Involuntary muscle)

(iii) हृदपेशी (Cardiac muscle)

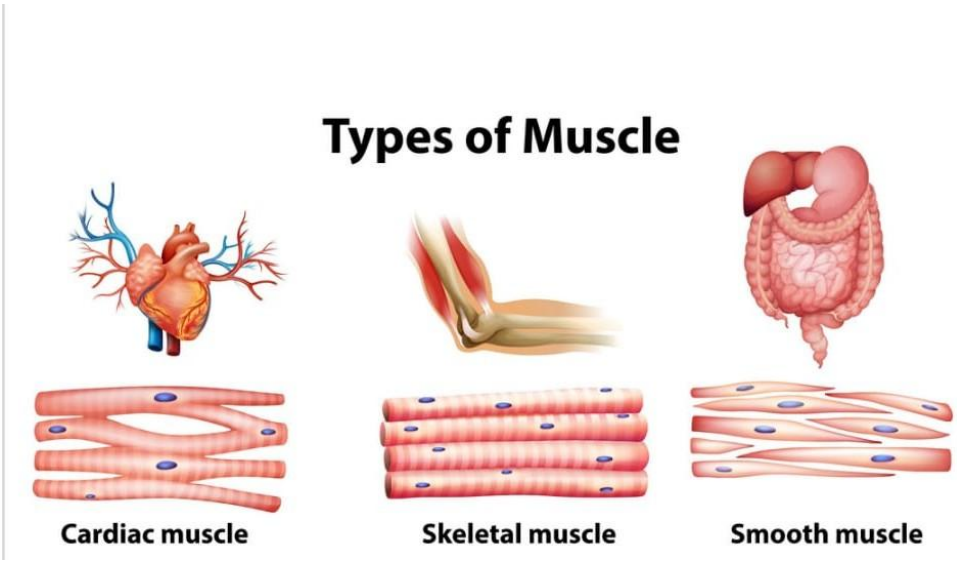

(i) रेखित पेशियाँ (Straited muscles) -

शरीर की अधिकांश पेशियाँ रेखित पेशियाँ हैं। 639 में से 400 पेशियाँ रेखित पेशियाँ ही होती हैं। यह प्रायः तंत्रिका तंत्र के चेतन नियन्त्रण में मनुष्य की इच्छानुसार कार्य करती हैं अर्थात यदि मनुष्य अपनी चेतना में है सोचने–समझने की शक्ति में है तो मनुष्य की इच्छानुसार इन पेशियों को हिलाया–डुलाया जा सकता है। मनुष्य की इच्छानुसार कार्य करने के कारण इन पेशियों को ऐच्छिक पेशियाँ (Voluntary muscles) भी कहते हैं। अगर इसकी बनावट की बात करें तो इनके दो छोर अर्थात जो पतले किनारे होते हैं उन्हें टेण्डन (Tendon) कहते हैं और पेशियों के प्रत्येक तंतु बहुकेन्द्रीय लम्बे एवं बेलनाकार होते हैं। अधिकांश रेखीय पेशियां अपने दोनों सिरों पर टेण्डन नामक पतली एवं मजबूत डोरी से अस्थियों (हड्डियों) से जुड़ी रहती हैं अतः इन्हें कंकालीय पेशियाँ (Skeletal muscles) भी कहते हैं।

रेखित पेशी में मायोसिन और एक्टिन नामक प्रोटीन पाया जाता है। पेशी तन्तुओं के चारों तरफ जो आवरण होता है जिससे यह घिरा रहता है उसे सार्कोलेमा कहते हैं।

(ii) अरेखित पेशियाँ (Unstraited muscle)

ये खोखले होते हैं। ये खोखले अंतरांगों जैसे आहारनाल, मूत्राशय, पित्ताशय, श्वासनली, गर्भाशय, योनि, जनन एवं रूधिरवाहिनियों की दीवार तथा शिशन, प्लीहा, नेत्रों और त्वचा की डर्मिस आदि पर अरेखित पेशियाँ पायी जाती हैं। इनका अस्थियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है अतः इस प्रकार की पेशियाँ पतली, स्पेन्डल (घुमावदार) तथा एक केन्द्रक वाली होती हैं। अरेखित पेशियाँ अनैच्छिक (Involuntary) होती हैं इसी कारण इनमें कभी भी थकान नहीं होती है। ऊपर दिये गए उदाहरण पर ध्यान दें तो जैसे आहारनाल, कभी खाते–खाते आपकी आहारनाल में दर्द नहीं करती है, श्वासनली कभी थकती नहीं है ये सारे अंग अनैच्छिक होते हैं अर्थात इनमें कभी भी थकान नहीं होता है। थकान का मतलब इन पेशियों में कभी भी लैक्टिक एसिड का जमाव नहीं होता है।

लैक्टिड एसिड के जमाव से ही थकान होता है चूँकि यह अनैच्छिक हैं तो इन पेशियों में यह कार्य नहीं होता है।

(iii) हृदय पेशियाँ (Cardiac muscles)

आपको नाम से ही पता चल रहा होगा कि ये पेशियाँ केवल हृदय की मांसल भित्तियों में पायी जाती हैं इसलिए इन्हें हृदय पेशियाँ कहते हैं। ये शाखान्वित होती हैं अर्थात कई सारी शाखाओं में फैली होती हैं। ये शाखाएं ही आपस में मिलकर एक जाल बनाती हैं। पेशियों में एक–एक केन्द्रक भी उपस्थित होता है अर्थात जितनी पेशियाँ होती है प्रत्येक में एक–एक केन्द्रक होता है। ये पेशियाँ चारों तरफ से सार्कोलेमा से घिरा होता है।

इन पेशियों में रेखित और अरेखित दोनों के गुण पाए जाते हैं। एक केन्द्रक दूसरे केन्द्रक से अन्तर्विष्ट पट्टियों के द्वारा अलग रहते हैं। इन पेशियों में जन्म से लेकर मृत्यु तक स्वतः संकुचन होता रहता है और बिना थके यह पेशियाँ कार्य करती रहती हैं। हृदय बिना थके जीवन पर्यन्त काम करता रहता है।

3.6 पेशियों के कार्य एवं गतियाँ

क्या आप बता सकते हैं कि कोई अंग मुड़ता कैसे है ? जैसे कभी आपने चाहा अपने हाथों को मोड़ना, पैरों को मोड़ना, अपने सिर को घुमाना तो ऐसे में कोई अंग मुड़ता कैसे है? आइए जाने मुड़ने के लिए अंगों में दो तरह की क्रियाएं होती हैं। एक क्रिया होती है आकुंचनी पेशी (Flexar muscle) तथा दूसरी होती है प्रसारिणी पेशी (Externsar muscle)। आकुंचनी पेशी में इसके संकुचन से अंग मुड़ता है तथा प्रसारिणी पेशी में इसके संकुचन से अंग फैलकर वापस सीधा हो जाता है। अर्थात ये पेशियाँ एक–दूसरे के विपरीत कार्य करती हैं। शरीर के किसी अंग में गति होने के लिए एक वर्ग की पेशियाँ संकुचित होती हैं, जबकि दूसरे वर्ग की पेशियाँ शिथिल होती हैं। पेशियों की क्रियाओं से ही शरीर के विभिन्न अंगों में गति होती है, जिससे मनुष्य तरह–तरह के कार्य कर पाता है। कंकाल पेशी का संकुचन केवल एक ही दिशा में इसके उद्‌गम की ओर होता है।

संकुचन पेशी शरीर के किसी भी भाग में गति का कार्य करती है। अवरोधी (Agonists) कहलाती है तथा जो पेशियाँ इनके विपरीत कार्य करती हैं प्रतिरोधी (Antagonists) पेशियाँ कहलाती हैं। संकुचन पेशियाँ समूह में योगवाही पेशी कहलाती है। शरीर के किसी भाग में गति किसी एक पेशी के कारण उत्पन्न नहीं होती है। बल्कि कई पेशियाँ मिलकर यह काम करती हैं। उदाहरण के लिए आगे झुककर कोई वस्तु उठाने के लिए कोई एक पेशी कार्य नहीं करती, बल्कि इस कार्य को करने के लिए अंगुलियों, अगूठें, कलाई, कोहनी, कंधा तथा धड़ तक की पेशियों में हलचल होती है।

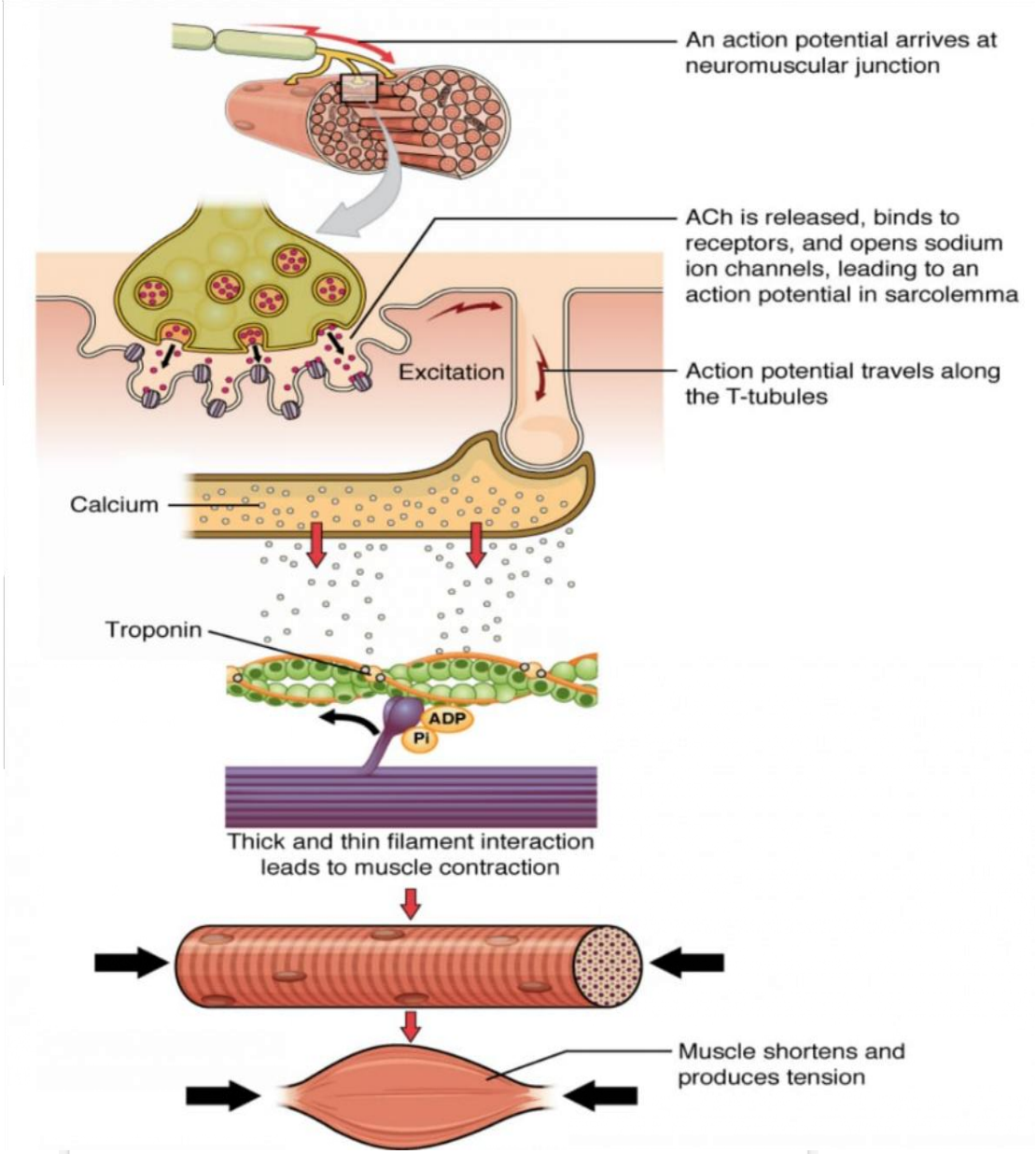

Excitation-contraction coupling. (1) An action potential arrives at the neuromuscular junction and triggers the acetylcholine release, ACh diffuses across the synaptic cleft, binds to its receptors on the plasma membrane, (2) the postsynaptic action potential propagates along the sarcolemma and down the T-tubules, (3) triggers Ca 2+ release from the SR, (4) Ca 2+ binds to troponin which undergoes a conformational change, removing the blocking action of tropomyosin and (5) contraction occurs, (6) Ca 2+ is actively removed into the SR when the action potential ends, (7) tropomyosin blockage is restored and the muscle relaxes. Copyright ©

मस्तिष्क की संवेदी तंत्रिकाएं पेशिय संवेदनाएं (Muscle sense) पैदा करते हैं। यह संवेदना इतनी धीमी गति में होती है कि केवल पेशी को संकुचन और शिथिलन की जागरूकता भर देता है। यह जागरूकता एच्छिक होती है अर्थात पेशी को इच्छानुसार शिथिल और संकुचित किया जा सकता है। सामान्य तौर पर पेशियाँ स्वयं ही कुछ तनी रहती हैं जिसे टोन (Tone) कहते हैं। टोन ही के कारण पेशियाँ बिना थके एक सी स्थिति में रहती हैं।

प्रत्येक कंकालीय पेशी में रक्त वाहिकाएं और तंत्रिकाएं जुड़ी रहती हैं। ये वाहिकाएँ माँसपेशियों में रक्त द्वारा ऑक्सीजन और पोषक तत्वों को पहुँचाती हैं और कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य अपशिष्ट पदार्थों को निकालती हैं। संकुचन शुरू करने वाले संकेतों को केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र से मोटर की नसों के माध्यम से मांसपेशियों में भेजा जाता है। मांसपेशियाँ विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रंथियों द्वारा निर्मित हार्मोन का भी जवाब देती हैं; हार्मोन विशिष्ट प्रतिक्रियाओं को शुरू करने से पहले कोशिकाओं की सतहों पर पूरक रिसेप्टर्स के साथ बातचीत करते हैं। प्रत्येक पेशी में खिंचाव के रिसेप्टर्स (ग्राही) नामक महत्वपूर्ण संवेदी संरचनाएं भी होती हैं, जो मांसपेशियों की स्थिति की निगरानी करती हैं और केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को जानकारी लौटाती हैं। मांसपेशियों की गति और मांसपेशियों की लम्बाई में परिवर्तन के वेग के प्रति संवेदनशील रिसेप्टर्स होते हैं। वे एक प्रतिक्रिया प्रणाली को पूरा करते हैं; जो केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को मांसपेशियों के आंदोलन का आंकलन करने और आंदोलन की रोशनी में मोटर संकेतों को समायोजित करने की अनुमति देता है।

पेशीय तन्तुओं को संकुचित होने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है और ये ऊर्जा आहार से विशेष रूप से कार्बोहाइड्रेट्स के आक्सीकरण से प्राप्त होती है। पाचन के दौरान कार्बोहाइड्रेट्स ग्लूकोज में परिवर्तित होते हैं। ग्लूकोज, जिसकी शरीर को तुरन्त आवश्यकता नहीं रहती है, ग्लाइकोजन में परिवर्तित हो जाता है और यकृत एवं पेशियों में संचित रहता है। पेशियों में संचित ग्लाइकोजन पेशीय क्रिया के लिए ऊष्मा एवं ऊर्जा का स्रोत होता है। ग्लाइकोजन का ऑक्सीकरण होने पर कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) एवं जल (H_2O) बनते हैं तथा ऊर्जा से भरपूर एक यौगिक बनता है, जिसे एडिनोसिन ट्रोइफॉस्टेट (ATP) कहते हैं। पेशी संकुचन के लिए आवश्यक ऊर्जा ATP से प्राप्त होती है, और यह यौगिक एडीनोसिन डाइफॉस्फेट (ADP) में परिवर्तित हो जाता है। ग्लाइकोजन के ऑक्सीकरण के दौरान पाइरूविक अम्ल (Pyruvic acid) बनता है। यदि ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो तो पाइरूविक अम्ल कार्बन डाइऑक्साइड और जल में विभाजित हो जाता है तथा इस प्रक्रिया के दौरान जो ऊर्जा मुक्त होती है उसका उपयोग और अधिक एडिनोसिन ट्राइफॉस्फेट बनने में होता है। यदि ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध न हो तो पाइरूविक अम्ल लैक्टिक अम्ल (Lactic acid) में परिवर्तित हो जाता है, जो एकत्रित होकर पेशीय थकावट (Fatigue) पैदा कर देता है।

3.8 शरीर की मुख्य पेशियाँ–

मानव शरीर की मुख्य पेशियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से है–

1. **सिर की पेशियां**(Muscles of the head)– मनुष्य शरीर में सिर की अधिकतर पेशियां चेहरे में स्थिति रहती है। सिर में कपाल आक्सपीटोफ्रन्टैलिस पेशी (Occipitofrontalos Muscles) की एपोन्यूरोसिस से ढ़का होता है। जिसे गैलीया एपोन्यूरोटिका (Gales Aponeurotica) कहा जाता है। यह पेशी दो भागों एन्टीरियर एवं पोस्टीरीयर दो भागों में विभक्त होती है। यह दोनों भाग क्रमशः फ्रन्टल अस्थि एवं ऑक्सीपीटल अस्थि पर स्थित होते है।

2. **चेहरे की पेशियाँ** (Muscles of Face)– चेहरे की पेशियां को उनके कार्यो के अनुसार दो भागों में विभक्त किया है –

I. हाव भाव की पेशियाँ (Muscles of Facial Expression)

II.चबाने की पेशियाँ (Muscles of Mastication)

1. हाव भाव की पेशियाँ (Muscles of Facial Expression)– ये पेशियाँ त्वचा में खिंचाव उत्पन्न कर विभिन्न प्रकार के हाव–भाव उत्पन्न करती है। ये पेशियाँ निम्न है।

क) **आक्सीपिटोफ्रन्टैलिस पेशी**(Occipitofrontalis)–यह ललाट एवं आँखो के ऊपरी भाग का निर्माण करती है।

ख) **आर्बिकुलेरिस आक्यूलाइ पेशी**(Orbicularis Ocular)– यह गोलाकार पेशी आँखों को खोलने और बन्द करने का कार्य करती है तथा आंखों को गोल–गोल घूमाने के लिये इस पर छोटी छोटी पेशियाँ होती है।

ग)**आर्बिकुलेरिस ऑरिस पेशी** (Orbicularis Ores)– यह गोलाकार पेशी मुंह के चारो ओर स्थित है।

2. **चबाने की पेशियाँ** (Muscles of Mastication)– ये पेशियां भोजन को चबाते को समय निचले जबड़े को ऊपर व नीचे,दायें – बायें तथा मुंह को बंद करती है। जिससे भोजन अच्छी तरह पिस जाता है। ये पेशियाँ निम्न है–

क) टेम्पोरेलिस पेशी (Temporalihs Muscles)– यह पेशी निचले जबड़े को ऊपर उठाकर मुंह को बंद करने का कार्य करती है।

ख) टैरीगाइड पेशी (Pterygoid Muscles)– यह टैरीगाइड प्रवर्ध से लेकर मेण्डीबूलर तक फैली होती है इस पेशी से एक प्रकार से जुगाली सी होली है। जिससे भोजन को भली –भाँति चबाया जा सकता है।

स) मैसेटर पेशी (Master Muscles)– यह पेशी जबड़े के कोण से जाइबगोमेटिक आर्च तक फैली होती है। यह चबाते समय निचले जबड़े को ऊपर उठाकर ऊपर निचले जबड़े से मिलाती है। जिससे भोजन अच्छी तरह पिस जाता है।

3.गर्दन की पेशियाँ (Neck Muscles)– गर्दन को अनेक पेशियाँ लगी होती है।

जिनके सहारे सिर दांये–बायें, ऊपर–नीचे, घुमाया जा सकता है। ये पेशियाँ निम्न है –

क) स्टर्नोक्लीडोमैस्टॉइड पेशी (Sternocleidomastoid Muscles)– यह पेशी गर्दन के सामने स्थित होती है। जब दोनों ओर की पेशी में एक साथ संकोच होता है।

तब यह पेशी गर्दन झुकाने का कार्य करती है।

ख) टैपीजियस पेशी (Trapezius Muscles)– यह पेशी वक्ष के पीछे वे गर्दन में स्थित होती है। यह पेशी त्रिकोणाकार होती है। इस पेशी के ऊपरी भाग में संकुचन से स्कैपुला ऊपर की और तथा निचले भाग के संकुचन से नीचे की ओर खिचांव होता है। परन्तु जब सम्पूर्ण पेशी में एक साथ संकुचन होता है तो यह स्कैपुला (कंधों के पीछे की ओर खीचती है। अर्थात् मेरूदण्ड की ओर खीचती है।

ग) प्लैटिज्मा मायोइड्स (Platysma Muscles)– यह पेशी गर्दन की निचली सतह पर त्वचा के नीचे स्थिति होती है। इस पेशी के संकुचित होने पर मुँह के कोण के नीचे हो जाते है तथा गर्दन की त्वचा खींच जाती है। इनके अतिरिक्त गर्दन में स्टर्नोहायाइड (Stern hyoid Muscles) माइलोहायाइड (Mylohyoid) स्टाइलोहायइड (Stylohyoid) आदि पेशियां होती है।

4.**वक्ष भाग की पेशियाँ** (Muscles of Trunk)– वक्ष भाग के पेशियां निम्न है –

क) पेक्टोरेलिस मेजर पेशी (Peactoralis MajorMuscles)– यह पेशी भुजा(बांह) को वक्ष के सामने की ओर खीचने का कार्य करती है। तथा कन्धे का घुमाव भी इसी पेशी में होता है।

ख) पेक्टोरेलिस माइनर पेशी (Pectoralis Minor Muscles)– यह पेशी पेक्टोरेलिस मेजर पेशी के नीचे स्थित होती है तथा यह स्कैपुला को नीचे की ओर खीचती है।

ग) सीरेटस एन्टीरियर पेशी (Serratus Anterior)– यह पेशी स्कैपुला को आगे की ओर तथा बाहर की ओर खीचने का कार्य करती है।

घ) डायाफ्राम (Diaphragm) . यह पेशी वक्ष स्थल व उदर क्षेत्र को अलग करती है यह गुम्बद के आकार की चौड़ी पेशी है।

ड़) वाह्य इन्टरकॉस्टल पेशियाँ (External Intercoastal Muscles)– यह पेशी पसलियों को आगे और ऊपर की ओर उठाने का कार्य करती है। इसी पेशी के कारण फेफड़ों में वायु भर पाती है।

च) आन्तरिक इन्टरकॉस्टल पेशियाँ (Internal Intercoastals Muscles)– यह पेशी भीतर की ओर स्थित होती है। यह पेशी पसलियों को नीचे एवं अन्दर की ओर खीचने को कार्य करती है इस पेशी के कारण ही श्वसन बाहर निकलने में मदद होती है।

5. पीठ की पेशियाँ (Muscles of the Back)– पीठ के ऊपरी भाग व नीचले भाग की चौड़ी सपाट पेशी क्रमशः (Trapezius Muscles) एवं लेटिस्मस डॉसाई (Latissimus Dassi Muscles) तथा रोहम्बॉइडियस व (Levator Scapulaet) पेशियां प्रमुख है। जिनका निवेशन ऊपरी भुजा की अस्थियों से होता है। पीठ की पेशियों में कुछ अतिविशिष्ट पेशियों के अन्तर्गत श्वसन में भाग लेने वाली सीरेटस पोस्टीरियर सुपीरियर (Serratus Posterior Superior Muscles) पेशी है एवं स्पलेनियस पेशी (Splenius Muscles) है। इस पेशी में संकुचलन होने से सिर का प्रसारण (Extension) होता है। सैक्रोस्पाइनैलिस पेशी का कार्य वर्टिबल कॉलम को प्रसारित करना है। इन पेशी का दूसरा नाम रेक्टस स्पाइनैलिस (Rectus Spinalis) भी है।

6. भुजा की पेशियाँ – इसके अन्तर्गत बाइसेप्स बैकिएलिस पेशी (Biceps Brachii Muscles) तथा सबस्केपुलरिस पेशी (Subscapularis Muscles)टेरीस मेजर पेशी (Teres Major Muscles) डेल्टॉइड पेशी (Deltoid Muscles) कोरेकोब्रैकिएलिस पेशी (Coracobrachialis Muscle) आदि पेशियां आती है।

7. श्रेणीगत पेशियाँ(Pelvic Muscles) – इसमें लीवेटर एनाई (Levator Ani Muscles) कौक्सिजाई पेशियां (Coccygeus Muscles) ग्लूटियस मैक्सिमस (Gluteus Muscles) आदि पेशियां आती है।

8. पैरों की पेशियाँ – जंघा के आगे की तरफ सार्टोरिस रेक्टसफिमोरिस (Rectus Femora's) वास्टस लेट्रलिस एवं वास्टस मिडिएलिस (Vastus Lateralis, Vastus Medialis) और पीछे की तरफ बाइसेप्स फिमोरिस (Biceps Femoris)सेमिटैन्डिनोसस (Semitendinosus) आदि मांसपेशियां होती है। घुटने के नीचे के हिस्से में गैस्ट्रोक्नीमियस (Gastrocnemius) सोलियस (Solius) आदि प्रमुख है।

शरीर की सबसे बड़ी मांसपेशी ग्लूटियस मैक्सिमस (Gluteus Maximums) है। यह नितम्ब भाग में मिलती है। सबसे लम्बी मांसपेशी सार्टोरियस (Sartorius) है। यह जंघा के अग्रभाग में पाई जाती है। शरीर की सबसे छोटी मांसपेशी स्टेपीडियस (Stapedius) है। यह कर्ण के अन्दर पाई जाती है।

अस्थि एवं पेशी तंत्र पर योग का प्रभाव

अस्थियों, अस्थि संधियों तथा पेशियों को नियमित योग आसनों द्वारा विकसित और लचीली बनाया जाता है। आसनों द्वारा पेशियों और संधियों के कोमल खिंचाव से पेशियों का तनाव दूर होता है और लचीलापन बढ़ता है। आसनों द्वारा सन्धियों के खिंचाव से संधियों में पाया जाने वाला पदार्थ साइनोवियल (synovial fluid) का स्राव होता है। यह पदार्थ संधियों में स्रावित होकर जोड़ों को कोमलता प्रदान करता है। साथ ही अवशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालता है। परिणामस्वरूप जोड़ों (सन्धियों) के बीच का कड़ापन दूर होता है और गठिया (Arthritis) जैसे रोग ठीक होने लगते हैं। वजन वहन करने वाले आसन सामान्यतः अस्थियों की दुर्बलता (osteoporosis) को ठीक करते हैं और अस्थियों को मजबूती प्रदान करते हैं।

लम्बे समय तक सही तरह से किए गए आसनों से कमर का दर्द दूर होता है और शरीर की मुद्रा (Posture) में सुधार होता है।

आसनों के नियमित करने से शरीर की पेशियों का लचीलापन बढ़ता है तथा शरीर अनुकूलता को प्राप्त कर रोग मुक्त बनता है। आसनों द्वारा मोटापे को कम कर पेशियों में जमा हुए वसा (fat) को कम किया जा सकता है तथा पेशियों की मालिश होती है जिससे वह सही दिशा में ढल कर शरीर को सुडौल बनाती है।

प्राणायाम द्वारा ऑक्सीजन की अधिक मात्रा शरीर के सभी कोशिकाओं तक पहुँचती है। चूंकि मानव शरीर की मूल इकाई कोशिका है। अतः अस्थियों में प्राणायाम द्वारा पर्याप्त ऑक्सीजन पहुँचने से अस्थियों के अन्तर्गत होने वाले सभी कार्य सुचारू रूप से होने लगते हैं। अस्थियों में रक्त का निर्माण भी सही मात्रा में होने लगता है।

कपालभाति फेशियल मांसपेशियों की मालिश करती है और पसीने के लिए त्वचा पर छोटे–छोटे छिद्र खोलती है। आसन के दौरान स्ट्रैचिंग और संकुचन फेफड़ों और अन्य मांसपेशियों को मजबूत बनाते हैं। श्वसन प्रणाली के अंगों और उसके आस–पास की मांसपेशियों में स्थान और लोच होना चाहिए ताकि वे कुशलता से काम कर सकें। किसी के फेफड़े और डायफ्राम कितने भी स्वस्थ हों, अगर उनके आस–पास का क्षेत्र पतला है और उनके पास स्थानांतरित करने के लिए कोई जगह नहीं है, तो उनका कार्य सुचारू रूप से नहीं होगा। योग आसन शरीर की मांसपेशियों को फैलाते हैं और अधिक स्थान बनाते हैं। योग आसनों का अभ्यास छाती क्षेत्र को फैलाता है और श्वसन क्रिया में सुधाार लाता है।

कंकाल को ढकने वाली मांसपेशियाँ मानव शरीर में होने वाली सभी शारीरिक गतिविधियों को सामने लाती है। एक व्यक्ति द्वारा की गई गतिविधि अपने वश में होती है ये सब इसलिए हो पाता है कि इन कायों से जुड़ी मांसपेशियाँ व्यक्ति की इच्छा के नियंत्रण में होती है। इस प्रकार इन मांसपेशियों को ऐच्छिक कहा जाता है। हालांकि अन्य मांसपेशियाँ, जिन्हें व्यक्ति अपनी इच्छा से अनुबंधित नहीं कर पाता इसे अनैच्छिक मांसपेशियाँ कहा जाता है। अनैच्छिक मांसपेशियों का सबसे अच्छा उदाहरण पेट, आंतों और हृदय के अंग हैं। यदि योग आसनों का नियमित रूप से अभ्यास किया जाए तो मांसपेशियाँ मजबूत और अच्छी तरह टोंन हो जाती हैं। आसन पेट और कमर में वसा को कम करते हैं। शरीर के सभी अंग और कोशिकाएं सक्रिय हो जाती हैं, इस प्रकार

बीमारियों के खिलाफ प्रतिरक्षा बढ़ जाती है। पेशी प्रणाली में लगभग पांच सौ मांसपेशियाँ होती हैं। मांसपेशियाँ न केवल कंकाल को कवर करती है, बल्कि मानव शरीर के गहरे हिस्सों पर भी कब्जा कर लेती हैं। कंकाल की मांसपेशियाँ कई पेशी ऊतकों से मिलकर बनी है। जब योग आसन के माध्यम से एक मांसपेशी काम कर रही होती है, तो ये ऊतक सिकुड़ जाते हैं और परिणामस्वरूप छोटे हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पूरी मांसपेशी सिकुड़ जाती है और छोटी हो जाती है। जब फाइबर की बनी एक मांसपेशी काम पर होती है, तो यह न केवल छोटी हो जाती है बल्कि मध्य भाग में भी मोटी होती जाती है। मध्य में मांसपेशियों का यह मोटा होना सबसे अच्छा महसूस किया जा सकता है और बाइसेप्स के मामले में देखा भी जा सकता है। योग आसन सिर्फ एक लयबद्ध संकुचन और बढ़ाव को प्रभावित करके शरीर की मांसपेशियों को मजबूत करते हैं।

रे एट अल (2001) के निष्कर्ष के अनुरूप योग प्रशिक्षण मांसपेशियों की सहनशीलता को बढ़ाता है, थकान की शुरूआत को रोकता है।

Di Benedetto et at (2005) ने बताया कि 8 सप्ताह के आयंगर हठ योग अभ्यास ने स्वस्थ बुजुर्गों के पूर्वकाल श्रोणि के झुकाव को कम किया। योग आसन का मानव शरीर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। भावनात्मक प्रभाव के कारण मांसपेशियों की टोन प्रभावित होती है जो शरीर के कार्यों को प्रभावित कर सकती है। इस तरह की स्थिति से बचने के लिए योग आसनों को निरन्तर किया जाए ताकि तंत्रिका और पेशी प्रणालियों के बीच एक समन्वय बढ़ाया जा सके, मांसपेशियों की टोन को भी ठीक किया जाता है और इस प्रकार भावनाएं भी संतुलित होती हैं। इसके अलावा, अगर मांसपेशियों को अपनी सीमाओं से परे जबरदस्ती खींचा जाता है और इस तरह के खिंचाव को बनाए रखा जाता है, तो मांसपेशी बल के साथ अनुबंध करने की कोशिश करती है और अपना प्रतिरोध दिखाती है।

यह रस्साकसी मांसपेशियों में कंपकंपी को जन्म देती है। इससे मांसपेशियों के काम में वृद्धि होती है, श्वास और परिसंचरण भी बढ़ता है। इसलिए योग आसनों को कभी भी झटके से नहीं करना चाहिए।

जब मांसपेशियों को आराम दिया जाता है, तो मांसपेशियों की टोन कम हो जाती है और इस समय चिंता और तनाव की कोई गुंजाइश नहीं होती है। उड्डियान और नौली के दौरान डायफ्राम और रेक्टस एण्डोमिनस मांसपेशियों में संकुचन होता है और इसलिए पेट में सकारात्मक या नकारात्मक दबाव बनाता है।

अस्थियों एवं अस्थि संधि के लिए आसन –

पद्मासन, चक्रासन, सूक्ष्म व्यायाम, पाद हस्तासन, मार्जरी आसन, सेतु बन्धासन, मत्स्येन्द्रासन, पादहस्तासन, नौकासन, विपरीतकरणी, योग मुद्रा, सर्वांगासन, वज्रासन, मर्कटासन, सूर्य नमस्कार, त्रिकोणासन, धनुरासन, हलासन।

प्राणायाम – नाड़ी शोधन प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम

शोधनक्रिया – नौली, कपालभाति

पेशियों के लिए आसन –

ताड़ासन, तिर्यकताड़ासन, कटिचक्रासन, पवनमुक्तासन, मकरासन, स्वस्तिकासन, वीरासन, त्रिकोणासन, वृक्षासन, भुंजगासन, सूर्य नमस्कार।

प्राणायाम – नाड़ी शोधन, भ्रामरी प्राणायाम।

शोधनक्रिया – कपालभाति

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1. मानव शरीर में लगभग कितनी कंकालीय पेशियाँ होती हैं ?

   (अ) 600 (ब) 500 (स) 700 (द) 800

2. निम्न में से कौन–सा कंकालीय पेशी का प्रकार है ?

   (अ) स्ट्रेप पेशी (ब) फ्यूजीफॉर्म पेशी

   (स) पीनेट पेशी एवं गोलाकार पेशी (द) उपरोक्त सभी

3. पेशियों में निम्न में से कौन–सी गति होती है ?

   (अ) आकुंचन एवं प्रसारण (ब) अपवर्तन एवं अभिवर्तन

   (स) घूर्णन तथा पर्यावर्तन (द) उपरोक्त सभी

4. निम्न में से कौन–सी स्कन्ध को घुमाने वाली पेशी है ?

   (अ) पेक्टोरेलिस मेंजर एवं माइनर (ब) लेटिसिमस डॉर्सी

   (स) सीरेटस एन्टीरियर (द) उपरोक्त सभी

5. पेशी संकुचन के लिए आवश्यक ऊर्जा कहाँ से प्राप्त होती है?

   (अ) एडिनोसिन ट्राईफॉस्फेट (ब) ट्राईनाइट्रो टॉल्विन

   (स) एडिनोसिन डाईफॉस्फेट (द) इनमें से कोई नहीं

3.9 सारांश

उपरोक्त इकाई में आपने अध्ययन किया कि मानव शरीर का अधिकांश भाग मांसपेशियों से बना होता है। ये मांसपेशियां हमारी हड्डियों को ढककर शरीर को एक सुन्दर काया प्रदान करती हैं। पेशियों के कारण ही हमारी शरीर में गति होती है। हम अपने शरीर के अंगों को हिला डुला सकते हैं। हमारे शरीर में कुल 639 पेशियां हैं, जिनके नाम उनकी आकृति, नाप, उत्पत्ति, गति आदि के आधार पर रखा गया है। पेशियों का उद्‌गम और निवेशन उनके

संकुचन और गतिशील होने पर निर्भर करता है। पेशी का जो सिरा संकुचन होने पर स्थिर अवस्था में होता है उद्‌गम तथा पेशी को जो सिरा गतिशील होता है निवेशन कहलाता है। पेशियों की संरचना उसकी शक्ति, गतिशीलता, स्थिरता, लचीलेपन के कारण अलग–अलग होती है। पेशियां मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं, एच्छिक, अनैच्छिक तथा हृदय पेशी। ऐच्छिक पेशियां मनुष्य की इच्छानुसार कार्य करती है, अनैच्छिक पेशियां मनुष्य की इच्छा से कार्य नहीं करती हैं। ये पेशियां खोखले अंतरांगों जैसे, आहारनाल, मूत्राशय, पित्ताशय, श्वास नली आदि अंगों में पायी जाती हैं। हृद पेशी हृदय की भित्तियों पर पायी जाती है ये पेशी रेखित तथा अरेखित दोनों के गुणों वाली होती हैं। पेशियों में गति एवं कार्य उनके अकुंचन और प्रसारण के कारण होती हैं। मस्तिष्क की संवेदी तंत्रिकायें पेशीय संवेदनायें पैदा करती हैं, जिससे पेशी में संकुचन और शिथिलन की जागरूकता पैदा हो जाती है। पेशियों में रक्त वाहिकायें तथा तंत्रिकायें होती हैं जो रक्त द्वारा ऑक्सीजन और पोषक तत्वों को पहुंचाती हैं और कार्बनडाइऑक्साइड और अन्य अवशिष्ट पदार्थो को निकालती हैं।

3.10 शब्दावली

कण्डरा - माशपेशियों को अस्थि से जोड़ने वाली रचनायें

बंधानी - स्नायु

स्नायु - दो अस्थियो को जड़ने वाले प्रतानवत सूत्ररचनायें

निवेशन - गतिशील हिस्सा

ऐच्छिक पेशी - जिस पेशी को इच्छानुसार गति दी जा सके

अनैच्छिक पेशी - जिस पेशी को इच्छा अनुसार पेशी नहीं दी जा सके

आकुंचन - संकोच

प्रसारण - फैलाव

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (अ) 600
2. (द) उपर्युक्त सभी
3. (द) उपर्युक्त सभी
4. (द) उपर्युक्त सभी
5. (अ) एडिनोसिन ट्राईफॉस्फेट

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रस्तोगी, डॉ. वीरबाला (2016), जैव रसायन तथा कार्यकी, केदारनाथ रामनाथ

2. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश (2008), मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन, आगरा
3. दीक्षित राजेश (2002), शरीर रचना क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
4. शर्मा, डॉ. ताराचन्द्र (1999), आयुर्वेदिक शरीर रचना विज्ञान, नाडा पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक
5. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009), एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, भाषा भवन, मथुरा

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. शरीर की मुख्य पेशियों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2. पेशियों के प्रमुख प्रकारों का विवेचन करते हुए पेशियों के कार्य एवं गति का वर्णन कीजिए।

इकाई 4 पाचन तंत्र – संरचना व कार्य

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 पाचन तंत्र की संरचना

4.3.1 आहार नाल

4.3.2 सम्बद्ध पाचनँ ग्रन्थिया

4.4 भोजन पाचन की क्रिया विधि

4.5 भरण–पोषण

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में स्पष्ट कर दिया गया है कि मानव शरीर अनेक सूक्ष्म कोशिकाओं (cells) का बना होता है जो कि इसकी संरचनात्मक तथा क्रियात्मक इकाइयाँ (structural and functional units) होती हैं। मानव शरीर को जीवित दशा में बनाए रखने के लिए शरीर की प्रत्येक कोशिका में जीव पदार्थ के घटक अणु अर्थात जैवअणु (biomolecules) निरन्तर टूटते और बनते रहते हैं। इसे कोशिकाओं का उपापचय (Metabolism) कहते हैं। इसमें निरन्तर खपने वाले पदार्थों को 'कच्चे माल' (raw materials) के रूप में मानव अपने बाहरी वातावरण से ग्रहण करता रहता है। यह कच्चा माल (raw materials) जिसे मानव शरीर आहार के रूप में ग्रहण करता है वह उस रूप में शरीर के लिए उपयोगी नहीं होता है अपितु इसे शरीर के अनुकूल बनाने के लिए इसमें कुछ परिवर्तन करने पड़ते है ।

वे सभी भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन (क्रियाएं) जिनके फलस्वरूप आहार शरीर द्वारा ग्रहण करने योग्य बनाया जाता है, पाचन (Digestion) कहलाता है। जो–जो अंग इन क्रियाओं में भाग लेते हैं, पाचन अंग (Digestive organ) तथा जिस संस्थान के अन्तर्गत ये सभी क्रियाएं की जाती हैं, पाचन तंत्र (Digestive system) कहलाता है। पाचन तंत्र कार्बोहाइड्रेट को ग्लूकोज में, वसा को वसीय अम्ल में तथा प्रोटीन को अमीनों अम्ल में परिवर्तित करके इन्हें शरीर के अवशोषण योग्य बनाता है। प्रस्तुत इकाई में मनुष्य के पाचन तंत्र की संरचना एवं कार्य का वर्णन किया गया है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद शिक्षार्थी –

- पाचन तंत्र का संक्षिप्त परिचय दे सकेंगे।
- विभिन्न पाचन अंगों का सचित्र वर्णन कर सकेंगे।
- भोजन के पाचन की प्रक्रिया को समझा सकेंगे।
- पाचक रसों की क्रियाविधि को समझा सकेंगे।

4.3 पाचन तंत्र की संरचना

अध्ययन की दृष्टि से पाचन तंत्र को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जाता है–

(अ) आहार नाल (Alimentary Canal)

(ब) सम्बद्ध पाचन ग्रन्थियाँ (Associated Digestive glands)

(अ) आहार नाल (Alimentary Canal) -

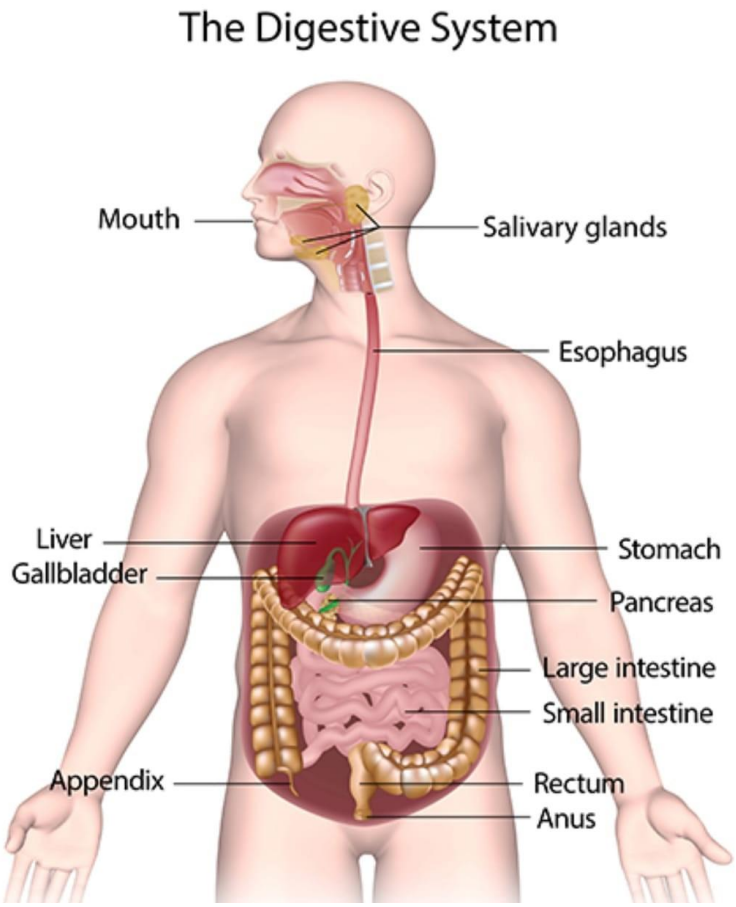

4.3.1 आहार नाल

मुख्यद्वार (mouth) से लेकर गुहा (anus) तक का रास्ता आहार नाल कहलाता है। इसकी कुल लम्बाई लगभग 8 से 10 मीटर होती है, यह खोखली और अत्यधिक कुण्डलित (coiled) आहारनाल होती है। यह कई ग्रन्थियों एवं अंगों से मिलकर बनी होती है इसलिए इसे जठरान्त्रीय मार्ग (gastrointestinal tract-GI tract) भी कहते हैं। यह निम्नलिखित प्रमुख भागों में विभेदित होती है –

1. मुख–गुहा (Buccal Cavity)
2. ग्रासनली (Oesophagus)
3. आमाशय (stomach)
4. आँत (Intestine)

1. मुख–गुहा (Buccal Cavity)-

मानव मुख मुख्यतः दो भागों में विभाजित होता है– मुख का अग्र भाग (vestibule) तथा मुख गुहा (Buccal cavity or Oral cavity)। मुख का अग्रभाग होंठो (Lips), दाँतो (Teeth) तथा गालों (Cheeks) से घिरा

होता है। मुखगुहा आहारनाल का प्रारम्भिक भाग है, जो दोनों जबड़ों के मध्य स्थित एक छिद्रनुमा संरचना है। मुख में भोजन को चबाने के साथ ही पाचन की क्रिया चालू हो जाती है। मुख गुहा के ऊपरी भाग में तालु होता है तथा नीचे वाले भाग में जीभ होती है। स्तनियों में जीभ सबसे ज्यादा विकसित होती है।

जीभ (Tongue)

यह भोजन को लार में मिलाने तथा दांतों के बीच लाने में मदद करती है। मुखगुहा की निचली सतह पर एक लम्बी एवं माँसल संरचना होती है, जिसे जीभ (Tongue) कहते हैं। इसका अग्रभाग पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होता है। जभी की ऊपरी सतह खुरदरी होती है, इन खुरदरी सतह को स्वाद कलिकाएँ (Taste Buds) कहते है। जीभ के द्वारा लार का स्रवाण होता है। इसका कार्य भोजन को स्वाद बोलना एवं भोजन का मंथन करना होता है। जीभ में दो प्रकार की ग्रन्थि होती हैं। सीरमी ग्रन्थि (Serous Gland) और श्लेष्मिक ग्रन्थि (Mucous gland) होती है। स्वाद कलिकाओं में स्वाद ग्राहक कोशिकाएँ (Taste Receptor cells) स्थित होती हैं जो व्यक्ति को भोजन के विविध स्वादों का अनुभव करवाती हैं।

जीभ से सबसे पिछले भाग पर कड़वे स्वाद का, मध्य के किनारे के भाग पर खट्टे स्वाद का आगे के किनारों पर नमकीन स्वाद का तथा सबसे आगे के भाग पर मीठे स्वाद का अनुभव होता है।

दाँत (Teeth)

बाल्यावस्था में दांतों की संख्या 20 तथा बड़े होकर यह संख्या 32 हो जाती है। हमारे मुंह का निचले दांत वाला जबड़ा ही इधर–उधर गति कर सकता है। दाँत के ऊपर हमारे शरीर का सबसे कठोर पदार्थ एनामेल का लेप चढ़ा होता है। मनुष्य के प्रत्येक जबड़े में 16 दाँत होते हैं। जो 8–8 की दो पंक्तियों में समान रूप से लगे रहते हैं। स्थायी दाँत 4 प्रकार के होते हैं– कृन्तक, रदनक, अग्रचवर्णक तथा चवर्णक।

(i) कृन्तक (Incisors) चार कृन्तक दाँत ऊपरी जबड़े में तथा चार कृन्तक दाँत निचले जबड़े में सामने की ओर स्थित होते हैं। इनका आकार छेनी के समान चपटा एवं धारदार होता है इसलिए ये दाँत भोजन को काटने का कार्य करते हैं।

(ii) रदनक (canine) ऊपरी तथा निचले जबड़े में दो–दो दाँत पाए जाते हैं। इनका आकार नुकीला होता है, और यह भोजन को चीरने–फाड़ने का कार्य करते हैं।

(iii) अग्रचवर्णक (Premalars) प्रत्येक जबड़े के आधे भाग में 2 अग्रचवर्णक पाए जाते हैं। ये आकार में चौड़े होते हैं, जो भोजन को काटने व तोड़ने का कार्य करते हैं।

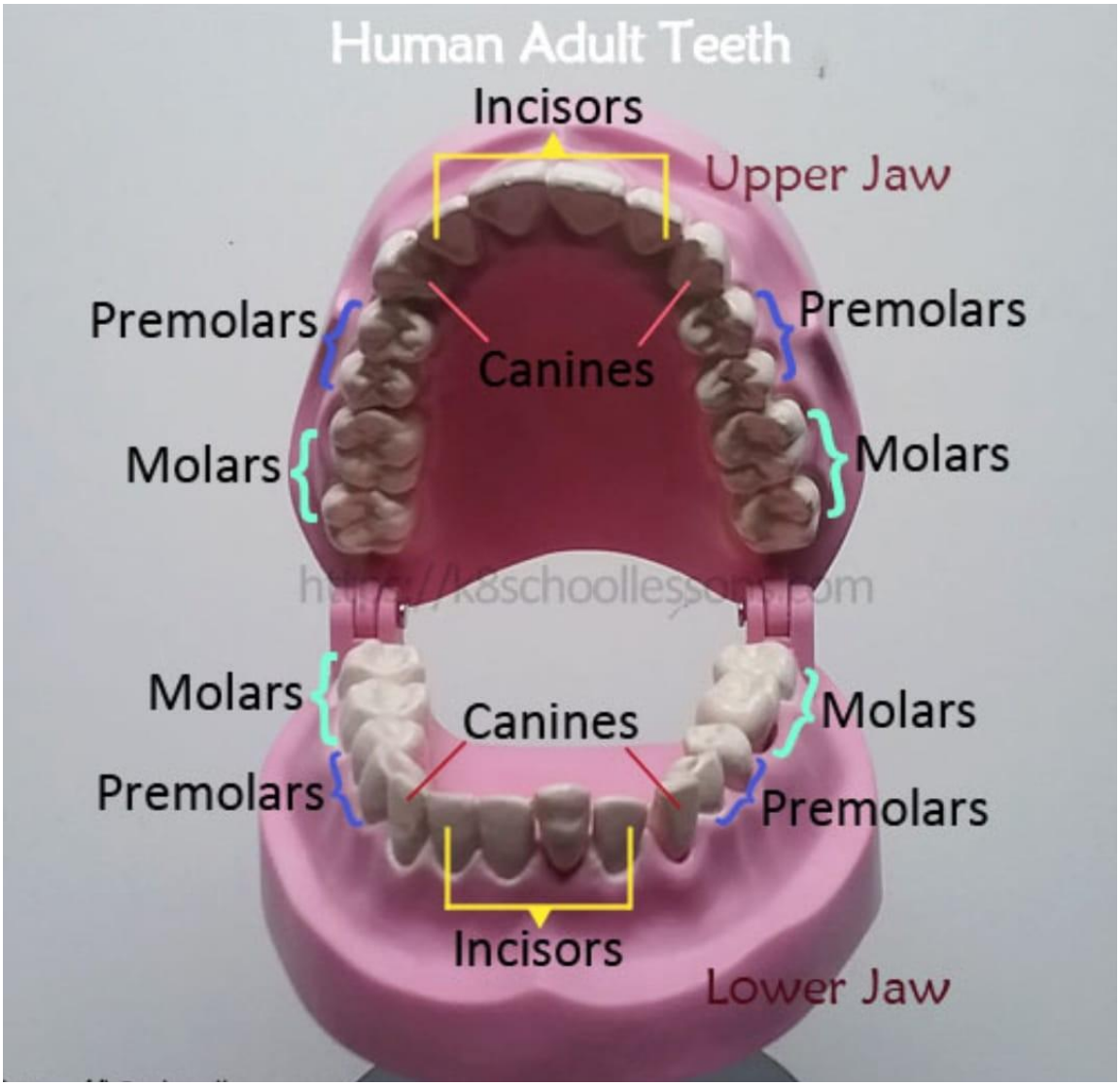

(iv) चवर्णक (Molars) इनकी संख्या ऊपरी तथा निचले जबड़े में चार–चार होती है। ये आकार में अपेक्षाकृत अधिक चौड़े होने के कारण भोजन को तोड़ने, पीसने व चबाने का कार्य करते हैं। प्रत्येक जबड़े के अन्तिम चवर्णक को बुद्धि दाँत (Wisdom teeth) कहते हैं।

ग्रसनी या गलतनी गुहा (PHARYNX OR THROAT CAVITY)

कठोर तालु के विकास के कारण लम्बे श्वास मार्ग–बन जाने से हमारे अन्तः नासाद्वार अर्थात कोएनी (internal nares or choanae) काफी पीछे, ग्रसनी में खुलते हैं। अतः ग्रसनी में मुखगुहिका एवं नासामार्ग मिलते है। इस प्रकार ग्रसनो भोजन एवं वायु के लिए सहमार्ग (common passage) का काम करती है, अर्थात यह पाचन एवं श्वसन, दोनों तन्त्रों का अंग होती है। इसके अतिरिक्त यह बोलने में ध्वनि की गूँज (resonance) उत्पन्न करती है और इसमें शरीर के सुरक्षा तन्त्र से सम्बन्धित एक जोड़ी अण्डाकार गलतुण्डिकाएँ (tonsils) स्थित होती हैं। यह लगभग 13 सेमी लम्बी कीप के आकार की होती है। मांसल अधिजिह्वा (uvula) इसके अगले चौड़े भाग को ऊपरी नासाग्रसनी (nasopharynx) तथा निचले मुखग्रसनी (oropharynx) नामक कक्षों में

बाँटती हैं। नासाग्रसनी में अन्तः नासाद्वार खुलते हैं इसकी पाश्व दीवारों पर, एक–एक दरारनुमा छिद्रों द्वारा मध्य कर्णो से आने वाली दो कण्ठ–कर्ण नलियाँ (Eustachian tubes) भी इसमें खुलती हैं।

मुखग्रसनी छोटी और गलद्वार (fauces) द्वारा मुखगुहिका से जुड़ी होती है। ग्रसनी के पिछले व निचले सँकरे भाग को कण्ठग्रसनी (laryngopharynx) कहते हैं इसमें सबसे पीछे ऊपर की ओर ग्रासनली का द्वार होता है जिसे हलक या निगलद्वार (gullet) कहते हैं। इसके ठीक नीचे, आगे की ओर श्वासनाल (trachea) के छोर पर स्थित कण्ठ (larynx) का कण्ठद्वारा या ग्लॉटिस (glottis) होता है। मुखग्रसनी के तल पर जिह्वा का ग्रसनीय भाग होता है। कण्ठद्वार पर श्लेष्मिका से ढका एवं लचीली उपास्थि का बना, पत्तीनुमा, चल ढक्कन–सा कंठच्छद (epiglottis) होता है। निगलद्वार सामान्यतः बन्द रहता है। केवल भोजन निगलते समय यह खुलता है। इस समय कोमल तालु और अधिजिह्म ऊपर की ओर उठकर नासाग्रसनी को ढक लेते हैं। साथ ही स्वर–यन्त्र कुछ आगे और ऊपर की ओर उठ जाता है। जिससे कंठच्छद पीछे और नीचे की ओर झुककर कण्ठद्वार को ढ़क लेता है। अतः भोजन उपकण्ठ पर से फिसलता हुआ ग्रासनली में चला जाता है। कभी–कभी भोजन निगलने में गड़बड़ी से भोजन के कण श्वासनाल में चले जाते हैं। इसी को फन्दा लगना कहते हैं। सामान्य दशा में कोमल तालु, अधिजिह्वा एवं स्वर–यन्त्र नीचे झुके रहते हैं और कण्ठद्वार कंठच्छद से हटा रहता है। अतः बाहरी हवा स्वतन्त्रतापूर्वक बाह्य नासाछिद्रों में होकर श्वासमार्गो, ग्रसनी कण्ठ एवं वायुनाल में, श्वास–क्रिया के अन्तर्गत आती–जाती रहती है।

1. ग्रासनली (Oesophagus)

मुख से आमाशय तक 22 से 25 सेटीमीटर लम्बी एवं 28 से 30 मिलीमीटर मोटी संरचना पायी जाती है। ग्रासनली लचीली माँस पेशियों की बनी होती है। ग्रासनली लार युक्त भोजन को निगलद्वार (Gullet) से प्राप्त करती है। इसकी दीवारें संकुचनशील व पेशीय होती हैं इनमें स्तरित स्क्वैमस एपीथिलियम (squamous epithelium) पायी जाती है जो भोजन के ग्रासनली में पहुँचते ही फैलने व सिकुड़ने लगती है इसे क्रमांकुंचन (peristalsis) कहते हैं। इस प्रक्रिया के कारण ही भोजन ग्रासनली से अमाशय में पहुँचता है। ग्रासनली व अमाशय के बीच एक वॉल्व स्फिंक्टर (sphincter) पाया जाता है, जो भोजन को पुनः ग्रासनली में वापस जाने से रोकती है। इसकी दीवार पर कोई पाचन ग्रन्थि नहीं होती है किन्तु यहां छोटी–छोटी श्लेष्म ग्रन्थियाँ होती हैं जो भोजन को चिपचिपा बनाती हैं।

1. आमाशय (Stomach)

आमाशय लगभग 25 सेमी लम्बा और आहारनाल का सबसे चौड़ा, हँसिया की आकृति का (sickle-shaped) थैलीनुमा संरचना होती है। ग्रासनली आमाशय में इसके मध्य भाग से कुछ बाईं ओर हटकर खुलती है। आमाशय का अग्रभाग कार्डिएक (cardiac) तथा पिछला भाग पाइलोरिक (Pyloric) कहलाता है। कार्डिएक स्फिन्कटर भोजन को आमाशय से ग्रासनली में नहीं जाने देता तथा पाइलोरिक स्फिन्कटर भोजन को आंत से आमाशय में नहीं आने देता है। कार्डिएक तथा पाइलोरिक के मध्य का भाग फण्डस (Fundus) कहलाता है।

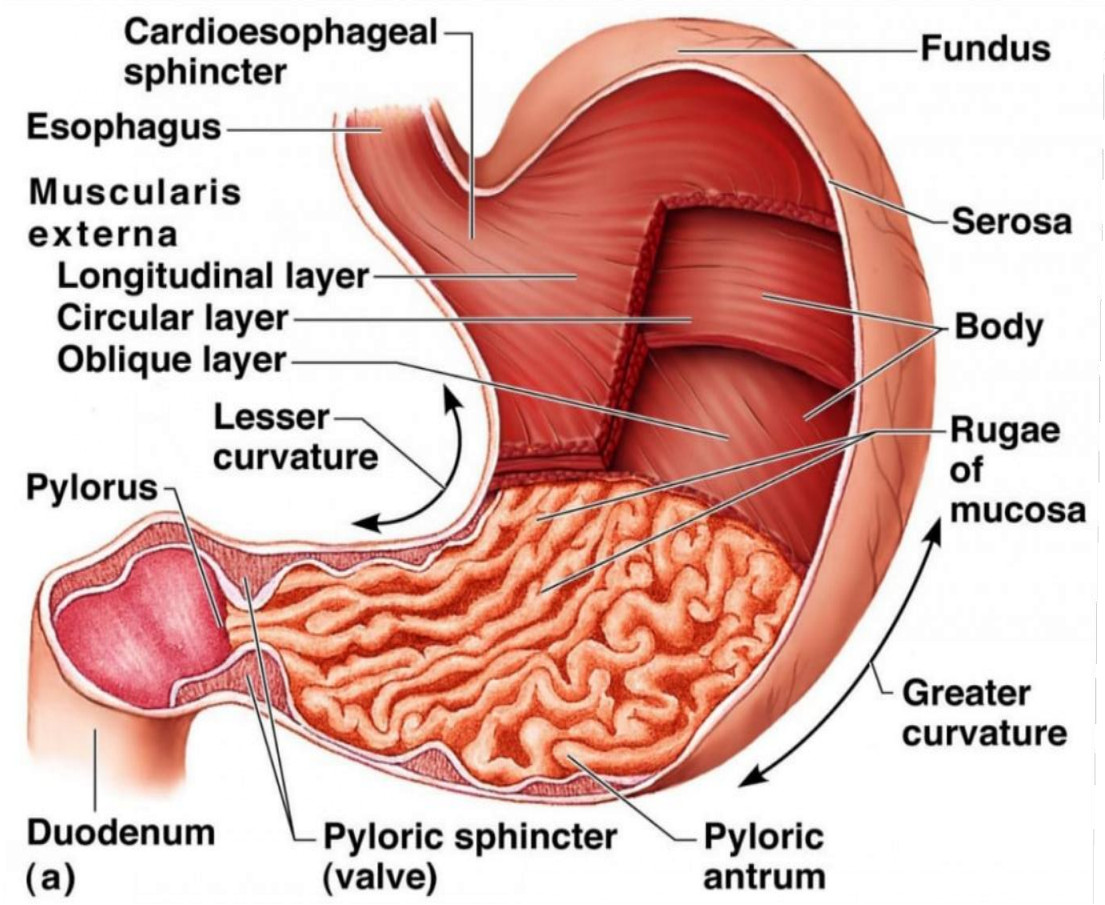

आमाशय की भीतरी दीवार स्तम्भाकार एपिथीलियम (columnar Epithelium) कोशिकाओं से निर्मित होती है। कोशिकाओं का यह स्तर जगह–जगह अंदर की ओर धँसा रहता है। इन धँसे भागों की कोशिकाएँ जठर ग्रंथि (Gastric gland) का निर्माण करती हैं। आमाशय में तीन प्रकार की जठर ग्रन्थियाँ होती हैं जो आमाशय में अपनी स्थिति एवं स्राव के आधार पर भिन्न–भिन्न होती है। प्रत्येक जठर ग्रन्थि में स्रावी पदार्थ की प्रकृति के अनुसार चार प्रकार की कोशिकाएँ होती है।

1. श्लेष्किम ग्रीवा कोशिकाएँ (Mucous Neck Cells) : आमाशय की गुहा पर आच्छादित एपिथीलियमी कोशिकाओं की भाँति, जठर गतों की कोशिकाएँ तथा जठर ग्रन्थियों की ग्रीवा कोशिकाएँ सभी श्लेष्म का स्रावण करती हें।

2. पैराएटल (ऑक्जिन्टिक) कोशिकाएँ (Parietal or Oxyntic Cells) : ये सबसे बड़ी ग्रन्थिल कोशिकाएँ होती है जो हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCL)तथा एक तात्विक कारक (intrinsic factor)का स्रावण करती है।

3. प्रधान (जाइमोजीनिक) कोशिकाएँ (Chief or Zymogenic Cells) : ये जठर रस में उपस्थित प्रमुख पाचक एन्जाइम पेप्सिन (pepsin) के पूर्वएन्जाइम अर्थात प्रोएन्जाइम (proenzyme) का स्रावण करती हैं जिसे पेप्सिनोजन (pepsinogen) कहते हैं। इसके अतिरिक्त इनके स्राव में जठर लाइपेज (gastric lipase) नामक पाचक एन्जाइम की भी सूक्ष्म मात्रा होती है।

4. एन्टीरोएण्डोक्राइन कोशिकाएँ (Enteroendocrine Cells) : ये जठर ग्रन्थियों के गहराई में स्थित, छोरो पर होती हैं और गैस्ट्रिन (gastrin) नामक हार्मोन का स्रावण करती है।

एन्टीरोएण्डोक्राइन कोशिकाओं का स्राव आमाशयम की दीवार के ऊतक द्रव्य स्रावित होकर सीधे रुधिर में चला जाता है, परन्तु अन्य सभी कोशिकाओं द्वारा स्रावित पदार्थ जठर गर्तो में मुक्त होते है और इन्हीं का मिश्रण जठर रस (gastrin juice) होता है।

आँत (Intestine)

आहारनाल का आमाशय से गुदा तक फैला भाग आँत (Intestine) कहलाता है। हमारी आँत लगभग 8 मीटर लम्बी और दो प्रमुख भागों में विभेदित नलिका होती है– छोटी आँत या क्षुद्रान्त्र तथा बड़ी आँत।

छोटी आँत (Small Intestine)

छोटी आँत उदरगुहा के अधिकांश भाग को घेरे, लगभग 6.5 मीटर लम्बी और लगभग 3.5 सेमी मोटी, अत्यधिक कुण्डलित नलिका होती है। इसमें ऊपर से नीचे की ओर तीन भाग होते हैं– ग्रहणी, मध्यान्त्र एवं शेषान्त्र। ग्रहणी (duodenum) छोटी आँत का, लगभग 30 सेमी लम्बा, तथा कुछ मोटा और कुण्डलित, प्रारम्भिक भाग होता है, जो पाइलोरस से प्रारम्भ होकर 'C' की आकृति बनाता हुआ बाई ओर को मुड़ा रहता है। इसकी भुजाओं के बीच में, आंत्रयोजनी अर्थात मीसेण्ट्री द्वारा जुड़ा, गुलाबी अग्न्याशय (pancreas) होता है। नीचे की ओर अपने दूरस्थ छोर पर ग्रहणी मध्यान्त्र में खुल जाती है। ग्रहणी में एक उभयनिष्ठ नलिका निकलती है जिसके माध्यम से अग्न्याशय रस और पित्त रस निकलता है। छोटी आँत का शेष भाग अत्यधिक कुण्डलित होता है यह लगभग 2.6 मीटर लम्बी मध्यान्त्र (jejunum) और अपेक्षाकृत कुछ कम मोटी और 3.6 मीटर लम्बी शेषान्त्र (ileum) में बंटा होता है।

आमाशय व छोटी आँत के बीच में पाइलोरिक वाल्व (pyloric valve) नामक एक पेशीय कपाट जैसी संरचना पायी जाती है। जो भोजन को आमाशय से छोटी आँत की ओर आने तो देती है परन्तु उसे वापस आमाशय में नहीं जाने देती है। भोजन का पूर्ण पाचन तथा पदार्थो का अवशोषण छोटी आंत में होता है। छोटी आंत से आन्त्रीय रस (Intestinal juice) का स्राव होता है। यह छोटी आंत की लूनर ग्रन्थियों से स्रावित होता है। प्रतिदिन लगभग 2 लीटर आन्त्रीय रस का निर्माण होता है इसका pH 7.5 से 8.5 होता है। आन्त्रीय रस में एन्जाइम और लाइसोजाइम दोनों होते हैं।

छोटी आँत की ऊतकीय संरचना (Histological Structure of Small Intestine) :

छोटी आँत की दीवार अपेक्षाकृत काफी पतली होती है। इस पर भी लस्य स्तर (serosa) का आवरण होता है जिसमें बाहर पेरिटोनियल मीसोथीलियम तथा इसके नीचे अन्तराली संयोजी ऊतक का स्तर होता है। बाह्य पेशीय स्तरों में अरेखित पेशी तन्तु ही होते हैं। इनमें भीतरी वर्तुल पेशी स्तर अधिक विकसित होता है। श्लेष्मिक पेशी स्तर बहुत कम विकसित होता है। श्लेष्मिका तथा अधःश्लेष्मिका के अनेक वृत्ताकार (circular) भंज (folds) गुहा में उभरे होते हैं। इन्हें अग्रस्पर्शी कपाटिकाएँ (valvulae conniventae or plicae circulars or folds of Kerckring) कहते हैं । इसके अतिरिक्त पूरी भीतरी सतह पर श्लेष्मिका के असंख्य (40 से 50 लाख) छोटे–छोटे अंगुलीनुमा उभार होते हैं जिन्हें रसांकुर (villi) कहते हैं। श्लेष्मिका के प्रति वर्ग मिलीमीटर क्षेत्र में अनुमानतः 20 से 40 रसांकुर होते हैं। इनके कारण छोटी आँत की भीतरी सतह मखमली–सी दिखाई देती है। ये ग्रहणी एवं मध्यान्त्र में अपेक्षाकृत बड़े और अधिक होते हैं। प्रत्येक रसांकुर में, श्लेष्मिक कला से घिरा आधार पटल का ऊतक भरा होता है जिसमें आक्षीरवाहिनी या लैक्टियल (lacteal) नाम की प्रायः एक ही मोटी लसिकावाहिनी (lymph vessel), रुधिर केशिकाओं का जाल और कुछ अरेखित पेशी तन्तु होते हैं। आन्त्रीय श्लेष्मिक कला स्तम्भी कोशिकाओं की इकहरी एपिथीलियम होती है। इसकी कोशिकाएँ मुख्यतः अवशोषी होती हैं। अतः इनकी स्वतन्त्र सतह भी सूक्ष्मरसांकुरों (microvilli) से युक्त, ब्रुश–सदृश (brush border) होती हैं। अग्रस्पर्शी कपाटिकाएँ, रसांकुर तथा सूक्ष्मरसांकुर मिलकर छोटी आँत के अवशोषण तल को लगभग 600 गुना बढ़ा देते हैं। अनुमानतः पूरे अवशोषण तल का क्षेत्रफल एन टेनिस के मैदान के बराबर होता है।

रसांकुरों के बीच–बीच में श्लेष्मिक कला के भंज (folds) आधार पटल (lamina propria) में भीतर धंसकर नालवत् आन्त्रीय ग्रन्थियाँ (intestinal glands)बनाते हैं जिन्हें लीवरकुहन की दरारें (ceypts of Lieberkuhn) कहते हैं इन ग्रन्थियों के बन्द छोरोंपर की एपिथीलियमी कोशिकाएँ जीवनभर समसूत्रण अर्थात माइटोसिस द्वारा विभाजित होती रहती हैं। इन्हें वंश कोशिकाएँ (stem cells) कहते हैं। इनके विभाजन के फलस्वरूप बनी नई कोशिकाएँ अन्य प्रकार की कोशिकाओं में विभेदित होती रहती हैं जो रसांकुरों के शिखर पर पहुँचकर एपिथीलियम से पृथक् हो–होकर समाप्त होती रहती हैं। ये कोशिकाएँ निम्नलिखित चार प्रकार कीक होती हैं।

1. **पैनेथ की कोशिकाएँ (Cells of Paneth)** : ये ग्रन्थियों के भीतरी शिखर भाग में वंश कोशिकाओं के निकट होती हैं। ये लाइसोजाइम (lysozyme) नामक एन्जाइम का स्रावण करती हैं जो जीवाणुओं (bacteria) को नष्ट करता है। इनमें जीवाणु भक्षण (phagocytosis) की भी क्षमता होती है।
2. **एन्टीरोएण्डोक्रइन कोशिकाएँ (Enteroendocrine Cells) :** ये ग्रन्थियों की अन्य कोशिकाओं के बीच–बीच में कहीं–कहीं होती हैं और उन हॉरमोन्स का स्रावण करती हैं जो आन्त्रीय दीवार के क्रमाकुंचन अर्थात तरंगगतियों तथा एपिथीलियमी कोशिकाओं की स्रावण क्रिया का नियन्त्रण करते हैं।
3. **चषक कोशिकाएँ** (Goblet Cells) **:**ये भी ग्रन्थियों तथा रसांकुरों की एपिथीलियमी कोशिकाओं के

बीच–बीच में होती हैं और श्लेष्म (mucus) का स्रावण करती हैं और श्लेष्म का स्रावण करती हैं। श्लेष्म पूरी एपिथीलियम पर फैला रहता है और इसे पाचक एन्जाइमों के प्रभाव से बचाता है।

4.अवशोषी कोशिकाएँ (Absorptive Cells or Enterocytes) :ग्रन्थियों तथा रसांकुरों की अधिकांश कोशिकाएँ का स्रावण करती हैं तथा पचे हुए पोषक पदार्थो का अवशोषण (absorption)इनकी स्वतन्त्र सतह पर घने सूक्ष्मरसांकुर (microvilli) होते हैं। आन्त्रीय श्लेष्मिक एपिथीलियम के एक वर्ग मिलीमीटर क्षेत्र में अनुमानतः 2 करोड़ सूक्ष्मरसांकुर होते हैं।

आन्त्रीय ग्रन्थियों तथा रसांकुरो की कोशिकाओं द्वारा स्रावित पदार्थो का मिश्रण आन्त्रीय रस (intestinal juice) होता है। ग्रहणी में, आन्त्रीय ग्रन्थियों के अतिरिक्त, अधःश्लेष्मिका में स्थित, अनेक छोटी एवं शाखान्वित ब्रूनर की ग्रन्थियाँ (Brunner's glands) भी होती हैं। इनकी महीन नलिकाएँ लीबरकुहन की दरारों में ही खुलती हैं। इनमें एपिथीलियमी कोशिकाओं के साथ केवल श्लेष्मिक कोशिकाएँ होती हैं। जो श्लेष्म (mucus) का स्रावण करती हैं। पूरी छोटी आँत की श्लेष्मिका के आधार पटल में आन्त्रीय ग्रन्थियों के बीच–बीच में, कहीं–कहीं पर पेयर के पिण्ड (Peyer's patches) नाम की पीली–सी गोल या अण्डाकार लसिका ग्रन्थियाँ या गुंठियाँ (lumphnodules) होती है। इनमें घने तन्तुमय जाल में निलम्बित, अनेक लिम्फोसाइट (lymphocyte) नामक रुधिराणु होते हैं। जो इन्ही ग्रन्थियों से बनते हैं। लिम्फोसाइट्स समय–समय पर आन्त्रगुहा में मुक्त होकर हानिकारक जीवाणुओं आदि का भक्षण करके इन्हें नष्ट करते है।

बड़ी आँत (Large Intestine)

बड़ी आंत में कोई भी एन्जाइम नहीं पाया जाता है इसलिए यहां पाचन नहीं होता है। शेषान्त्र (ileum) पीछे बड़ी आँत में खुलती है जो लगभग 1.5 मीटर लम्बी और 4 से 7 सेमी मोटी होती है। बड़ी आँत उदरगुहा के निचले दाएं भाग में प्रारम्भ होती है। इसमें तीन स्पष्ट भाग होते हैं– उण्डुक या सीकम, बृहदान्त्र या कोलन तथा मलाशय। शेषान्त्र, सीकम और कोलन के संगम स्थान पर शेषान्त्र–उण्डकीय छिद्र (ileo-caecal orifice) द्वारा खुलती है और इसके इस द्वार पर, श्लेष्मिक कला के भंजों के रूप में शेषान्त्र–उण्डकीय कपाट (ileo-caecal valve) होता है। जो भोजन को बड़ी आँत से वापस छोटी आँत में जाने से रोकता है।

(i) उण्डुक अथवा सीकम (Caecum)

सीकम 6 सेमी. लम्बी थैली जैसी संरचना होती है। इसकी दीवार पर श्लेष्मिक रस ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं। सीकम के एक सिरे पर 8 सेमी. लम्बी एक संरचना पायी जाती है। जिसका एक सिरा बंद होता है। यह एक अवशेषी अंग (vestigial organ) है, जिसे कृमिरूप परिशेषिका (vermifarm Appendix) कहते हैं।

मनुष्य के शरीर में अपेन्डिक्स (Appendix) का कोई कार्य नहीं होता परन्तु पशुओं में यह पाचन क्रिया में सहायक होती है।

(ii) बृहदान्त्र (Colon)

यह कुछ बचे हुए विटामिन और लवणों का अवशोषण करती है। यह बड़ी आँत का सबसे लम्बा भाग है जो लगभग 1.3 मीटर लम्बी नलिका के रूप में होती है। इसकी आकृति उल्टे (n) के समान होती है। संरचनात्मक दृष्टि से यह तीन भागों में विभाजित होती है आरोही कोलन (Ascending colon), अनुप्रस्थ कोलन (Transverse colon), तथा अवरोही कोलन (Descending colon)। अवरोही कोलन मलाशय (Rectum) में खुलता है, जो मलद्वार (Anus) के रूप में शरीर के बाहर खुलता है।

(iii) मलाशय (Rectum)

बृहदान्त्र (colon) के अंतिम भाग को मलाशय (Rectum) कहते हैं, यह एक नलिका सदृश रचना है। मानव और कुछ अन्य स्तनधारियों का मलाशय सीधा होता है। इसकी लम्बाई 10–15 सेमी होती है। यह अपशिष्ट मल के अस्थायी संग्रहण की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा तंत्रिका प्रतिवर्ती (Neural Reflex) क्रिया को प्रारम्भ करता है, जिससे मलत्याग की इच्छा उत्पन्न होती है।

गुदा (Anus) मलाशय के अंतिम भाग के रूप में लगभग 1 इंच लम्बी नलिका होती है। जिसकी लम्बाई 3 से 4 सेंटीमीटर होती है एक स्वस्थ व्यक्ति प्रतिदिन लगभग 50 से 200 मिलीमीटर मल का त्याग करता है जो अपशिष्ट मल को शरीर से बाहर निकालने का कार्य करती है। पाचन की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात शरीर का अपशिष्ट मल के रूप में इसी मार्ग से बाहर निकलता है।

4.3.2 सहायक पाचक ग्रन्थियाँ (Associated Digestive glands)

आहार नाल से संबन्धित पाचन ग्रन्थियों में लार ग्रन्थियाँ, यकृत और अग्न्याशय शामिल हैं। पाचन ग्रन्थियाँ विभिन्न प्रकार के रसों का उत्सर्जन करके भोजन के पाचन में सहायता करती हैं।

(i) लार तथा लार ग्रन्थियाँ (Saliva and Salivary Glands)

लार एक जल– सदृश सीरमी तरल (Serous fluid) तथा एक चिपिचिपे श्लेष्म (Mucous) का मिश्रण होती है। हमारी मुखगुहिका लार (Saliva) के कारण सदा गीली बनी रहती है। लार दाँतों, जिह्वा तथा मुखगुहिका की सफाई करती रहती है। भोजन करते समय लार की मात्रा बढ़ जाती है। और यह भोजन को चिकनाहट देती, इसे घुलनशील बनाती तथा इसके रासायनिक विबन्धन को प्रारम्भ करती है।

लार ग्रन्थियाँ (Salivary Glands)यह दो प्रकार की लार ग्रन्थियों द्वारा स्रावित होती है

(A) लधु या सहायक (Minor or Accessory) लार ग्रंथियाँ : ये होठों, कपोलों, तालु तथा जिह्वा पर ढ़की श्लेष्मिका (mucosa) में उपस्थित अनेक छोटी छोटी सीरमी तथा श्लेष्मिका ग्रंथियां होती हैं जो श्लेष्मिक कला को नम बनाये रखने हेतु लार की थोड़ी थोड़ी मात्रा सीधे मुखगुहा में सदैव स्रावण करती रहती है।

(B) प्रधान (Major or Main) लार ग्रंथियाँ : लार की अधिकांश मात्रा स्रावण तीन जोड़ी बड़ी लार

ग्रंथियां करती है। जो मुखगुहिका के बाहर स्थित होती हैं, परन्तु अपनी वाहिकाओं (ducts) द्वारा अपने स्रावित तरल को मुखगुहिका में मुक्त करती हैं। ये ग्रंथियां बहुकोशिकीय एवं पिण्डकीय (lobulated) होती हैं तथा मुखगुहिका की श्लेष्मिका की एपिथीलियम के वलन से बनती है। ये निम्नलिखित तीन प्रकार की होती है।

1. **अधोजिह्म या सबलिंग्वल ग्रंथियाँ (Sub-lingual Glands)** :ये मुखगुहा के अगले भाग में इसके तल की श्लेष्मिका के नीचे स्थित सबसे छोटी एवं सँकरी ग्रन्थियाँ होती है। जो श्लेष्म का स्रावण करती है। प्रत्येक ग्रन्थि से कई महीने वाहिनियाँ निकलकर संधायक (frenulum linguae) के पास खुलती है।
2. **कर्णमूल या पैरोटिड ग्रन्थियाँ (Parotid Glands):** इसे कपोलों में, कर्णपल्लवों के नीचे और आगे की ओर स्थित पीली–सी एवं चपटी सबसे बड़ी लार ग्रन्थियाँ होती है। प्रत्येक की लम्बी एंव मोटी वाहिनी को स्टेन्सस नलिका(Stenson's duct) कहते है। यह अपनी ओर के द्वितीय ऊपरी चर्वण (मोलर) दन्त के सामने वेस्टीब्यूल में एक अंकुर पर खुलती है। ये ग्रन्थियाँ मुख्यतः एक जलीय अर्थात सोरमी तरल का स्रावण करती है। मनुष्य में मुख्यतः बच्चों में, गलसुआ (mumps) नामक रोग एक बाइरस के संक्रमण के कारण इन्हीं ग्रन्थियों के फूल जाने से होता है।
3. **अधोहनु अर्थात सबमैन्डिबुलर ग्रन्थियां (Submandibular Glands) :**ये निचले जबड़े के पांच भाग में जिह्म की जड़ के इधर–उधर श्लेष्म का स्रावण करने वाली मध्यम माप की लार ग्रन्थियाँ होती है। इनकी लम्बी वाहिनियाँ व्हारटन्स नलिकाएँ (Wharton's ducts)कहलाती हैं।ये अपनी–अपनी ओर के निचले कृन्तक (इन्साइजर) दन्तों के पीछे जिह्मा संधायक के इधर–उधर खुलती है।

(ii) यकृत (Liver)

यह मानव शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि है। इसका वजन 1.5 से 2.0 किग्रा. के मध्य होता है। यह उदरगुहा (Abdominal cavity) के दायीं ओर डायफ्राम से लगा होता है। इसका रंग गहरा धूसर होता है। इसके निचले भाग में एक छोटी सी थैली होती है जिसे पित्ताशय (Gall bladder) कहते हैं। यकृत द्वारा स्रावित पित्त रस (bile) पित्ताशय में ही संचित होता है। पित्त रस आँत में उपस्थित एन्जाइमों की क्रिया को तीव्र करता है।

यकृत के कार्य (Functions of Lever)

यकृत कोशिकाओं में राइबोसोम्स, एण्डोलाज्मिक जाल, माइटोकॉण्ड्रिया, जाअसोसोम्स आदि कोशिकांग (organelles) अपेक्षाकृत अधिक संख्या में होते हैं। इससे इन कोशिकाओं में उपापचयी (metabolic) सक्रियता का प्रमाण मिलता है। इसीलिए इनमें ग्लाइकोजन कणों वसा बिन्दुकों, एन्जाइमों, लौहयुक्त पदार्थो के रवों (crystals) आदि से भरी रिक्तिकाएँ (vacuoles) पाई जाती है। ये कोशिकाएँ इतनी सक्रिय इसीलिए होती हैं कि यकृत एक पाचन ग्रन्थि ही नहीं होता वरन् शरीर की कुशलता के लिए यह निम्नलिखित कई महत्तवपूर्ण कार्य भी करता है –

1. **पित्त का स्रावण (Secretion of Bile)** : पित्त का लगातार स्रावण करना यकृत का प्रमुख कार्य होता है। पित्त (bile) हरे–भूरे रंग का क्षारीय (alkaline) तरल होता है। इसमें पित्त लवण (bile salts) पित्त रंगा (bile pigments) कोलेस्ट्रॉल (cholesterol), लैसिथिन (lecithin) आदि पदार्थ होते हैं। इसके लवणों में सोडियम बाइकार्बोनेट (sodium bicarbonate), ग्लाइकोकोलेट (glycocholate) एवं टॉरोकोलेट (taurocholate) प्रमुख होते हैं। प्रमुख रंगा पदार्थ बिलिवर्डिन (biliverdin) तथा बिलिरूबिन (bilirubin) होते हैं जो रुधिर की हीमोग्लोबिन के विखण्डन से बनते हैं। यद्यपि पित्त में पाचक एन्जाइम नहीं होते, फिर भी पित्त लवण भोजन, विशेषतः वसाओं के पाचन के लिए अत्यावश्यक होते हैं। पित्त भोजन को सड़ने से रोकता है और इसमें उपस्थित हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करता है। क्षारीय होने के कारण यह काइम में जठर रस की अम्लीयता को समाप्त करके इसे क्षारीय बनाता है ताकि छोटी आँत में इस पर अग्न्याशयी रस की प्रतिक्रियाएँ हो सकें।
2. **कार्बोहाइड्रेट उपापचय (Carbohydrate Metabolism)** : आमाश्य एवं आँत से पचे हुए पदार्थों को लाने वाली यकृत निवाहिका शिरा (hepatic portal vein) हृदय में न जाकर यकृत में जाती है। अतः शरीर के अन्य भागों में पहुँचने से पहले लिपिड्स (lipids) के अतिरिक्त अन्य पचे हुए पदार्थ यकृत में आते हैं। यकृत कोशिकाएँ, दक्ष ग्रहणी की भाँति, आवश्यकता से अधिक शर्करा को रुधिर से ले लेती हैं और ग्लाइकोजन में बदलकर इसका संग्रह कर लेती हैं। इसे ग्लाइकोजेनिसिस (glycogenesis) कहते हैं। रुधिर में शर्करा की कमी पड़ने पर संग्रहित ग्लाइकोजन को वापस शर्करा में बदलकर रुधिर में मुक्त किया जाता है। इसे ग्लाइकोजेनोलिसिसि (glycogenolysis) कहते हैं। यही नहीं, यकृत कोशिकाएँ, ऐमीनो अम्लों, वसीय अम्लों, ग्लिसरॉल आदि अन्य पदार्थो से भी ग्लूकोस का संश्लेषण कर लेती हैं। इसे ग्लूकोनिओजेनेसिस (glucneogenesis) कहते हैं।

3. वसा–उपापचय (Fat Metabolism): यकृत कोशिकाएँ वसा–उपापचय में भी महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं। ये कुछ वसाओं तथा अन्य लिपिड्स का संश्लेषण तथा कुछ वसाओं का भण्डारण करती हैं। कुछ वसीय अम्लों का ये ऐसीटिल सहएन्जाइम ए (acetyl coenzyme A) में विखण्डन करती हैं। रुधिर में लिपिड्स के परिवहन हेतु ये लाइपोप्रोटीन्स (lipoproteins) का निर्माण करती हैं।

4.ऐमीनो अम्लों का विऐमीनीकरण अर्थात ऐमीनोहरण (Deminiation of Amino Acids)

:यकृत कोशिकाएँ आवश्यकता से अधिक ऐमीनो अम्लों (Amino Acids)को रुधिर से लेकर इन्हें कीटो अम्ल एवं अमोनिया में विखण्डित कर देती हैं। इसी को ऐमीनो अम्लों का विऐमीनीकरण (Deminiation) कहते हैं। कीटो अम्ल का उपयोग ऊर्जा–उत्पादन या ग्लूकोनिओजेनेसिस के अन्तर्गत ग्लूकोस के संश्लेषण में होता है।

5.यूरिया का संश्लेषण (Synthesis of Urea): विऐमीनीकरण प्रक्रिया में बनी अमोनिया को तथा शरीर–कोशिकाओं में प्रोटीन उपापचय के फलस्वरूप बनी अमोनिया (NH_3) को रुधिर से लेकर यकृत

कोशिकाएँ रुधिर से ग्रहण की गई (CO_2) से मिलाकर, यूरिएस (urease)नामक एन्जाइम की सहायता से, यूरिया (urea)का संश्लेषण करती हैं। इसी यूरियाा को वृक्क रुधिर से लेकर मूत्र के साथ इसका उत्सर्जन करते हैं।

$$2NH_3 + CO_2 \xrightarrow{\text{Urease}} CO(NH_2)_2 + H_2O$$

6.उत्सर्जी पदार्थो का बहिष्कार (Elimination of Excretory Substances) : यूरिया का संश्लेषण करने के अतिरिक्त, कुछ अन्य निरर्थक पदार्थो (कोलेस्ट्रॉल, धातुओं तथा हीमोग्लोबिन–विखण्डन के उत्पाद आदि) के उत्सर्जन में भी यकृत सहायता करता है। ये पदार्थ पित्त से मिलकर ग्रहणी में पहुँचते हैं और मल के साथ बाहर निकल जाते हैं।

7.विषैले पदार्थो का विषहरण (Detoxification) : आँत में उपस्थित जीवाणु (bacteria) कुछ विषैले पदार्थ बनाते हैं जो यकृत निवाहिका शिरा के रुधिर में मिलकर यकृत में पहुँचते हैं। यकृत कोशिकाएँ इनके विष को नष्ट या निष्क्रिय (neutralise) करके इन्हें अहानिकारक (harmless) पदार्थो में बदल देती हैं। इसी प्रकार, पूरे शरीर में उपापचय के फलस्वरूप बने हानिकारक प्रूसिक अम्ल (prussic acid) को भी यकृत कोशिकाएँ रुधिर से लेकर निष्क्रिय करती हैं।

8.रुधिराणुओं का निर्माण तथा विखण्डन (Formation and Breakdown of Blood Corpuscles) : कशेरुकियों की भ्रूणावस्था में यकृत रुधिरोत्पादक (haemopoietic)होता है, अर्थात इसमें लाल रुधिराणुओं का निर्माण होता है। वयस्क अवस्था में, इसके विपरीत, यकृत की कुप्फर कोशिकाएँ (Kupffer cells) निष्क्रिय एवं मृत लाल रुधिराणुओं को तोड़–फोड़कर इनके हीमोग्लोबिन को पित्त रंगाओं में बदलती हैं जो पित्त वर्णकों में बदलती हैं जो पित्त के साथ ग्रहणी में पहुँचकर मल के साथ बाहर निकल जाती हैं। इस प्रक्रिया में हीमोग्लोबिन का लौह यकृत कोशिकाओं में संचित हो जाता है।

9. अकार्बनिक पदार्थो का संग्रह (Storage of Inorganic Substances): लौह के अतिरिक्त, तांबा आदि अन्य पदार्थो का भी यकृत कोशिकाएँ संचय करती हैं।

10.एन्जाइमों का स्रावण (Secretion of Enzymes): यकृत कोशिकाएँ कुछ ऐसे एन्जाइमों का स्रावण करती हैं जो शरीर में प्रोटीन्स, वसाओं कार्बोहाइड्रेट्स आदि के उपापचय में महत्तपूर्ण भाग लेते हैं।

11.रुधिर की प्रोटीन्स का संश्लेषण (Synthesis of Blood Proteins): रुधिर प्लाज्मा की अधिकांश प्रोटीन्स का संश्लेषण यकृत कोशिकाओं में ही होता है। इनमें ऐल्बूमिन (albumin), ग्लोब्यूलिन्स (globulins), प्रोथ्रॉम्बिन (prothrombin) तथा फाइब्रिनोजन (fibrinogen)प्रमुख हैं।

12. हिपैरिन का स्रावण (Secretion of Heparin): यकृत कोशिकाएँ हिपैरिन (Heparin)नामक प्रोटीन का भी संश्लेषण करके रुधिर में मुक्त करती हैं। यह प्रोटीन रुधिरवाहिनियों में रुधिर को जमने से रोकती है।

13. जीवाणुओं का भक्षण (Destruction of Bacteria): रुधिर में उपस्थित हानिकारक जीवाणुओं का

यकृत की कुप्फर कोशिकाएँ भक्षण करके इन्हें नष्ट कर देती हैं। इस क्रिया को भक्षकाणु क्रिया अर्थात फैगोसाइटोसिस (Phagocytosis)कहते हैं।

14. विटामिनों का संश्लेषण एवं संचय (Synthesis and Storage of Vitamins): सभ्भवतः यकृत कोशिकाएँ विटामिन A का संश्लेषण करती हैं। त्वचा, यकृत तथा वृक्क मिलकर विटामिन D का सक्रियकरण करते हैं। अल्प समय के लिए यकृत कोशिकाओं में विटामिन A,B12, D,E तथा Kका संचय भी होता है।

15. लसिका उत्पादन एवं रुधिर संचय (Lymph Production and Blood Storage): यकृत में उपस्थित रुधिरपात्र (blood sinusoids) रुधिर के भण्डारण का काम करते हैं।

यकृत के सिरोसिस ऊतक की क्षति (Damage) को यकृतशोध (Hepatitis) कहते हैं। यह क्षति कुछ वाइरसों के संक्रमण से अथवा कुछ औषधियों या विषैले पदार्थो के सेवन से हो जाती है। इसके फलस्वरूप प्रायः पीलिया रोग (jaundice) हो जाता है। आजकल व्यापक मदिरापान की अधिकता के कारण यकृतशोध का रोग बढ़ता जा रहा है। तीक्ष्ण यकृतशोध की दशा को (cirrhosis) कहते है इसमें यकृत की व्यापक क्षति के कारण प्रायः रोगी की मृत्यु हो जाती है।

(iii) अग्न्याशय (Pancreas)

अग्न्याशय मिश्रित ग्रंथि (Mixed Gland) होती है, जो 'C' अक्षर की आकृति की बनी होती है। यह ग्रहणी के पास स्थित होती है। अग्न्याशय एक साथ अंतः स्रावी व बाह्य स्रावी दोनों प्रकार की ग्रंथि है तथा मानव शरीर की दूसरी सबसे बड़ी ग्रन्थि है। यह पीले रंग की ग्रन्थि है। अग्न्याशय में अनेक पतली–पतली नलिकाएँ होती हैं जो आपस में जुड़कर एक बड़ी अग्न्याशय वाहिनी (Pancreatic duct) बनाती हैं। अग्न्याशय से प्रतिदिन लगभग 1.3 से 1.5 लीटर अग्न्याशयी रस छोटी आंत में मुक्त होता है। इसका pH मान 7.5 से 8.3 तक होता है यह रंगहीन होता है। सोडियम बाई कार्बोनेट की वजह से यह रस क्षारीय होता है अग्न्याशयी रस में लगभग 95 प्रतिशत जल बाकी 5 प्रतिशत में पाचक एन्जाइम व लवण होते हैं। अग्न्याशय वाहिनी तथा पित्त वाहिनी मिलकर एक बड़ी नलिका बनाती है फिर यह नलिका एक छिद्र के द्वारा ग्रहणी में खुलती है।

4.4 भोजन पाचन की क्रिया विधि

पाचन की क्रिया में सबसे महत्वपूर्ण होते हैं एन्जाइम। मुखगुहा के मुख्यतः दो कार्य हैं, भोजन को चबाना और निगलने की क्रिया। लार की मदद से दांत और जिह्वा भोजन को अच्छी तरह चबाने एवं मिलाने का कार्य करते हैं। लार का श्लेष्म भोजन कणों को चिपकाने एवं उन्हें बोलस में रूपांतरित करने में मदद करता है। टायलिन स्टार्च को माल्टोज में तोड़ता है जिससे खाना मीठा बन जाता है जब हम खाना खूब चबाते हैं तब खाना हम लोगों को मीठा लगता है। माल्टोज को माल्टेज नामक एन्जाइम ग्लूकोज में बदल देता है। लाइसोजाइम एन्टीबैक्टीरियल एन्जाइम

होता है। यानि भोजन में आये जीवाणुओं को यह नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त जीभ की सीरमी ग्रन्थियों से लाइपेज नामक एन्जाइम स्रावित होता है यह लाइपेज एन्जाइम लार की माल्टेज एन्जाइम के साथ मिलकर भोजन में उपस्थित वसा को वसीय अम्लों में परिवर्तित कर देता है। लार में कुछ मात्रा में बाइकार्बोनेट और फास्फेट आयन भी पाये जाते हैं यह भोजन की अम्लीयता और क्षारीयता को नष्ट कर देते हैं जिससे अम्ल क्षार का सन्तुलन बना रहता है और दांतों को नुंकसान से बचाता है।

आमाशय में एक पेप्टिक सेल (Peptic cell) होता है। इसे chief cell या gastric zymogenic cell भी कहते हैं। दूसरा होता है पेरेटियल (Parietal) या आक्सिन्टिक सेल (oxyntic cell)। आक्सिन्टिक कोशिका से एक विशेष तरह का अम्ल निकलता है जिसे हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl) कहते हैं। पेप्टिक कोशिका एक एन्जाइम का स्रावण करता है जिसे पेप्सिनोजन या प्रोपेप्सिनोजन (Pepsinogen or pro-pepsinaogen) कहते हैं।

पेप्सिनोजन भोजन में प्राप्त प्रोटीन यानि दाल, फल, अण्डा, मांस, मछली आदि को कई हिस्सों में तोड़ देता है पेप्सिनोजन हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ मिलकर पेप्सिन नामक एन्जाइम को बनाता है जो प्रोटीन के अलावा भोजन में पाए जाने वाले अन्य तत्वों को छोटे–छोटे सूक्ष्म पदार्थों में तोड़ देता है।

बच्चों में हाइड्रोक्लोरिक (HCl) का स्रावण नहीं होता है इसकी जगह इसमें रेनिन (Renine) नामक एन्जाइम का स्रावण होता है जो दूध में पाए जाने वाले केसीन नामक प्रोटीन को सूक्ष्म पोषक तत्व में तोड़ता है।

नोट – बच्चों को छोड़कर दूध से किसी भी व्यक्ति को प्रोटीन नहीं मिलता। दूध में प्राप्त अन्य पोषक तत्व अमीनों अम्ल, मिनरल्स आदि मिलते हैं। लार में प्राप्त लाइपेज (Lipase) एन्जाइम भोजन में प्राप्त वसा (Fat) को पचाता है ये वसा को तोड़कर वसीय अम्ल, ट्राइग्लिसराइड, मोनोग्लिसराइड आदि में तोड़ता है। अतः इससे ये पता चलता है कि भोजन में प्राप्त सभी प्रोटीन को पेप्सिन एन्जाइम सूक्ष्म पोषक तत्वों में तोड़ता है और वसा (fat) को लाइपेज एन्जाइम तोड़ता है।

HCl इतना खतरनाक एसिड होता है कि यह आमाशय (stomach) की दीवार को काट सकता है। लेकिन HCl से हमारे आमाशय को बचाने के लिए आमाशय में म्यूकस कोशिका होती है जिससे म्यूसिन नामक एक पदार्थ निकलता है जो आमाशय की दीवार पर चारों तरफ एक परत (layer) बनाती है। यह आमाशय की दीवार को HCl से बचाती है अर्थात उसकी रक्षा करती है।

हमारे शरीर में एक जैविक घड़ी (biological clock) होती है जिससे आपको समय–समय पर उठने, बैठने, जागने, खाने–पीने का एहसास होता है। अर्थात यदि आप रोज 12 बजे खाना खाते हैं तो अगले दिन आपको 12 बजे भूख का एहसास होने लगेगा। यह काम होता है जैविक घड़ी के माध्यम से। आइए जाने ये सब होता कैसे है शरीर में एक एन्ट्रोएन्डोक्राइन कोशिका (Enteroendocrine cell) होती है जिससे एक विशेष प्रकार का गौस्ट्रन नामक हार्मोन निकलता है जो भूख का आभास कराता है और इसी को जैविक घड़ी कहते हैं। जब भी आप भोजन को देखते हो, सूंघ रहे हो या स्वाद ले रहे हो तब मस्तिष्क में उपस्थित मेडुला सक्रिय हो जाती है और तुरन्त गौस्ट्रन हार्मोन का स्रावण करती है जिससे आपको भूख का एहसास होने लगता है उदाहरण के तौर पर जब भी आपके घर

में आपके मन का खाना बनता है तो उस दिन आपको उसकी सुगन्ध से ही भूख का एहसास होने लगता है ये एहसास मेडुला के सक्रिय होने के कारण ही होता है।

हमाारे आमाशय में 1–3 लीटर जठर रस का स्रावण होता है यह भोजन को छोटे–छोटे सूक्ष्म तत्वों में तोड़ देता है। अब इस भोज्य पदार्थ को काइम (chyme) कहते हैं यह अर्द्ध तरल (semi liquid) रूप में रहता है। यह काइम 3–4 घंटे तक आमाशय में रहता है फिर आमाशय की पाइलोरिक छिद्र से यह धीरे–धीरे छोटी आँत में पहुँच जाता है।

जैसे ही भोजन आमाशय में ग्रहणी में आता है ग्रहणी की दीवार पर क्रमाकुंचन (Peristalsis) की प्रक्रिया चालू हो जाती है। इस प्रक्रिया के दौरान छल्लेदार तरंगे (Peristaltic wave) निकलती रहती हैं जिससे भोजन धीरे–धीरे आगे भी बढ़ता रहता है और भोजन के पोषक पदार्थ तीन प्रकार के एन्जाइम रसों की भूमिका से होकर गुजरता है। इन तीन रसों में अग्न्याशयी रस (Pancreatic juice), पित्त रस (Bile juice) और आन्त्रीय रस (Intestinal juice) होते हैं।

अग्न्याशयी रस में एन्जाइम और हार्मोन का स्रावण होता है जिसके माध्यम से खाने को पचाया जाता है। अधिकांश पाचन अग्न्याशयी रस के माध्यम से हो जाता है इसलिए इस रस को पूर्ण पाचक रस भी कहते हैं। अग्न्याशय के कुछ महत्वपूर्ण एन्जाइम जैसे ऐमाइलेज, स्टार्च या कार्बोहाइड्रेट को माल्टोस (ग्लूकोस) में, लाइपेज वसा को वसीय अम्ल और मोनोग्लिसराइडस में, प्रोटीज प्रोटीन को अमीनों अम्ल में, फॉस्फोलाइपेज, फॉस्फोलिपिडस को वसीस अम्ल में, न्येक्लिऐज D.N.A. और R.N.A. को पचाने का कार्य करते हैं। एस्टरेज कोलेस्ट्रॉल को अलग करता है। ट्रिप्सिन प्रोटीन को पॉलीपेप्टाइड में परिवर्तित करता है इस तरह अग्न्याशय से निकलने वाला अग्न्याशयी रस सभी पोषक तत्वों का अधिकांश पाचन कर देता है।

a) ऐमाइलेज स्टार्च माल्टोज (ग्लूकोज)

b) लाइपेज वसा (fat) 1. वसीय अम्ल
2. मोनोग्लिसराइडस

c) प्रोटीज प्रोटीन अमीनो अम्ल

d) फॉस्फोलाइपेज फॉस्फोलिपिड्स वसीय अम्ल

e) न्यूक्लिएज → D.N.A. / R.N.A. → का पाचन

f) एस्टरेज यह कोलेस्ट्रॉल को अलग करता है।

g) ट्रिप्सिन यह प्रोटीन को पॉलीपेप्टाइड में परिवर्तित करता है।

जब हमारे शरीर के पैंक्रीयाज (अग्न्याशय) में इंसुलिन का पहुँचना कम हो जाता है तो खून में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है। और मधुमेह नामक रोग हो जाता है। अर्थात अग्न्याशय में एक तरह का हार्मोन बनता है जो इन्सुलिन को बनाता है। यकृत में उपस्थित पित्ताशय से पित्तरस का स्राव छोटी आँत में होता है। पित्तरस भोजन के अम्लीय प्रभाव को क्षारीय बनाता है। पित्तलवण ही वसा में घुलनशील विटामिनों अर्थात विटामिन K, E, D, A का अवशोषण करता है। अर्थात हमारा यकृत विटामिन K, विटामिन E, विटामिन D और विटामिन A को अपने अन्दर अवशोषित (store) करके रखता है यह इन विटामिनों को शरीर के कार्य में भी लगाता है। पित्तरस वसा की बड़ी–बड़ी बूंदों को छोटी–छोटी बूंदों में तोड़ता है और यह क्रिया पायसीकरण (Emulsification) कहलाती है। इसी पायसीकरण के दौरान विटामिन K, E, D, A का अवशोषण होता है।

यदि किसी व्यक्ति का यकृत कमजोर है तो पित्तरस का निर्माण नहीं होता है अतः पायसीकरण की प्रक्रिया नहीं होगी और यकृत वसा (fat) को नहीं पचा पायेगा।

आन्त्रीय रस (Intestinal juice) का स्राव छोटी आँत की लूनर ग्रंथियों से होता है। आन्त्रीय रस से निकलने वाला एन्जाइम लाइपेज वसा को वसीय अम्ल में, माल्टेस एन्जाइम माल्टोस को ग्लूकोज में, सुक्रोज एन्जाइम सुक्रोस को फ्रक्टोस में, लेक्टेस एन्जाइम लैक्टोस को गैलेक्टोस में, इरेप्सिन (प्रोटीज) एन्जाइम प्रोटीन को एमिनो अम्ल में तोड़ते हैं।

A) लाइपेज	वसा (Fat)	वसीय अम्ल + मोनो ग्लिसराइड (Fatty acid)
B) माल्टेस	माल्टोज	ग्लूकोज
C) सुक्रोस	सुक्रोस	फ्रक्टोस
D) लैक्टेस	लैक्टोस	गैलेक्टोस
E) इरेप्सिन (प्रोटीज)	प्रोटीन	एमीनो एसिड

माल्टेस, सुक्रोस और लैक्टोस एन्जाइम किसी भी तरह के कार्बोहाइड्रेट का पाचन कर सकते हैं। मनुष्य में 9-10 लीटर तरल पदार्थों का अवशोषण प्रतिदिन किया जाता है। इसमें से 7.5 लीटर जल होता है और 1.5 लीटर पोषक पदार्थ, विटामिन और लवण होता है। 90% पोषक पदार्थों का अवशोषण छोटी आँत में होता है और 10% आमाशय और बड़ी आँत में होता है। आमाशय में कुछ मात्रा में जल, लवण, औषधि और एल्कोहल का अवशोषण होता है। बड़ी आँत बचा हुआ जल, विटामिन और आयनों को अवशोषित करती है।

छोटी आँत के इलियम में उपस्थित रसांकुर में सूक्ष्म रूधिर वाहिकाओं का जाल फैला होता है। ये रूधिर

वाहिकाएं काइम (chyme) में से सूक्ष्म पोषक तत्वों (Glucose, Amino Acid आदि) को अवशोषित कर लेती हैं और रूधिर में मिला देती हैं। अब यह पोषक तत्व हिपैटिक पोरटल शिरा (Hepatic Portal vein) के माध्यम से यकृत तक जाता है। यकृत हानिकारक पदार्थों को दो भागों में तोड़ता है और अमोनिया और यूरिया का निर्माण करता है। और बाद में इनका उत्सर्जन उत्सर्जी अंगों द्वारा कर दिया जाता है।

अपचित पदार्थों को मल कहते हैं। मल का रंग बिलिरूबिन, स्टर्कोबिलिन और यूरोबिलिन की वजह से पीला होता है। मल में गंध एमीन्स इण्डोल और स्कैटोल के कारण होती है। कोलन में कुछ सहजीवी के रूप में जीवाणु रहते हैं जो विटामिन को एकत्रित करते हैं। जब काइम के पोषक पदार्थों का पाचन या अवशोषण नहीं हो पाता है तब ये जीवाणु इन पोषक पदार्थों का किण्वन (Fermentation) करते हैं और जिससे हाइड्रोजन, कार्बन डाई ऑक्साइड तथा मीथेन गैस बनती है। ये गैस बदबूदार होती है जिसे पाद (Flatus) कहते हैं। शरीर से मल त्याग को ही बहिष्करण कहते हैं।

नोट : विटामिन K फिब्रिनोजेन प्रोटीन का निर्माण करती है।

पदार्थो का अवशोषण आहारनाल के विभिन्न भागो जैसे मुखगुहा, आमाशय, छोटी आंत और बड़ी आंत में होता है। परन्तु सबसे अधिक अवशोषण छोटी आंत में होता है। अवशोषित पदार्थ अन्त में ऊतकों में पहुंचते हैं जहाँ वे विभिन्न क्रियाओं के उपयोग में लाये जाते हैं, इस प्रक्रिया को स्वांगीकरण (Assimilation) कहते हैं।

पाचक अवशिष्ट मलाशय में कठोर होकर सम्बद्ध मल बन जाता है, जो तांत्रिक प्रतिवर्ती (Neural reflex) क्रिया शुरू करता है। जिससे मल त्याग की इच्छा पैदा होती है। मल द्वार से मल का बहिक्षेपण एक ऐच्छिक क्रिया है, जो एक वृहत क्रमाकुंचन गति से पूरी होती है।

4.5 भरण–पोषण (ALIMENTATION)

जैसे कि पूर्व विवरण से स्पष्ट हो चुका है, कि जीवित रहने हेतु भरण–पोषण की आवश्यकता होती है। शरीर की आवश्यकतानुसार भरत–पोषण भूख, क्षुधा तथा प्यास पर आधारित होता है –

भूख एवं क्षुधा (Hunger and Appetite) भोजन करने की आन्तरिक अर्थात अचेतन (intrinsic or involuntary) इच्छा को भूख (hunger) कहते हैं। इसके विपरीत, भोजन में विशिष्ट स्वाद की हमारी चेतन इच्छा, रुचि अर्थात क्षुधा (appetite) कहलाती है। भूख का आभास हमें आमाशय की दीवार में उपस्थित ऐसे सूक्ष्म आन्तरांगीय संवेदांगों (interoceptors) द्वारा होता है जो आमाशय के देर तक रिक्त रहने से संवेदित होते हैं। यह संवेदना जब मस्तिष्क में पहुँचती है तो हाइपोथैलैमस के पार्श्व भागों में स्थित भूख के केन्द्र (hunger of feeding centres) संवेदित होकर आमाशय की दीवार में तीव्र क्रमाकुंचन (rhythmic peristalsis-hunger contractions) प्रेरित कर देते हैं। इसी से हमें भूख का आभास होता है। भूख के ग्लूकोस, ऐमीनो अम्ल तथा

वसीय सिद्धान्तों (Glucostatic, Aminostatic and Lipostatic Theories of Hunger) के अनुसार, रुधिर में क्रमशः ग्लूकोस, ऐमीनो अम्लों या वसीय पदार्थो की मात्रा कम हो जाने पर भी भूख–केन्द्र संवेदित हो जाते हैं। भूख के ''ऊष्मस्थैतिक मत'' (Thermostatic Theory) के अनुसार, शरीर–ताप के कुछ कम होने पर भी भूख–केन्द्र संवेदित होते हैं। इसीलिए, ज्वर में हमें भूख नहीं लगती और सर्दियों में हम गर्मियों की अपेक्षा अधिक खाते हैं। कभी–कभी भूख से प्रभावित आमाशय का क्रमाकुंचन इतना तीव्र होता है कि हमें पीड़ा का अनुभव होता है जिसे भूख की टीस (hunger pangs) कहते हैं। भोजन की पर्याप्त मात्रा ग्रहण करने पर जब आमाश्य भर जाता है तो हाइपोथैलैमस की मध्य–अधर रेखा में उपस्थित परितृप्ति केन्द्र (satiety centre) के नियन्त्रण में हमें भूख का आभास होना रुक जाता है।

प्यास (Thirst) :

जल ग्रहण करने की इच्छा को प्यास (thirst) कहते हैं। इसका भी एक नियन्त्रण केन्द्र हाइपोथैलैमस में होता है। शरीर के अन्तः वातावरण (रुधिर, लसिका तथा ऊतक द्रव्य) में ताप, उपापचय, परिश्रम, पसीना, मूत्रत्याग आदि के कारण जल की कमी से या लवणों के बाहुल्य से या चोट आदि पर अधिक रुधिर बह जाने से प्यास–केन्द्र (thirst centre) की कोशिकाओं का निर्जलीकरण (dehydration) होने लगता है, अर्थात इनमें से जल बाहर निकलने लगता है। इसी से हमें प्यास का आभास होने लगता है। सम्भवतः रुधिर में ग्लूकोस की मात्रा कम हो जाने से भी हमें प्यास का आभास होने लगता है।

भूख–केन्द्र परितृप्ति केन्द्र तथा प्यास–केन्द्र केवल मानव में ही नहीं, वरन् सभी गरम–रुधिर (warm-blooded) कशेरुकियों (पक्षियों एवं स्तनियों) में सम्भवतः होते हैं।

पाचन तंत्र पर योग का प्रभाव

मानव शरीर में पाचन तंत्र भोजन में लगने वाले अंगों की प्रणाली है। ऊर्जा और पोषक तत्वों को निकालने के लिए ये भोजन को पचाता है और शेष अपशिष्ट को बाहर निकालता है। पाचन तंत्र का प्रमुख कार्य अंतर्ग्रहण, पाचन, अवशोषण और शौच है। अस्वस्थकर जीवनशैली एवं गलत प्रकार के खाद्य पदार्थों के सेवन एवं पुरानी अपच और अतिरिक्त संवेदनशील पाचन तंत्र के कारण आंत्र विकार हो सकते हैं। आंत विकारों का कारण बनने वाले खाद्य पदार्थों से हमें बचना चाहिए। सब्जियों, सलाद, फल, दही और छाछ जैसे ताजे खाद्य पदार्थों का नियमित रूप से सेवन किया जाए तो पाचन तंत्र सबसे अच्छा काम करता है। योग आसन यकृत, अग्न्याशय और प्लीहा को टोन करता है। यह आंतो की ताकत को बढ़ाता है और पेट के अंगों को स्वस्थ रखने में भी मदद करता है। यह अतिरिक्त वसा से छुटकारा पाने में मदद करता है। उत्तानपाद आसन या आगे की ओर झुकने वाले आसन अवसाद और तनाव को कम करने में मदद करते हैं। यह गुर्दे और यकृत पर भी उत्तेजक प्रभाव डालता है और पाचन तंत्र के कार्यों में सुधार करता है। यदि कोई व्यक्ति भोजन के बाद अक्सर सूजन एवं ऐंठन और गैस से पीड़ित होता है तो व्यक्ति को नियमित रूप से भुजंगासन और पवनमुक्तासन का अभ्यास करना चाहिए।

योग आसन पाचन तंत्र में रक्त के प्रवाह को बढ़ाते हैं और आंतों की क्रिया को उत्तेजित करते हैं। जिन्हें पेरिस्टेलसिस के रूप में जाना जाता है जिसके परिणामस्वरूप पाचन अधिक कुशलता से होता है। आगे झुकने वाले आसन पेट में जगह बढ़ाते हैं और उलझे हुए गैसों की रिहाई की सुविधा देते हैं। यदि सही तरीके से योगाभ्यास किया जाए तो योग आसन तंत्रिका तंत्र के उचित कामकाज के लिए अत्यधिक फायदेमंद होते हैं।

पाचन तन्त्र के लिए कुछ उपयोगी आसन निम्नवत हैं–

(1) शोधन क्रियायें – षटकर्मों का पाचन तंत्र पर बहुत ही अधिक सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। षटकर्मों में धौति, बस्ति, नेती, नौलि, त्राटक व कपालभाति छः शोधन क्रियायें हैं। जिसमें धौति, बस्ति, नौलि क्रिया का पाचन तंत्र पर सीधा प्रभाव पड़ता है। ये क्रियायें पाचन तंत्र की सफाई करती हैं। बहुत लम्बे समय से कब्ज से पीड़ित व्यक्ति को योगाचार्य के निर्देशन में शंखप्रक्षालन का अभ्यास कराया जाए तो वह कब्ज जैसी समस्या से छुटकारा पा सकेगा।

वमन और कुंजल – शोधन क्रियाओं के अन्तर्गत वमन और कुंजल क्रिया एसिडिटी और अपच की समस्या को दूर करती है। सुबह नियमित रूप से कुंजल क्रिया करने से एसिडिटी की समस्या ठीक हो जाती है।

(2) आसन –

(1) पद्मासन (Lotuspose) - पद्मासन पाचन में सुधार करने के लिए जाना जाता है, क्योंकि इस आसन के दौरान खून का दौरान पाचन अंगों की तरफ अधिक होता है और पेट आपके द्वारा खाए गए सभी भोजन को प्रभावी ढंग से पचाने के लिए पर्याप्त एंजाइमों का उत्पादन करने के लिए उत्तेजित होता है। पेट के क्षेत्र में रक्त का यह बढ़ा हुआ प्रवाह आंतरिक अंगों के लिए फायदेमंद है और पाचन में सुधार करता है।

(ii) पवनमुक्तासन (Wind relieving pose) – यह पेट और पाचन अंगों की मालिश करता है और इसलिए यह पेरिस्टाल्टिक गतियों को बढ़ाने में बहुत प्रभावी है। पेट के अंतःस्रावी विसरा के कामकाज को नियंत्रित करता है। इस आसन के द्वारा, पेट पर दबाव आंत में किसी भी फंसी गैस को छोड़ता है और कब्ज से राहत देता है। इस आसन का उपयोग पेट, कब्ज, अपच, पेट फूलना और आंतों के दर्द के उपचार के रूप में किया जाता है।

(iii) भुंजगासन (Cobra pose)– यह पेट, अग्न्याशय, यकृत और पित्ताशय जैसे उदर क्षेत्र के अंगों को उचित मालिश देता है। यह पाचन तंत्र में रक्त के प्रवाह और ऑक्सीकरण को बेहतर बनाता है।

(iv) शवासन (Corpsepose) – उपचार के लिए अंतिम आसन शवासन है। जब आप आराम कर रहे हों, तो आप अपने पैरासिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम (Para sympathetic nervous system) में होंगे। इस "Rest and digest" प्रतिक्रिया के रूप में भी जाना जाता है।

(v) पश्चिमोत्तानासन (Seated forward pose) – यह लिवर, किडनी और अग्न्याशय जैसे पेट के विसरा को उत्तेजित करने के लिए सबसे अच्छा आसन है। यह आंत की पेरिस्टलसिस और वर्मीक्यूलर कार्यों को बढ़ाता है, जिसके माध्यम से मल पदार्थ आगे बढ़ाया जाता है। यह एनोरेक्सिया, आंतों के शूल आदि के लिए उपयोगी है।

(vi) त्रिकोणासन (Triangle pose) – यह सभी आंतरिक अंगों की मालिश और टोन करता है। यह अपच, अम्लता, पेट फूलना से राहत देता है और भूख को बढ़ाता है।

(vii) वज्रासन (Thenderbolt pose)– यह भोजन के बाद करने वाला सबसे प्रभावी आसन है। जब हम वज्रासन में बैठते हैं तो दोनों जांघों की मांसपेशियां वजन साझा करेंगी और इसलिए उन भागों में रक्त का प्रवाह कम हो जाता है। इस कमी से पेट, हृदय और सिर तक रक्त का अनुपात अधिक से अधिक पहुँचता है। नाभि से ऊपर के शरीर को तुलनात्मक रूप से अतिरिक्त रक्त संचार मिलेगा इसलिए पाचन प्रक्रिया के लिए विभिन्न ग्रंथियों की कार्य क्षमता बढ़ जाती है जो पाचन शक्ति को बढ़ाती है।

इसी तरह सुप्तवज्रासन, मत्स्यासन, उष्ट्रासन, जानु शीर्षासन, हलासन, अधमत्स्येन्द्रासन, सर्वांगासन, शीर्षासन, भद्रासन, मकरासन, शशांकासन, मयूरासन, उत्कटासन, पादहस्तासन, मंडूकासन, ये सभी आसन पाचन तंत्र पर अपना सकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

(3) प्राणायाम – प्राणायाम द्वारा पैरासिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र (Parasypathetic nervous system) उत्तेजित होने से गेस्ट्रोइन्टेस्टाइनल (GI) ट्रैक की ओर रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है और रक्त का दबाव कम होने से धीरे–धीरे पाचन सम्बन्धी रोग ठीक होने लगते हैं।

(4) ध्यान – पाचन तंत्र में अरबों–खरबों सूक्ष्मजीव होते हैं, जो आंत की परत और प्रतिरक्षा प्रणाली का प्रबंधन करते हैं। तनाव का आंत के सूक्ष्मजीवियों पर एक औसत दर्जे का प्रभाव पड़ता है। ध्यान पेट की सूजन की स्थिति को कम करने और एक स्वस्थ आंत को बनाए रखने में आंत के सूक्ष्मजीवों पर तनाव की प्रतिक्रिया को कम करता है। आंत के सूक्ष्मजी न केवल प्रतिरक्षा प्रणाली को बल्कि डीएनए और जीन की अभिव्यक्ति को आकार देता है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. मुँह से लेकर गुहा द्वार तक फैली आहार नाल की लम्बाई.....होती है।
2. छोटी आंत के प्रारम्भ के 30 सेमी. लम्बे भाग को.....कहते हैं।
3. आमाशय का अग्रभाग ..... कहलाता हैं
4. आमाशय के जठर रस में ..... तथा.....होता है।
5. .....एक साथ अन्तःस्रावी तथा बाह्य स्रावी दोनों प्रकार की ग्रंथि है।

4.6 सारांश

मनुष्य में पाचन तंत्र मुख से प्रारम्भ होकर बड़ी आँत के अन्तिम भाग गुदा तक जाता है। मानव के पाचन तंत्र में एक आहार नाल तथा उससे सम्बद्ध पाचन ग्रन्थियाँ होती हैं। आहार नाल मुख, मुखगुदा, दाँत, जीभ, ग्रसनी,

ग्रासनली, आमाशय, छोटी आँत, बड़ी आँत, मलाशय तथा मलद्वार से बनी होती है। सहायक पाचन ग्रन्थियों में लार, यकृत तथा अग्न्याशय है। मुख में दाँतों द्वारा चबाने से लेकर भिन्न–भिन्न प्रकार के भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन आहार में किए जाते हैं। आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा निष्क्रिय पेप्सिनोजेन को सक्रिय पेप्सिन में परिवर्तित किया जाता है। लीवर से पित्त रस तथा अग्न्याशय से अग्न्याशयी जूस के मिलने से भोजन के स्वरूप एवं प्रकृति में परिवर्तन होता है तथा यह जटिल रूप के स्थान पर सरल रूप में परिवर्तित हो जाता है।

संक्षेप में भोजन पाचन पाँच चरणों में पूरा होता है। प्रथम चरण अन्तर्ग्रहण (Ingestion) होता है, जिसमें मुख द्वारा भोजन ग्रहण किया जाता है। द्वितीय चरण पाचन (Digestion) होता है। जिसमें भोजन में उपस्थित जटिल यौगिकों का सरल यौगिकों में परिवर्तन होता है। तीसरा चरण अवशोषण (Absorption) होता है। इसमें पचे हुए भोजन का आँत द्वारा अवशोषण होता है तथा फिर सम्पूर्ण पाचक भोजन आँत के रसांकुरों द्वारा अवशोषित किया जाता है। चौथे चरण मल स्वांगीकरण (Assimilation) की प्रक्रिया में रक्त के माध्यम से पचे हुए पोषक तत्वों को शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुँचाया जाता है। पाँचवा चरण परित्याग (Egestion) होता है। अपचित भोजन को बड़ी आँत में भेजा जाता है। जहाँ उसमें से जल अवशोषित होता है। जल के पुनः अवशोषण के बाद अपशिष्ट पदार्थ को गुदा द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

4.7 शब्दावली

धूसर – धूल के रंग का, खाकी

आंत्रयोजिनी – आँत और आमाशय को जोड़ने वाला अंश

आमाशय – पेट

अंतःस्रावी ग्रंथि – वे ग्रंथियाँ जो अपने हार्मोन सीधे रक्तधारा में छोड़ देती हैं।

बाह्य स्रावी ग्रंथि– वे ग्रन्थियाँ जो अपना प्रमुख उत्पाद किसी नलिका (डक्ट) के द्वारा अपने गन्तव्य तक पहुँचाती हैं।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 8–10 मीटर
2. ग्रहणी (Duodenum)
3. कार्डिएक (Cardiac)
4. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, श्लेष्मा तथा निष्क्रिय पेप्सिनोजन
5. अग्न्याशय

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्रिपाठी : नरेन्द्र नाथ (2004)– सरल जीवन विज्ञान, भाग–2, कोलकाता : शेखर प्रकाशन।
2. डॉ0 रमेश गुप्ता, डॉ0 एम. पी. कौशिक (2019) आधुनिक जीवविज्ञान, भाग–2 प्रकाश पब्लिकेशन्स, मुज़फ्फरनगर, (उ0प्र0)।
3. ब्रह्मवर्चस मानव शरीर रचना एवं क्रियाविज्ञान, प्रकाशन श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार।
4. डॉ. मुकुन्द स्वरूप वर्मा (2013) मानव–शरीर–रचना–विज्ञान प्रकाशन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
5. गुप्त, प्रो0 अनन्त प्रकाश (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन, आगरा।
6. शर्मा डॉ0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार रेलवे रोड, रोहतक।

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. मनुष्य के पाचन संस्थान का सचित्र वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2. मानव पाचन तंत्र के अन्तर्गत पाचन की क्रियाविधि को समझाइए ?

इकाई 5 – उत्सर्जन तंत्र – संरचना व कार्य

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 उत्सर्जन तंत्र की संरचना

- 5.3.1 वृक्क की संरचना
- 5.3.2 मूत्र वाहिनी
- 5.3.3 मूत्राशय
- 5.3.4 मूत्र मार्ग

5.4 उत्सर्जन की क्रिया विधि

5.5 मूत्र त्याग

5.6 उत्सर्जन का महत्त्व

5.7 समस्थैतिकता

5.8 वृक्कों के नियन्त्रण कार्य

5.9 उत्सर्जन में अन्य अंगों की भूमिका

5.10 सारांश

5.11 शब्दावली

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.14 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों, पिछली इकाई में आपने पाचन तन्त्र का अध्ययन किया जिसमें आपने जाना कि मानव शरीर की कोशिकाओं में उपापचयी (Metabolic) क्रियाओं के फलस्वरूप कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2), जल, अमोनिया (NH_3), यूरिया, यूरिक अम्ल, लवण आदि कई ऐसे अपजात या अपशिष्ट (waste) पदार्थ बनते रहते हैं जो शरीर के लिए अनावश्यक व हानिकारक होते हैं। यह पदार्थ जिन्हें कोशिकायें निरन्तर विसर्जित करती रहती हैं उत्सर्जी पदार्थ कहलाते हैं। वह क्रियाविधि जिसके माध्यम से हमारे शरीर के हानिकारक पदार्थ या विषैले पदार्थ बाहर आते हों, उत्सर्जन कहलाती है और इस क्रिया को सम्पन्न करने के लिये जो अंग सहयोग करते हैं उत्सर्जन तंत्र कहते हैं। माना शरीर का मुख्य उत्सर्जी अंग त्वचा, फेफड़ा, यकृत तथा वृक्क है। इस इकाई में हम वृक्क की चर्चा करेगें। मनुष्य के शरीर में वृक्क एक मुख्य अंग होता हैं। प्रस्तुत इकाई में हम वृक्क की संरचना तथा उसके कार्य का अध्ययन करेगें।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- वृक्क की आंतरिक संरचना का सचित्र वर्णन कर सकेंगे।
- मानव के उत्सर्जन तंत्र का वर्णन कर सकेंगे।
- उत्सर्जन तंत्र का शरीर में क्या महत्व है समझा सकेंगे।
- उत्सर्जन तंत्र के कार्यों की व्याख्या कर सकेंगे।

5.3 उत्सर्जन तंत्र की संरचना

मनुष्यों में उत्सर्जन तंत्र एक जोड़ी वृक्क, एक जोड़ी मूत्र नलिका, एक मूत्राशय और एक मूत्र मार्ग का बना होता है।

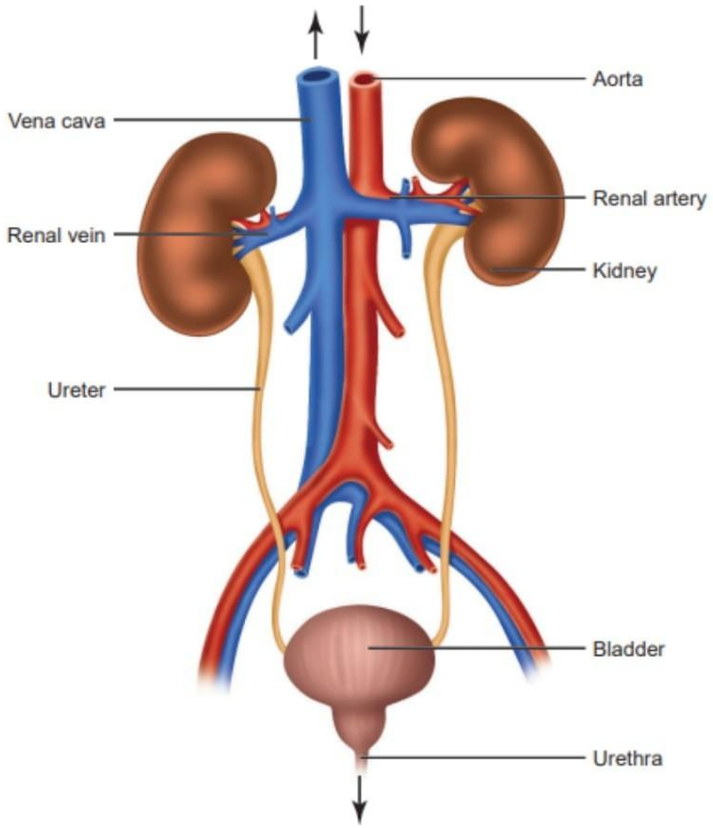

Figure 8.2 Human excretory system

5.3.1 वृक्क या गुर्दे की संरचना (Structure of Kidney)

अगर हम वृक्क की संरचना की बात करें तो मनुष्य में वृक्क (Kidney) यकृत के नीचे, पीछे की ओर होता है मानव में कुंल एक जोड़ी वृक्क होता है इसका भार 130–150 ग्राम होता है। उदरगुहा से बाहर, मेरूदण्ड के दाहिनी और बायीं ओर कटि कशेरूकाओं के मध्य पायी जाती है। प्रत्येक वृक्क के चारों ओर, इसे यथास्थान सहारा देने और सुरक्षा प्रदान करने के लिए वसीय ऊतक की गद्दी (cushion) होती है। वृक्क गहरे लाल रंग के तथा सेम के बीज की आकृति के होते हैं। प्रत्येक वृक्क औसतन 10 से 12.5 सेमी. लम्बा, 5 से 7.5 सेमी. चौड़ा तथा लगभग 2.5 सेमी. मोटा होता है। प्रत्येक वृक्क का पार्श्व की ओर का भाग उठा हुआ अर्थात उत्तल (convex) तथा कशेरूकदण्ड की ओर का भाग दबा हुआ अर्थात अवतल (concave) होता है। अवतल भाग में एक अनुदैर्ध्य छिद्र होता है, जिसे हाइलस (वृक्क नाभि) कहते हैं। इससे होकर वृक्कीय धमनी व तंत्रिकाएँ प्रवेश

करती हैं, तथा वृक्कीय शिरा और मूत्र नलिका बाहर निकलती है। एक अधिवृक्क (suprarenal) अन्तःस्त्रावी ग्रन्थि प्रत्येक वृक्क के ऊपरी छोर पर टोपी की भाँति ढकी होती है। प्रत्येक वृक्क के चारों ओर तन्तुमय संयोजी ऊतक का महीन वृक्क खोल (renal capsule) होता है।

कोर्टेक्स किडनी का सबसे बाहरी भाग होता है यहां पर रूधिर छनता है यहीं पर किडनी की कार्यात्मक एवं

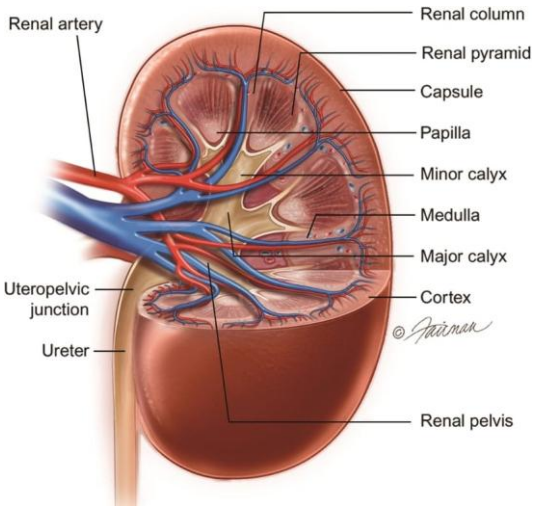

संरचनात्मक इकाई नेफ्रॉन होती है। मेडुला (Medulla) वाला भाग अन्दर की तरफ होता है तथा शंक्वाकार जैसे **छोटे–छोटे भाग में बंटा होता है। जिसे पिरामिड्स (Pyramids) कहते हैं मेडुला नाइट्रोजनी अवशिष्ट पदार्थों को पेलविस (Pelvis) में भेजती है तथा पेलविस इसे मूत्रवाहिनी में भेज देता है।**

वृक्क नलिकाओं अर्थात वृक्काणुओं की संरचना

(Structure of Uriniferous or Renal Tubules or Nephrons)

प्रत्येक वृक्क का प्रमुख ऊतक अर्थात पैरेन्काइमा लगभग दस लाख लम्बी, महीन एवं अत्यधिक कुण्डलित नलिकाओं का एक जटिल व ठोस पिण्ड होता है जिन्हें वृक्क नलिकाएँ या वृक्काणु (renal tubules or nephrons) कहते हैं। ये एक संयोजी ऊतक की थोड़ी–सी मात्र में परस्पर ठसी रहती है। ये वृक्कों की संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाइयाँ होती है अतः इन्हीं में मूत्र (urine) बनता है जिसमें उत्सर्जी पदार्थघुले रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में भ्रूणीय परिवर्धन (embryonic development) में जितनी वृक्क नलिकाएँ बन जाती है, उतनी ही जीवन भर रहती हैं। वृद्धि काल में इनमें भी वृद्धि होती है परन्तु इनकी संख्या नहीं बढ़ती। व्यस्क में जो नलिकाएँ क्षतिग्रस्त या नष्ट हो जाती हैं उनके स्थान पर भी नई नलिकाएँ नहीं बनतीं, अर्थात वृक्क के उतक में पुनरूद्भवन (regeneration) नहीं होता। प्रत्येक वृक्क नलिका निम्नलिखित दो प्रमुख भागों में विभेदित होती है –

1. बोमन सम्पुट (Bowman's Capsule)
2. स्रावी नलिका (Secretory Tubule)

1. **बोमन सम्पुट** (Bowman's Capsule) : प्रत्येक वृक्क नलिका, वृक्क के वल्कलीय भाग में स्थित एक प्यालेनुमा बोमन सम्पुट से प्रारम्भ होती है। सम्पुट के गर्त या गडढ़े लगभग 50 महीन एवं समानांतर फैली रुधिर केशिकाओं (blood capillaries) का घना गुच्छा होता है। जिसे ग्लोमेरूलस (glomerulus) कहते हैं। सम्पुट तथा ग्लोमेरूलस मिलाकर वृक्क या मैल्पीघी कॉर्पसल (renal or Malpighian corpuscle) कहा जाता है। सम्पुट की दीवार दोहरी होती है, क्योंकि वृक्क नलिका के बन्द छोर पर सम्पुट ग्लोमेरुलस के कारण ठीक उसी प्रकार भीतर धँस जाने से बनता है जैसे किसी लम्बे गुब्बारे के फूले हुए सिरे को हम अंगूली से दबा दें। सम्पुट की बाहरी एवं भीतर धँसी दीवार के बीच में इसकी सँकरी–सी गुहा होती है। पूरी दीवार इकहरी एपिथीलियम की बनी होती है। बाहरीदीवार एपिथीलियमी कोशिकाएँ चपटी, शल्की (squamous) होती है भीतर धँसी दीवार में विशेष प्रकार की कोशिकाएँ होती है, जिन्हें पोडोसाइट्स (podocytes) कहते है ये बड़ी–बड़ी चपटी कोशिकाएँ होती है और प्रत्येक कोशिका से कई बड़े–बड़े अंगुलीनुमा प्रवर्ध निकले रहते है। अपने प्रवर्धो सहित ये कोशिकाएँ ग्लोमेरुलस की कोशिकाओं (capillaries) से लिपटी रहती है। केशिकाओं की दीवार अत्यधिक महीन और छिद्रयुक्त होती है। अतः केशिकाओं के रुधिर के प्लाज्मा का कुछ अंश इस कला में से छन कर वृक्क नलिकाओं में जाता रहता है। इस प्रकार, यह दीवार एक निस्यंदक (filter) का काम करती है। ग्लोमेरूलस में अभिवाही वृक्क धमनिका (afferent renal arteriole) द्वारा रक्त आता है तथा यहां से अपवाही वृक्क धमनिका (efferent renal arteriole) से होकर आगे बढ़ता है।

2. **स्रावी नलिका (Secretory Tubule)**: बोमन सम्पुट को छ़ोड़कर वृक्क नलिका के शेष भाग को स्रावी नलिका कहते हैं। यह छोटी–सी, सँकरी ग्रीवा (neck), मोटी समीपस्थ कुण्डलित नलिका (proximal convoluted tubule), लम्बे, पतले तथा "U" की आकृति के हेन्ले के लूप (Henle's loop) तथा मोटी दूरस्थ कुण्डलित नलिका (distal convoluted tubule) में विभेदित होती है। हेन्ले के लूप की अवरोही (descending) भुजा पतली होती है। कुछ वृक्क नलिकाओं में इसकी आरोही (ascending) भुजा का समीपस्थ भाग, अवरोही भुजा की भाँति पतला, परन्तु दूरस्थ भाग दूरस्थ कुण्डलित नलिका की भाँति मोटा होता है। अन्य वृक्क नलिकाओं में आरोही भाग पूरा ही मोटा होता है।दूरस्थ कुण्डलित नलिका अपने दूरस्थ छोर पर एक सीधी संग्रह नलिका (collecting tubule) में खुलती है। स्रावी नलिका पर रुधिर केशिकाओं का जाल लिपटा होता है।

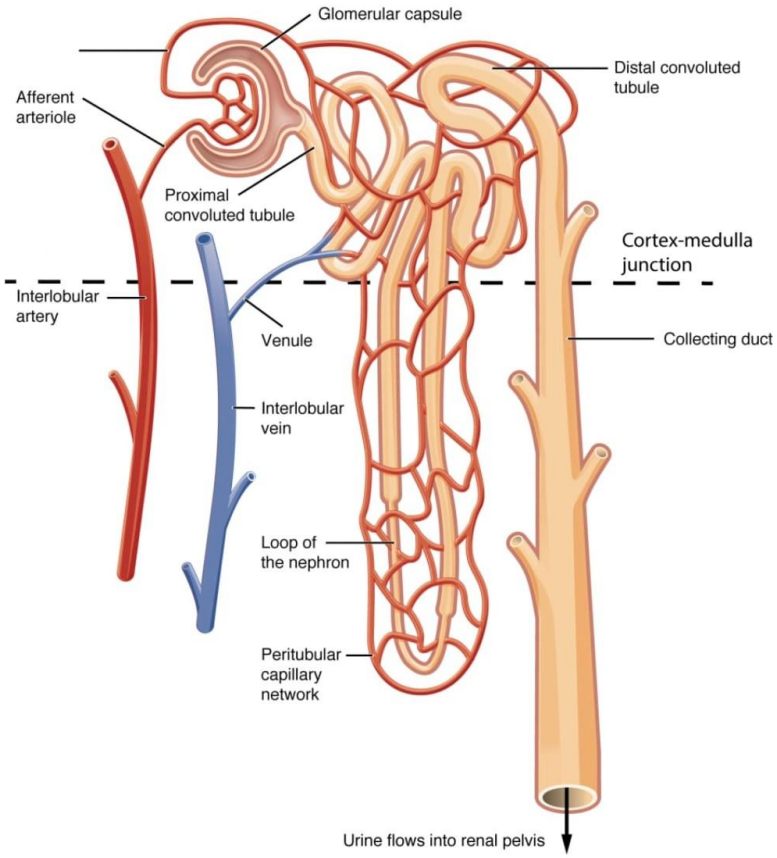

संग्रह नलिकाएँ मेड्यूला के पिरैमिड्स में स्थित होती हैं। प्रत्येक संग्रह नलिका में कई निकटवर्ती वृक्क नलिकाएँ खुलती हैं। प्रत्येक पिरैमिड के अंकुर (papilla) में कई निकटवर्ती संग्रह नलिकाएँ कुछ मोटी प्रमुख संग्रह नलिकाएँ बनाती हैं जिन्हें बेलिनाई की नलिकाएँ (ducts of Bellini or papillary ducts) कहते हैं संग्रह तथा बेलिनाई की नलिकाओं के कारण पिरैमिड रेखित (striated) से दिखाई देते हैं। बेलिनाई की नलिकाएँ पिरैमिडों के अंकुरों के शिखर पर मूत्रवाहिनी (ureter) में खुलती हैं।

कृत्रिम वृक्क (Artificial Kidney)- जब किडनी नेफ्रॉन कोशिकायें काम नहीं करती हैं तब रक्त में अवशिष्ट पदार्थों क ा जमाव ज्यादा हो जाता है जिससे टॉक्सिन की मात्रा शरीर में बढ़ने लगती है। तब रक्त को शरीर से बाहर एक सेलुलोज की टंकी में प्रवाहित किया जाता है इससे अशुद्धियां बाहर हो जाती हैं और शुद्ध रक्त को पुनः शरीर में भेज दिया जाता है। इस प्रक्रिया को डायलिसिस (Dialysis) कहते हैं।

नोट :– जब रक्त को पुनः मानव शरीर में डायलिसिस के दौरान स्थानान्तरित किया जाता है तब इसमें हिपेरिन नामक प्रोटीन मिला दिया जाता है ताकि रक्त जमने न पाये। किडनी की पथरी कैल्शियम ऑक्सोलेट नामक पदार्थ का बना होता है। पथरी सामान्यतः पुरूषों में अधिक पाई जाती है।

5.3.2 मूत्र वाहिनी (Ureters)

प्रत्येक वृक्क से एक चिकनी, मांसपेशी फाइबर से बने ट्यूब से निकलती है जिसे मूत्रवाहिनी कहते हैं। मूत्रवाहिनी मूत्र को हमारी उदरगुहा के सबसे निचले भाग, अर्थात श्रोणि गुहा (pelvic cavity) में स्थित मूत्राशय

(urinary bladder) में ले जाती है। मूत्रवाहिनियाँ लगभग 25 से 30 सेमी. लम्बी तथा लगभग 1.5 सेमी. मोटी नलिकाएं होती हैं। प्रत्येक मूत्र वाहिनी अपनी ओर के वृक्क की गुहा अर्थात वृक्क कोटर (renal sinus) में स्थित कीपनुमा वृक्कश्रोणि (renal pelvis) से शुरू होता है और मूत्राशय की पिछली दीवार के अपनी ओर के पीछे के भाग में स्थित एक तिरछे छिद्र (ureteral openning) द्वारा मूत्राशय में खुलती है। तिरछे होने के कारण इन छिद्रों से मूत्राशय में भरा मूत्र वापस मूत्रवाहिनियो में नहीं जा पाता।

5.3.3 मूत्राशय (Urinary bladder)

यह एक थैलीनुमा संरचना होती है जिसका निर्माण पेशियों के द्वारा होता है। वृक्कों में उत्पन्न हुआ मूत्र वाहिनियों के द्वारा इस मूत्राशय में इकट्ठा होता रहता है। इसकी क्षमता 300 से 400 एम.एल. मूत्र ग्रहण करने की होती है तथा इस मूत्राशय में इकट्ठे होने वाले मूत्र की संवेदना मस्तिष्क तक पहुँचायी जाती है तथा इसके भर जाने पर अनैच्छिक पेशियों को शिथिल करने पर यह मूत्र मार्ग के द्वारा आगे बढ़ने लगता है। पुरूषों में यह मलाशय के सामने तथा प्रोस्टेट ग्रंथि के ऊपर रहता है। स्त्रियों में यह कुछ नीचे की ओर, गर्भाशय तथा येानि के ऊपर भाग के सामने स्थित होता है।

5.3.4 मूत्रमार्ग (Urethra)

मूत्राशय से एक मूत्रनली, नली के रूप में शरीर से बाहर निकलती है जिसका कार्य मूत्राशय में स्थित मूत्र को बाहर निकालना होता है। स्त्रियों में इसकी लम्बाई केवल 4 सेमी. जबकि पुरूषों में यह 20 सेमी. तक लम्बा होता है। इस पर ऑटोनोमिक तन्त्रिका तंत्र का नियंत्रण रहता है।

5.4 उत्सर्जन की क्रिया विधि

मनुष्य में प्रमुख उत्सर्जी पदार्थ यूरिया (urea) होता है, अर्थात उत्सर्जन यूरियोटीलिक (ureotelic excretion) होता है। उत्सर्जन की प्रक्रिया जटिल होती है। इसके अन्तर्गत दो प्रमुख प्रक्रियाएँ होती हैं– (क) यकृत में यूरिया–संश्लेषण (urea synthesis in liver), तथा (ख) वृक्कों द्वारा मूत्र का निर्माण एवं उत्सर्जन (Formation and excretion of urine in Kidneys)

(क) यकृत में यूरिया–संश्लेषण (Urea-Synthesis in Liver) यह उत्सर्जन का जैव–रासायनिक (biochemical) पहलू होता है। इसमें यकृत कोशिकाओं मे अमोनिया (Ammonia-NH_3) तथा कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) की अभिक्रिया के फलस्वरूप यूरिया का संश्लेषण होता है। कुछ अमोनिया का तो शरीर कोशिकाएँ अपने प्रोटीन–उपापचय के अपशिष्ट पदार्थ (byproduct) के रूप में रूधिर में मुक्त करती रहती हैं और यकृत कोशिकाएँ

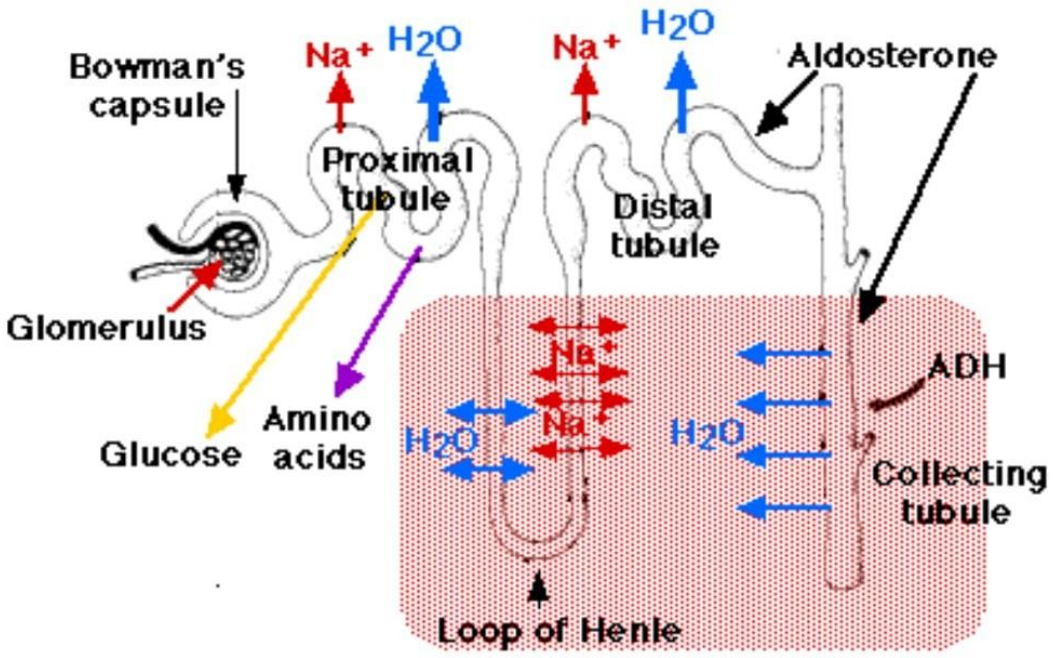

इसे रूधिर से लेती रहती हैं, परन्तु अधिकांश अमोनिया स्वयं यकृत कोशिकाओं में उन निरर्थक ऐमीनो अम्लों के विऐमीनीकरण अर्थात ऐमीनोहरण (deamination) से बनती है, जो प्रोटीन पाचन के फलस्वरूप रूधिर में अवशोषित होते हैं, लेकिन शरीर की तत्कालीन आवश्यकता से अधिक होने के कारण यकृत में रूक जाते हैं। ऐमीनोहरण में ऐमीनो अम्ल के अणु से, ऑक्सीकरण द्वारा, अमोनिया (NH_3) पृथक कर दी जाती है। यकृत कोशिकाओं में अमोनिया, कार्बन डाइ ऑक्साइड (CO_2) से मिलकर यूरिया (urea) का निर्माण करती हैं। यकृत कोशिकाएँ यूरिया को रूधिर में मुक्त करती रहती हैं।

(ख) वृक्कों द्वारा मूत्र का निर्माण एवं उत्सर्जन (Formation and Excretion of Urine by Kidneys)- रूधिर को छानकर इसमें से अनावश्यक और अपशिष्ट पदार्थों को हटाना वृक्कों का मूल कार्य होता है। यह उत्सर्जन का भौतिक पहलू होता है क्योंकि इसमें रासायनिक अभिक्रियाएँ नहीं होती है। वृक्क (Kidney) के वृक्काणु (Nephron) से उत्सर्जी पदार्थों को रक्त से निम्नलिखित दो चरणों में अलग किया जाता है–

1. निस्यंदन द्वारा (By Filtration)– यह क्रिया कोशिकागुच्छ (Glomerulus) मे सम्पन्न होती है। कोशिकागुच्छ एक छननी (Filter) की भाँति कार्य करती है। कोशिकागुच्छ से होकर प्रति मिनट लगभग 1 लीटर रक्त प्रवाहित होता है। 1 लीटर रक्त में लगभग 500 मिली. प्लाज्मा पाया जाता है। रक्त का लगभग 10% भाग इसके द्वारा छनता (Filtration) है।

अभिवाही धमनिका (Afferent Arteriole) की मोटाई (व्यास) अप्रवाही धमनिका (Efferent Arteriole) की

अपेक्षा अधिक होती है। इसलिए कोशिकागुच्छ (Glomerulus) में रक्त का दबाव बढ़ जाता है, जिससे निस्यंदन (Filtration) की क्रिया सम्पन्न होती है। उच्च रक्त दाब (High Blood Pressure) पर निस्यंदन की इस क्रिया को अल्ट्राफिल्ट्रेशन (Ultra Filtration) कहते हैं।

अल्ट्राफिल्ट्रेशन क्रिया द्वारा रूधिर प्लाज्मा से जल, ग्लूकोज तथा खनिज लवण छान लिये जाते हैं। इस क्रिया द्वारा केवल प्लाज्मा प्रोटीन व रूधिर कोशिकाएँ नहीं छन पाती हैं तथा रक्त में ही बनी रहती हैं। छना हुआ रक्त द्रव निस्यंदन (Liquid Filtrate) कहलाता है। यह निस्यंदन बोमेन सम्पुट (Bowman's Capsule) की नलिका में जाता है।

रूधिर का लाभदायक घटक निस्यंदन (Filtration) के द्वारा छान लिया जाता है, इस प्रकार के चयनात्मक निस्यंदन को जिसमें लाभदायक घटक व पदार्थ छान लिये जाते हैं उसे डायलिसिस (Dialysis) कहते हैं।

2. पुनरावशोषण द्वारा (Reabsorption)

बोमेन सम्पुट (Bowman's Capsule) से छनने के बाद, रक्त नेफ्रॉन के बाहर कोशिकाओं के जाल में पहुँचता है। निस्यंदन (Filtrate) में उपस्थित अनेक लाभदायक तत्त्वों को नेफ्रॉन की नलिकाओं के चारों ओर उपस्थित रूधिर कोशिकाओं द्वारा पुनः अवशोषित कर लिया जाता है। अवशोषण की यह प्रक्रिया नेफ्रॉन की नलिकाओं से रक्त के गुजरते समय सम्पन्न होती है। इसके पश्चात् रक्त परिसंचरण में वापस लौटा दिया जाता है। इस प्रक्रिया को पुनःअवशोषण (Reabsorption) कहते हैं। निस्यंदन द्वारा अधिकांश जल का अवशोषण परासरण (Osmosis) की क्रिया द्वारा होता है। अवशोषण के द्वारा ग्लूकोज विटामिन, खनिज लवण, हार्मोन्स आदि लाभदायक तत्त्वों को रक्त से अवशोषित कर लिया जाता है। हाल की वैज्ञानिक अनुसंधान स्पष्ट करते हैं कि 100 मिली. निस्यंदन से लगभग 99 मिली. द्रव्य का पुनः अवशोषण हो जाता है। पुनरावशोषण के बाद नलिका की कोशिकाओं में कभी–कभी कुछ उत्सर्जी पदार्थों का स्राव होता है, जो निस्यंदन (Filtrate) में मिलते हैं। इस स्राव को ट्यूबुलर स्रवण (Tubular Secretion) कहते हैं तथा निस्यंद (Filtrate) को मूत्र (Urine) कहते हैं।

5.5 मूत्र–त्याग

मूत्रण (Micturition) मूत्र त्याग की प्रक्रिया है। मूत्र त्याग की प्रक्रिया मूत्राशय भित्ति की चिकनी पेशियों व मूत्राशय द्वार के चारों ओर खुलने वाली कंकाल पेशियों के शिथिलन के माध्यम से पूर्ण होती है। मूत्राशय की भित्ति में धीरे–धीरे मूत्राशय भरने से खिंचाव आता है, तो मूत्राशय के खिंचाव ग्राही मूत्राशय में तंत्रिका आवेगों को उत्पन्न करते हैं। ये आवेश संवेदी तंत्रिकाओं द्वारा मेरूरज्जु तथा मस्तिष्क तक ले जाए जाते हैं। इससे पूर्णता (लगभग 500 मिली.) का बोध होता है तथा तब अवरोधिनी प्रेरक आवेगों के निरोध से शिथिल होते हैं। स्वायत्त नियंत्रण से मूत्राशय की भित्ति में चिकनी पेशियाँ संकुचित होकर संग्रहित मूत्र को खाली कर देती हैं।

मूत्र एक पारदर्शी विशेष गंध व उपापचयी अपशिष्ट युक्त जलीय द्रव है, मनुष्य अपने मूत्र में यूरिया

निकालता है। जो रंग में हल्का पीला व थोड़ा अम्लीय (औसत pH 6.0 एवं इसका परास 4.2 से 8.2) होता है।

मूत्र का रासायनिक संयोजन तथा भौतिक प्रकृति :

(Chemical Composition and Physical Nature of Urine)

मूत्र में सामान्यतः 95% जल, 2% अनावश्यक लवणों के आयन,2.6% यूरिया, 0.3% क्रिटिनिन तथा सूक्ष्म मात्रा में यूरिक अम्ल एवं अन्य अनावश्यक और अपशिष्ट पदार्थ होते हैं। यूरोक्रोम (urochrome) नामक रंगा पदार्थ की उपस्थिति के कारण मूत्र का रंग भी हल्का पीला–सा होता है। यूरोक्रोम, पित्त रंगाओं की भाँति, हिमोग्लोबिन के विखण्डन के फलस्वरूप बन कर रूधिर में मुक्त होता है। मूत्र क्षारीय नहीं वरन् हल्का अम्लीय (ph—6.00) होता है। एक व्यस्क मनुष्य प्रतिदिन औसतन 1–1.5 लीटर मूत्र उत्सर्जित करता है मूत्र का विशलेषण वृक्कों के कई उपापचयी विकारों तथा अन्य बीमारियों को इंगित करता है। उदारणार्थ, मूत्र में ग्लूकोस (glycosuria) कीटोन काय की उपस्थिति (ketonuria) मधुमेह (Diabetes mellitus) रोग के लक्षण है।

5.6 उत्सर्जन का महत्त्व (IMPORTANCE OF EXCRETION)

हमारे शरीर का तरल भाग (Fluid Copartment of Our Body): शरीर का कुल जल (Total Body Water=TBW): हमारे शरीर का लगभग 57% भाग जल होता है जो शरीर में दो श्रेणियों के तरल पदार्थो में विलायक (solvent) का काम करता है – कोशिकाओं के साइटोसॉल (cytosaol) अर्थात अन्तः कोशिकीय तरल (ICF) में तथा कोशिकाओं के बाहरी बाह्यकोशिकीय तरल (ECF) में। जल का लगभग दो तिहाई भाग अन्तः कोशिकीय तरल में तथा शेष बाह्यकोशिकीय तरल में होता है। बाह्यकोशिकीय तरल स्वंय तीन भागों में विभेदित होता है– रुधिर प्लाज्मा (ECF का लगभग 20%),लसिका (ECF का लगभग 5%), तथा ऊतक द्रव्य (ECF का लगभग 75%),बाह्यकोशिकीय तरल (Extracellular Fluid= ECF): इसमें ऊतक द्रव्य रुधिर प्लाज्मा का अंश होता है तथा लसिका ऊतक द्रव्य का अंश होती है। इस प्रकार ECF कोशिकाओं के बाहर पूर्ण शरीर में एक अविच्छिन तरल वातावरण बनाता है जिसे क्लॉडी बरनार्ड (Claude Bernard,1865) ने शरीर का भीतरी वातारण (*milieu interieu* or internal sea of body) कहा। यह वातावरण शरीर के विभिन्न भागों के बीच तथा शरीर एवं इसके बाहरी वातावरण के बीच परिवहन माध्यम (transport medium) का काम करता है। स्पष्ट है कि एक ओर ECF शरीर के विभिन्न भागों से लाभदायक पदार्थो (पोषक पदार्थो, ऑक्सीजन (O_2),हॉरमोन्स आदि) को ग्रहण करके

शरीर की कोशिकाओं तक पहुँचाने वाली आपूर्ति प्रणाली (supply line) का तथा दूसरी ओर कोशिकाओं के अपशिष्ट पदार्थो (कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), जल तथा नाइट्रोजनीय एवं अन्य अपशिष्ट पदार्थो) को एकत्रित करके उन अंगों तक पहुँचाने वाली अपशिष्ट निर्गम प्रणाली (sanitary drainage line) का काम करता है जो इन उपशिष्टों का शरीर बाह्य वातावरण में विसर्जन या उत्सर्जन करते हैं।

शरीर के अन्तः वातावरण की अखण्डता

(Constancy or Steady State of Internal Environment of Body)

शरीर–कोशिकाएँ शरीर के संरचनात्मक संगठन और इसकी क्रियान्मक सुव्यवस्था में अपना पूर्ण योगदान तभी कर सकती हैं जब इनमें सुचारु रूप से उपापचय (metabolism) होता रहे। कोशिकाओं में सुचारु उपापचय तभी सम्भव है जब ऊतक द्रव्य से इनका रासायनिक आदान–प्रदान सामान्य बना रहे और यह रासायनिक आदान–प्रदान तभी सामान्य बना रह सकता है जब शरीर का अन्तःवातावरण अखण्ड बना रहे, अर्थात इसमें विविध भौतिक–रासायनिक दशाएँ (physio-chemical conditions) स्थाई बनी रहें। अन्तःवातावरण की ये दशाएँ मुख्यतः होती है इसमें जल की मात्रा, इसके परिसंचरण की दर, ताप pH,परासरणी दाब (osmotic pressure),रासायनिक संयोजन, विभिन्न आयन्स (ions) का सान्द्रण, अम्ल–क्षार सन्तुलन (acid-base balance) आदि।

5.7 समस्थैतिकता अर्थात होमियोस्टैसिस(HOMEOSTAIS)

सभी जानते हैं कि शरीर के बाहरी वातावरण में भौतिक एवं रासायनिक दशाएँ अत्यधिक अस्थिर होती हैं। ये सदैव बदलती रहती हैं। बदलती रहने वाली वातावरणीय दशाओं में अपने–आप को जीवित दशा में बनाए रखने के लिए प्रत्येक जीव को अपनी क्रियाओं में निरन्तर आवश्यक परिवर्तन करते रहना पड़ता है। जीवों की इस क्षमता को प्रतिक्रियाशीलता (reactivity,responsiveness, irritability or behaviour) कहते हैं।

वातावरणीय दशाओं के अनुसार, शरीर की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को अन्जाम देने, अर्थात इनके क्रियान्वयन में पूर्ण शरीर की, या किन्ही विशेष ऊतकों कोशिकाओं के उपापचय में परिवर्तन हो जाते हैं उपापचय की दर, कुछ विशिष्ट पदार्थो की खपत, या कुछ विशिष्ट अपशिष्ट पदार्थो का उत्पादन घट–बढ़ सकता है, या फिर कुछ असामान्य अपशिष्ट पदार्थ भी बन सकते हैं। इस सबके फलस्वरूप शरीर के अन्तः वातावरण की विभिन्न दशायें प्रभावित होती हैं जिससे अन्तः वातावरण की अखण्डता के प्रभावित हो जाने के कारण जीवित रहना कठिन या असम्भव हो सकता है इसलिए जीवों में अपने इस अन्तः वातावरण की अखण्डता (steady state) को बनायें रखने, अर्थात इसके अनुरक्षण (maintenance) की क्षमता होती है। जीवों की इसी क्षमता को समस्थैकिता अर्थात होमियोस्टैसिस (homeostasis) कहते है।

प्रतिक्रियाशीलता एवं समस्थैकिता का नियंत्रण और नियमन (Control and Regulation of Reactivity and Homeostasis): वातावरणीय दशाओं के अनुसार शरीर की प्रतिक्रियाओं तथा फिर इन प्रतिक्रियाओं के अनुसार समस्थैकिता के नियन्त्रण एवं नियमन के लिए उच्च कोटि के जन्तुओं में दो ऐसे तन्त्रों का विकास हुआ जो इन प्रक्रियाओं (processes)के लिए शरीर के सभी भागों की क्रियाओं का नियन्त्रण एवं नियमन करते हैं। इन तन्त्रों को इसलिए समन्वयन या समाकलनात्मक (co-ordinating or integrative)तन्त्र कहते हैं। ये तन्त्र होते हैं – तन्त्रिका तन्त्र (nervous system) तथा अन्तःस्रावी तन्त्र (endocrine system)।

5.8 वृक्कों के नियन्त्रण कार्य

(REGULATION FUNCTIONS OF KIDNEYS)

मनुष्य के शरीर में वृक्क उत्सर्जन के अतिरिक्त निम्नलिखित कार्यो का नियमन भी करते हैं–

1. **समस्थैतिकता अर्थात होमियोस्टैसिस (Homeostasis)**: वृक्क रुधिर में से आवश्यकता से अधिक और अपशिष्ट एवं निरर्थक पदार्थो का चयनात्मक उत्सर्जन (selective excretion) करके शरीर के भीतरी तरल वातावरण (रुधिर, लासिका एवं ऊतक द्रव्य) की रासायनिक अखण्डता बनाए रखने अर्थात समस्थैतिकता अर्थात होमियोस्टैसिस का महत्त्वपूर्ण काम करते हैं।
2. **pH का नियमन (Regumation pH)**: शरीर के तरल अन्तःवातावरण का pH लगभग 7.4 होता है उपापचयी अभिक्रियाओं के फलस्वरूप यदि हाइड्रोजन आयन (H+) अधिक संख्या में बनने लगते हैं, अर्थात Ph घटने लगता है तो शरीर में अम्लीयता (acidosis) का रोग हो जाता है। इसी प्रकार, यदि (H+) कम संख्या में बनने लगते हैं, अर्थात pH बढ़ने लगता है तो शरीर में क्षारीयता (alkalosis) का रोग हो जाता है। शरीर मे कई अम्ल–क्षार प्रतिरोधक तन्त्र (acid-base buffer systems) pH की घटा–बढ़ी को ठीक करते हैं। HCO_3 का पुनरवशोषण तथा H+ आयनों की अधिक या कम संख्या का उत्सर्जन करके, वृक्क भी pH के नियमन में महत्त्वपूर्ण सहयोग देते हैं।
3. **रुधिर की मात्रा तथा इसकी परासरणीयता का नियमन (Blood Volume and its Osmolality)** : हॉरमोन्स की सहायता से जल और लवणों की आवश्यक मात्रा को रोककर तथा अनावश्यक जल और लवणों का उत्सर्जन करके वृक्क अन्तःवातावरण की परासरणीयता (osmolality) का नियन्त्रण करते हैं। यह बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। ऊतक द्रव्य में लवणों की मात्रा बढ़ जाने पर कोशिकाओं का जल बाहर निकल आएगा जिससे ये सिकुड़कर मृत हो जाएँगी। इसी प्रकार, ऊतक द्रव्य में लवणों की मात्रा घट जाने पर कोशिकाओं में जल भरकर इन्हें फुला देगा जिससे ये फट जाएँगी।

4. **रुधिरदाब का नियमन (Blood Pressure)** : वृक्क रुधिरदाब (Blood Pressure=BP) का भी नियमन करते हैं। ज्योही रुधिरदाब कम होने लगता है, वृक्क नलिकाओं से सम्बन्धित जक्स्टाग्लोमेरुलर उपकरणों की कोशिकाएँ रुधिर में रेनिन (renin) नामक एन्जाइम मुक्त करने लगती हैं। रुधिर में रेनिन, यकृत द्वारा स्रावित एक निष्क्रिय प्रोटीन, एन्जिओटेन्सिनोजन (angiotensinogen), को सक्रिय एन्जिओटेन्सिन प्रथम (angiotensin I) में बदल देता है। रुधिर का एक अन्य एन्जाइम, एन्जिओटेन्सिन–परिवर्तक एन्जाइम (angiotensin-converting enzyme), एन्जिओटेन्सिन प्रथम (angiotensin I) को एन्जिओटेन्सिन द्वितीय (angiotensin II) में बदलता है जो एक हॉरमोन होता है। इस हॉरमोन के प्रभाव से अधिवृक्क ग्रन्थियों (adrenal glands) से ऐल्डोस्टीरॉन (aldosterone) नामक हॉरमोन का स्रावण बढ़ जाता है। ऐल्डोस्टीरॉन वृक्क नलिकाओं के निस्यंद Na^+ से आयन एवं जल के पुनर्अवशोषण को बढ़ाकर रुधिर की मात्रा बढ़ाता है जिससे रुधिरदाब सामान्य हो जाता है।
5. शरीर में ऑक्सीजन (O_2) की कमी अर्थात हाइपोक्सिया (hypoxia) होने पर वृक्क एरिथ्रोपोयटिन (erythropoietin) नामक हॉरमोन रुधिर में मुक्त करते हैं। यह हॉरमोन अस्थि मज्जा (bone marrow) में पहुँचकर अधिकाधिक लाल रुधिराणुओं के निर्माण का तथा रुधिर में इनकी मुक्ति का नियमन करता है।
6. **वृक्क कैल्सिट्रायल** (Calcitriol-Vitamin D_3) नामक हॉरमोन को भी रुधिर में मुक्त करते हैं। यह हॉरमोन हड्डियों के निर्माण तथा आँत में Ca^{2+} एवं Mg^{2+} आयनों के अवशोषण का नियमन करके होमियोस्टैसिस में महत्त्वपूर्ण योगदान करता है।

अन्तःवातावरण की विद्युत–अपघटनीयता का नियमन (Electrolytic Condition) : वृक्क शरीर की आवश्यकतानुसार विभिन्न व्यक्तिगत आयनों (Ca^2+, Mg^{2+},Na^+,C^{1-},K^+, HCO^{3-}, $HPO^2{}_4^-$आदि) का, चयनात्मक पुनरवशोषण या स्रावण द्वारा, बहुत ही सन्तुलित उत्सर्जन करते हैं ताकि अन्तःवातावरण की विद्युत–अपघटनी अर्थात इलेक्ट्रोलाइटिक दशा अनुकूल बनी रहे।

5.9 उत्सर्जन में अन्य अंगों की भूमिका

वृक्कों के अलावा फुफ्फुस, यकृत और त्वचा भी उत्सर्जी अपशिष्टों को बाहर निकालने में मदद करते हैं।

हमारे फेफड़े प्रतिदिन भारी मात्रा में CO_2 और जल की पर्याप्त मात्रा का निष्कासन करते हैं। हमारे शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि यकृत 'पित्त' का स्राव करती है। जिसमें बिलिरूबिन, बिलीवरडिन, कॉलेस्ट्रॉल, निम्नीकृत स्टीरॉयड हार्मोन, विटामिन तथा औषध आदि होते हैं। इन अधिकांश पदार्थों को अंततः मल के साथ बाहर निकाल दिया जाता है।

त्वचा में उपस्थित स्वेद ग्रंथियाँ तथा तैल–ग्रंथियाँ भी स्राव द्वारा कुछ पदार्थों का निष्कासन करती हैं। स्वेद ग्रंथि द्वारा निकलने वाला पसीना एक जलीय द्रव है, जिसमें नमक, कुछ मात्रा में यूरिया, लैक्टिक अम्ल इत्यादि होते

हैं। हालांकि पसीने का मुख्य कार्य वाष्पीकरण द्वारा शरीर सतह को ठंडा रखना है, लेकिन यह ऊपर बताए गए कुछ पदार्थों के उत्सर्जन में भी सहायता करता है। तैल ग्रन्थियाँ सीबम द्वारा कुछ स्टेरोल, हाइड्रोकार्बन एवं मोम जैसे पदार्थों का निष्कासन करती है। ये स्राव त्वचा को सुरक्षात्मक तैलीय कवच प्रदान करते हैं।

उत्सर्जन तंत्र पर योग का प्रभाव

शरीर से अपशिष्ट पदार्थ के उत्सर्जन की प्रक्रिया में चार अंग शामिल होते हैं, वे गुर्दे, आंत, त्वचा और फेफ़ड़े होते हैं। गुर्दे मूत्र के माध्यम से, आंत मल के माध्यम से, त्वचा पसीने के माध्यम से और फेफड़ा हवा के माध्यम से अपशिष्ट पदार्थ निकालते हैं। यद्यपि यह सभी चार अंगों का कुशलतापूर्वक काम करना आवश्यक है ताकि सेलुलर फंक्शन के लिए आंतरिक वातावरण अनुकूल बना रहे, अब तक गुर्दे उनके बीच सबसे महत्वपूर्ण अंग है।

त्वचा महत्वपूर्ण और सबसे बड़ी शरीर का अंग है और शरीर को एक साथ रखने के अलावा शरीर के तापमान को नियंत्रित करने का काम करता है, साथ ही पसीने के माध्यम से अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालता है। जब रक्त में जहरीले पदार्थ की अधिकता होती है, तो यह फोड़े, चकत्ते और फुंसियों के रूप में त्वचा के माध्यम से निकलता है। जैसा कि सूर्यनमस्कार पसीना पैदा करता है, परिसंचरण में तेजी लाता है और पाचन और मूत्र प्रणालियों के माध्यम से कचरे के उन्मूलन को बढ़ाता है,

योग आसन शरीर को खींचने में मदद करते हैं और गुर्दे सहित महत्वपूर्ण अंगों को उत्तेजित करते हैं और इसलिए गुर्दे की पथरी से छुटकारा पाने के लिए योग करना महत्वपूर्ण है। गुर्दे की पथरी के लिए योग का उपयोग बहुत लंबे समय तक उपचार के रूप में किया जाना चाहिए। योग गुर्दे की पथरी के लक्षणों जैसे, ऐंठन, मतली से राहत देने में मदद करता है। गुर्दे के कार्य को बढ़ाने के लिए कुछ उपयोगी योगासन निम्नवत हैं–

1. आसन– भुंजगासन, ऊष्ट्रासन, अर्द्ध–मत्स्येन्द्रासन, सर्पासन, पश्चिमोत्तानासन, सेतु–बन्धासन और नौकासन आदि आसन विश्राम बढ़ाने के लिए जाने जाते है। ये शरीर में जल–प्रतिधारणा के प्रबंधन में भी सहायता करते हैं। आसन प्रभावी रूप से शरीर और मन के तनाव को नियंत्रित करता है। ये आन्तरिक अंगों की सफाई करते हैं, जो शरीर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालना सुनिश्चित करते हैं। आसन रक्त के प्रवाह को गुर्दे की ओर प्रवाहित करते हैं।

(i) कटिचक्राचन – यह रीढ़ की कठोरता को कम करता है और गुर्दे की मालिश करता है।

(ii) ऊष्ट्रासन – यह मुद्रा गुर्दे, अग्न्याशय और थायरॉयड को उत्तेजित करती है।

(iii) तिर्यक भुंजगासन –यह किडनी की मालिश करता है और गुर्दे में ऑक्सीजन की मात्रा को बढ़ाता है।

(iv) धनुरासन – यह पाचन और उन्मूलन में सुधार करके गुर्दे को उत्तेजित करता है।

(v) भूनमनासन – इससे रीढ़ की हड्डी और गुर्दे सक्रिय होते हैं।

2. प्राणायाम – प्राणायाम रक्तचाप को नियंत्रित करता है और किडनी फेल्योर जैसी बीमारियों को होने से रोकता है।

3. शोधन क्रिया – शोधन क्रियाओं के अभ्यास से आंतरिक अंगों की सफाई होती है और ये अंग अपना कार्य भलीभांति कर पाने में सक्षम बनते हैं।

4. ध्यान – ध्यान द्वारा शरीर के विषाक्त को दूर किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1. मूत्रीय संस्थान में निम्न में से कौन–सा सम्मिलित है ?

   (अ) वृक्क (ब) मूत्र नलियां (स) मूत्राशय एवं मूत्रमार्ग (द) उपर्युक्त सभी

2. प्रत्येक गुर्दा लगभग :

   (अ) 12 सेमी. लम्बा (ब) 6 सेमी. चौड़ा (स) 3 सेमी. (द) उपर्युक्त सभी

3. सामान्यतः मूत्र का पी.एच. मान होता है :

   (अ) 6.0 (ब) 5.0 से 8.0 के बीच (स) 6.0 से 8.0 के बीच (द) इनमें से कोई नहीं

4. मूत्र त्याग की इच्छा जाग्रत होती है, जब मूत्राशय में जमा होता है :

   (अ) 300 मिली. (ब) 600 से 800 मिली मूत्र (स) 500 मिली. मूत्र (द) इनमें से कोई नहीं

5. मूत्र त्याग की इच्छा को नियन्त्रित करता है :

   (अ) ब्रेन स्टीम एवं सेरिब्रल कॉर्टेक्स (ब) वृक्क (स) मूत्राशय (द) इनमें से कोई नहीं

5.10 सारांश

इस इकाई में आपने वृक्कों की संरचना एवं क्रिया विधि का अध्ययन किया। उत्सर्जन क्रिया वह महत्वपूर्ण क्रिया है जिसके माध्यम से शरीर चय–अपचय क्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न हानिकारक पदार्थों का उत्सर्जन करता है। यह शरीर के शुद्धिकरण की एक ऐसी क्रिया है जिसके माध्यम से शरीर की गन्दगियों को द्रव रूप मूत्र के

रूप में शरीर से बाहर निकाला जाता है। मानव के उत्सर्जी तंत्र में एक जोड़ी वृक्क, एक जोड़ी मूत्रवाहिनी, एक मूत्राशय और मूत्र मार्ग सम्मिलित है। प्रत्येक वृक्क में एक मिलियन नलिकाकार संरचनाएं वृक्काणु होते हैं। वृक्काणु वृक्क की क्रियात्मक इकाई है और उसके दो भाग होते हैं– गुच्छ और वृक्क नलिका। मूत्र निर्माण में दो मुख्य प्रक्रियाएं होती हैं– निस्यंदन और पुनरावशोषण। मूत्राशय में मूत्र का संग्रह केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा ऐच्छिक संकेत प्राप्त होने तक किया जाता है। संकेत प्राप्त होने पर मूत्र मार्ग द्वारा इसका निष्कासन मूत्रण कहलाता है। त्वचा, फेफड़े और यकृत भी उत्सर्जन में सहयोग करते हैं।

5.11 शब्दावली

निस्यंदन – छानने का काम

अभिवाही – केंद्र पर पहुंचाने वाला

अपवाही – केंद्र से ले जाने वाला / केन्द्रत्यागी

पुनरावशोषण – पुनः अवशोषित करना

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (द) उपर्युक्त सभी
2. (द) उपर्युक्त सभी
3. (अ) 6.0
4. (स) 500 मिली. मूत्र
5. (अ) ब्रेन स्टीम एवं सेरिब्रल कॉर्ट्रेक्स

5.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रस्तोगी, डॉ. वीरबाला (2016), जैव रसायन तथा कार्यकी, केदारनाथ रामनाथ
2. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश (2008), मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन, आगरा
3. दीक्षित राजेश (2002), शरीर रचना क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
4. शर्मा, डॉ. ताराचन्द्र (1999), आयुर्वेदिक शरीर रचना विज्ञान, नाडा पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक
5. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009), एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, भाषा भवन, मथुरा

5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्सर्जन तंत्र की संरचना का विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए ?
2. वृक्क की संरचना का वर्णन करते हुए उत्सर्जन की क्रियाविधि का वर्णन कीजिए ?

इकाई 6 – श्वसन तंत्र – संरचना व कार्य इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 श्वसन तंत्र

6.4 श्वसन तंत्र की संरचना

6.4.1 नासिका एवं नासिका गुहा

6.4.2 ग्रसनी

6.4.3 स्वरयन्त्र

6.4.4 श्वासनली

6.4.5 फेफड़े

6.4.6 श्वसनिकाएँ

6.4.7 वायुकोष्ठक

6.4.8 डायफ्राम

6.5 श्वसन की क्रिया विधि

6.5.1 बाह्य श्वसन

6.5.2 गैसों का परिवहन

6.5.3 अन्तः श्वसन

6.5.4 श्वसन दर

6.6 श्वसन का नियन्त्रण

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों, पिछली इकाई में आपने जाना कि किस प्रकार वृक्क शरीर में व्याप्त अपशिष्ट को रूधिर से लेकर मूत्र के रूप में शरीर से बाहर कर देती है। उसी प्रकार प्रस्तुत इकाई में हम जानेंगे कि मानव शरीर को जैविक क्रियाओं के संचालन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है और यह ऊर्जा उसे ऑक्सीजन की उपस्थिति में भोजन के जैविक ऑक्सीकरण (oxidation) के फलस्वरूप प्राप्त होती है। यह क्रिया श्वसन कहलाती है। श्वसन एक जैव रासायनिक प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप ऊर्जा एवं कार्बनडाइऑक्साइड का निर्माण होता है। ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा ATP के रूप में संग्रहित कर लिया जाता है जबकि कार्बनडाइऑक्साइड को वातावरण में मुक्त कर दिया जाता है।

श्वसन प्रत्येक प्राणी की एक ऐसी महत्वपूर्ण क्रिया है जिसे वह प्रतिक्षण जीवन पर्यन्त निर्बाध रूप से करता है। श्वसन क्रिया का सामान्य अर्थ श्वास–प्रश्वास से लिया जाता है जो जीवन की उत्पत्ति से प्रारम्भ होकर जीवन पर्यन्त चलती है और इस क्रिया को स्थाई रूप से रुक जाना ही मृत्यु कहलाता है। मनुष्य में जन्म के साथ ही श्वसन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। बाल्यावस्था में विकास की दर तीव्र होने के कारण श्वसन दर तीव्र होती है। उम्र बढ़ने पर जैसे–जैसे विकास दर कम होती है। यह श्वसन दर भी स्थिर हो जाती है। प्रस्तुत इकाई में हम मनुष्य के श्वसन तंत्र में भाग लेने वाले अंगों की संरचना तथा श्वसन तंत्र की क्रिया विधि का अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- श्वसन तंत्र की संरचना का वर्णन कर सकेंगे।
- श्वसन तंत्र की क्रियाविधि का वर्णन कर सकेंगे।

6.3 श्वसन तंत्र

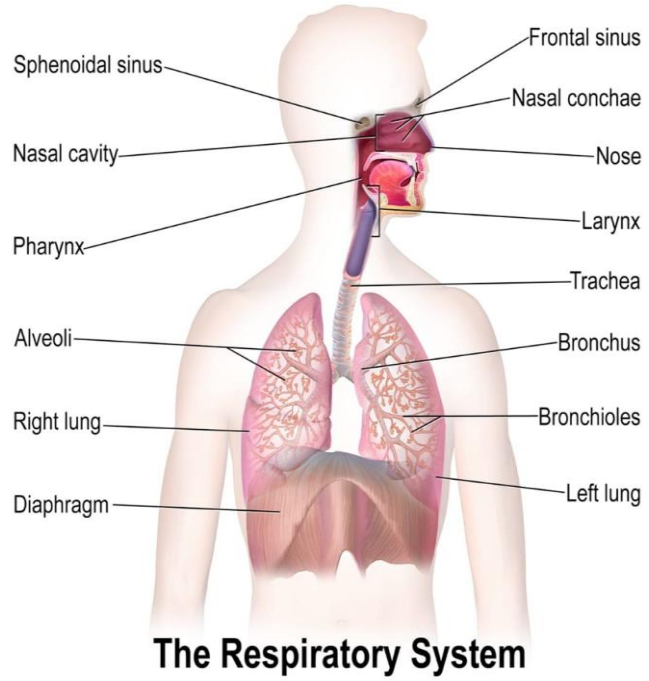

The Respiratory System

ऑक्सीजन भोज्य पदार्थो का ऑक्सीकरण कर ऊर्जा उत्पन्न करती है, तो भोज्य पदार्थों का ऑक्सीकरण कर ऊर्जा उत्पन्न होने की प्रक्रिया श्वसन कहलाती है। शरीर में स्थित वह तंत्र जो वायुमण्डल की ऑक्सीजन को श्वास (Inspiration) के रूप में ग्रहण कर शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं तक पहुँचाने का कार्य करता है तथा शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं में स्थित कार्बन डाईऑक्साइड को बाह्य वायुमण्डल में छोड़ने (Expiration) का महत्वपूर्ण कार्य करता है। श्वसन तंत्र कहलाता है। मानव श्वसन तंत्र की संरचना नासिका से प्रारम्भ होकर फेफड़ों तक फैली होती है। जो श्वसन की

महत्वपूर्ण क्रिया को सम्पादित करने का कार्य करती है। श्वसन उन भौतिक–रासायनिक क्रियाओं का सम्मिलित रूप में होता है जिसके अन्तर्गत बाह्य वायुमण्डल की ऑक्सीजन शरीर के अन्दर कोशिकाओं तक पहुंचती है और भोजन रस (ग्लूकोज) के सम्पर्क में आकर उसके ऑक्सीकरण द्वारा ऊर्जा मुक्त कराती है तथा उत्पन्न CO_2 को शरीर से बाहर निकालती है। कोशिकाओं में ऊर्जा–उत्पादन के लिएऑक्सीकरण निम्नीकरण या विघटन से सम्बन्धित, अभिक्रियाओं को सम्मिलित रूप से कोशिकीय श्वसन (Cellular respiration) भी कहते हैं।

6.4 श्वसन तंत्र की संरचना

हमारे प्रमुख श्वसनांग फेफड़े (Lungs) होते हैं जो हमारी वक्षगुहा में, कशेरूकदण्ड तथा पसलियों द्वारा बने एक कटहरे (cage) में सुरक्षित स्थित होती हैं। ऐसे श्वसन को फुफ्फुसीय श्वसन (Pulmonary Respiration) कहते हैं। मनुष्यों में बाहरी वायु तथा फेफड़ों के बीच वायु के आवागमन हेतु कई अंग होते हैं। ये अंग श्वसन अंग कहलाते हैं। ये अंग परस्पर मिलकर श्वसन तंत्र का निर्माण करते हैं। इन अंगों का वर्णन इस प्रकार है–

(क) नासिका एवं नासिका गुहा

(ख) ग्रसनी

(ग) स्वर यन्त्र

(घ) श्वास नली

(च) फेफड़े

(छ) श्वसनिकाएँ

(झ) डायफ्राम

(ज) वायुकोष्ठक

6.4.1. नासिका एवं नासिक गुहा

नासिका मानवीय श्वसन तंत्र का प्राथमिक अंग है। यह दो नासिका छिद्र (Nostril) में विभाजित होता है। नासिका में दो पृथक (दायाँ एवं बायाँ) नासामार्गो (nasal passages or nasal fossae) में खुलते हैं जिन्हें पृथक करने के लिए बीच में लम्बा एवं खड़ा नासापट्ट (nasal septum) होता है। नासापट्ट का नासाछिद्रों की ओर का अगला भाग उपास्थीय होता है, परन्तु शेष पिछले भाग में वोमर, एथमोइड, मैक्सिला तथा पैलेटाइन (vomer, ethmoid, maxillae and palatine)

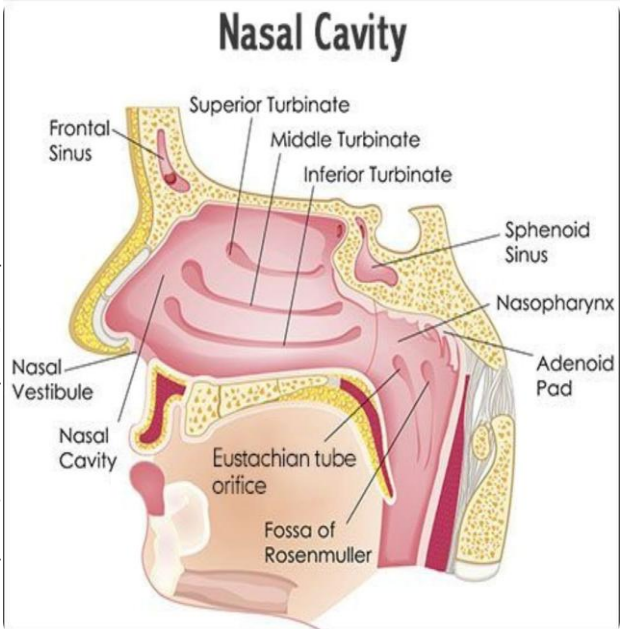

हड्डियों के भाग होते हैं। कठोर अर्थात द्वितीयक तालु (hard or secondary palate) हमारे नासामार्गों को मुखगुहिका से पृथक
करता है। इसी के कारण नासामार्ग काफी लम्बे होते हैं और इनके अन्तः नासाछिद्र अर्थात कोएनी (internal nares or choonae) काफी भीतर, कण्ठद्वार (glottis) के पास ही, ग्रसनी (pharynx) के नासाग्रसनीय (nasopharyngeal) भाग में खुलते हैं। मुखगुहिका (mouth cavity) से पृथक नासामार्ग बन जाने से ही हम लोग मुखगुहिका में भोजन रहते हुए भी सांस ले सकते हैं।

नासिका के अन्दर का भाग नासिका गुहा कहलाता है। इस नासिका गुहा में तीन वक्रीय पेशियाँ superior nosal concha, Middle Nasal Concha और inferior Nosal Concha पायी जाती है। क्रोध एवं उत्तेजनशीलता की अवस्था में ये पेशियाँ अधिक क्रियाशील होकर तेजी से श्वसन क्रिया में भाग लेती हैं।

इस नासिका गुहा में संवेदी नाड़ियाँ पायी जाती हैं जो गन्ध का ज्ञान कराती है। इसी स्थान (नासा मार्ग) के अधर और पार्श्व सतहों पर श्लेष्मक ग्रन्थियाँ (mucous glands) होती हैं जिनसे श्लेष्मा की उत्पत्ति होती है। नासिका गुहा के अग्र भाग में रोम केशों का एक जाल पाया जाता है।

नासिका एवं नासिकागुहा के कार्य

- टरबाइनल अस्थियाँ नासामार्गों को चक्करदार बनाकर इनकी भीतरी क्षेत्रफल को अत्यधिक बढ़ा देती हैं। इन लम्बे मार्गों से होकर गुजरते समय बाहरी वायु का ताप शरीर के ताप के बराबर हो जाता है।
- श्लेष्मक के कारण नासामार्ग नम एवं लसदार बने रहते हैं। अतः बाहरी हवा फेफड़ों तक पहुँचने से पहले ही नम हो जाती है।
- वायु के साथ आए हानिकारक जीवाणु (bacteria) एवं बीजाणु (spores), विषाणु (virus) तथा धूल एवं हानिकारक पदार्थों के कण आदि श्लेष्म में चिपकर प्रकोष्ठ के नासाबालों में फँसे रह जाते हैं।
- संवेदी नाड़ियों की उपस्थिति वायु की स्वच्छता का ज्ञान कराती है।

6.4.2 ग्रसनी (Pharynx)

ग्रसनी पाचन व श्वसन तंत्र दोनों के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण अंग है। ग्रसनी एक छिद्र (Glottis) के द्वारा श्वासनली में खुलती है। जब हम भोजन को निगलते हैं तो ग्लॉटिस एक उपास्थियुक्त कपाट (epiglottis) द्वारा ढँक जाता है। इससे खाते समय श्वसन मार्ग में अवरोध उत्पन्न नहीं होता। ग्रसनी से होते हुए वायु श्वास नली (wind pipe or Trachea) में पहुँचती है। यहाँ से वायु स्वरयंत्र (Larynx) में पहुँचती है।

6.4.3 स्वरयंत्र या कण्ठ (Larynx)

यह उपास्थि से बना हुआ 4 सेमी. का एक कक्ष होता है। इसका प्राथमिक कार्य भोजन व पेय पदार्थों को हवा से अलग करना है। इसके साथ–साथ ध्वनि का उत्पादन भी करता है। स्वरयन्त्र की दीवार में 9 उपास्थियों (cartilages) का अन्तःकंकाल होता है। ये उपास्थियाँ काफी चल (movable) होती हैं, क्योंकि ये एक–दूसरे से स्नायुओं (ligaments) द्वारा जुड़ी होती हैं और इनसे कुछ कंकाल पेशियाँ (skeletal muscles) भी लगी होती हैं। इसमें थायराइड और पैराथायराइड नामक अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ उपस्थित होती हैं। यह गले का उभरा हुआ स्थान होता है अन्दर इसी स्थान में संयोजी ऊतक से निर्मित वाक रज्जु या स्वर रज्जु (vocal card) पाये जाते हैं। श्वसन

द्वारा ली गई वायु से यहाँ उपस्थित स्वर रज्जुओं में कम्पन्न उत्पन्न होता है और ध्वनि उत्पन्न होती है। इसी अंग की सहायता से हम विभिन्न प्रकार की आवाज़ें उत्पन्न कर सकते हैं।

स्वर–यन्त्र की आन्तरिक संरचना तथा ध्वनि–उत्पादन

(Internal Structure of Sound Box and Sound Production)

स्वर–यन्त्र की गुहा को **कण्ठ–कोष** (laryngeal chamber) कहते हैं। इस पर श्लेष्मिका का आवरण होता है। इसमें भीतर लचीले स्नायुओं (ligaments) की दो जोड़ियाँ होती हैं जिन्हें वाक् या स्वर–रज्जु (vocal cords) थाइरॉइड उपास्थि को ऐरिटिनॉइड उपास्थि को ऐरिटिनॉइड उपास्थियों से जोड़ते हैं। प्रत्येक रज्जु महीन झिल्ली काभंज होता है जिसमें भीतर लचीले तन्तु ठसे रहते हैं। इनकी दोनों जोड़ियाँ ऊपर–नीचे स्थित होती हैं। ऊपरी जोड़ी के रज्जु मिथ्या स्वर–रज्जु (false vocal cords) तथा निचली के यथार्थ स्वर–रज्जु (true vocal cords) कहलाते हैं। दोनों जोड़ी स्वर–रज्जु, कण्ठ–कोष की श्लेष्मिका के ही भंजों (folds) के रूप में होते हैं। मिथ्या स्वर–रज्जु कुछ मोटे एवं गुलाबी से होते हैं तथा इनके तन्तु बहुत कम लचीले होते हैं। यथार्थ स्वर–रज्जु महीन एवं सफेद से होते हैं तथा इनके तन्तु अत्यधिक लचीले होते हैं। दोनों ओर के स्वर–रज्जुओं के बीच में दरारनुमा मार्ग होता है। यही मार्ग घाँटीद्वार या कण्ठद्वार (glottis) होता है। फेफड़ों से बाहर निकलते समय जब वायु यथार्थ स्वर–रज्जु ध्वनि–उत्पादन में भाग नहीं लेते लेकिन यथार्थ स्वर–रज्जुओं को सहारा देने और इन्हें नम बनाए रखने का काम करते हैं। इसके अतिरिक्त भोजन निगलते समय ये परम्पर सम्पर्क में आकर कण्ठद्वार को बन्द करने का काम करते हैं।

ध्वनि की तीव्रता (intensity of loudness) उच्छ्वास (expiration) में वायु की मात्रा एवं दाब तथा स्वर–रज्जुओं के कम्पन की प्रचुरता पर निर्भर करती है। ध्वनि का मोटी या महीन होना, अर्थात इसका स्वर–स्तर (pitch or acuteness) स्वर–रज्जुओं के किसी एक समय पर कम्पनों की संख्या पर निर्भर करता है। ग्रसनी, मुखगुहिका तथा नासामार्ग ध्वनि में गूंज अर्थात प्रतिध्वनि (resonance) उत्पन्न करने का काम करते हैं। बाल्यावस्था में बालक तथा बालिकाओं में स्वर–यन्त्र लगभग समान होता है। अतः स्वर–स्तर में विशेष अन्तर नहीं होता। यौवनारम्भ (puberty) के समय स्वर–यन्त्र का विकास लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में अधिक होता है। इसीलिए, लड़कों की आवाज भारी तथा लड़कियों की महीन रह जाती है।

केवल मनुष्य में अक्षरबद्ध ध्वनि–उच्चारण (phonation) की क्षमता होती है। यह मस्तिष्क में स्थित उन वाक्–केन्द्रों (speech centres) पर निर्भर करती है जो जिह्य, होंठों, तालु तथा निचले जबड़ों की पेशीय गतियों का नियन्त्रण करते हैं।

6.4.4 श्वास नली (Trachea) एवं श्वसनियाँ (Bronchi)

श्वासनाल (trachea) कण्ठ से जुड़ी, महीन दीवार की अर्धपारदर्शक–सी लगभग 12 सेमी. लम्बी और 2.5 सेमी0 चौड़ी नलिका होती है जो ग्रासनली (oesophagus) की अगली सतह से चिपकी, ग्रीवा में होती हुई, वक्ष भाग में पहुँचकर, दाएँ–बाएँ दो छोटी शाखाओं में बँट जाती है। इन शाखाओं को प्राथमिक श्वसनियाँ या ब्रॉन्काई (primary bronchi) कहते हैं। दोनों ब्रॉन्काई अपनी–अपनी ओर के फेफड़ें में घुस जाती हैं।

श्वासनाल की दीवार में, अधःश्लेष्मिका और बाह्य खोल के बीच तन्तुमय संयोजी ऊतक तथा अरेखित पेशी तन्तुओं द्वारा परस्पर जुड़े और थोड़ी–थोड़ी दूर पर स्थित 15 से 20 उपास्थीय छल्ले होते हैं। ये (C) की आकृति के होते हैं। ये श्वासनाल एवं श्वसनियों को पिचकने से रोकते हैं ताकि इनमें वायु स्वतंत्रतापूर्वक आ–जा सके। इसके अन्दर प्राप्त श्लेष्म ग्रन्थियाँ तरल श्लेष्म का स्रावण करती हैं जो श्वासनली की दीवार के भीतरी स्तर को नम एवं लसदार बनाती है। यह वायु के साथ आए उन महीन धूल कणों एवं हानिकारक जीवाणुओं को, जो नासिका के बालों एवं श्लेष्म में फँसने से बच जाते हैं, अपने में फँसाकर फेफड़ों तक पहुँचने से रोकता है। दूषित श्लेष्म को कफ या बलगम (sputum or phlegum) कहे हैं।

6.4.5 फेफड़े (Lungs)

वक्षगुहा में दोनों ओर (दाएँ और बाएँ) एक–एक स्पंजी, गुलाबी व लगभग शंक्वाकार रूप में फेफड़े पाए जाते हें। फेफड़ा युग्मित अंग है, जो फुफ्फुस अवारणी गुहा (Tharacic Cavity) में स्थित होता है। फेफड़ा एक द्विस्तरीय फुफ्फुसावरणी झिल्ली द्वारा सुरक्षित होता है जिसे फुफ्फुस झिल्ली (pleural membrane) कहते हैं। फेफड़ों और फुफ्फुस (pleural) के मध्य म्यूकस जैसा चिकना पदार्थ पाया जाता है, जो फेफड़े के फैलने और सिकुड़ने में उत्पन्न होने वाले घर्षण को कम करने का कार्य

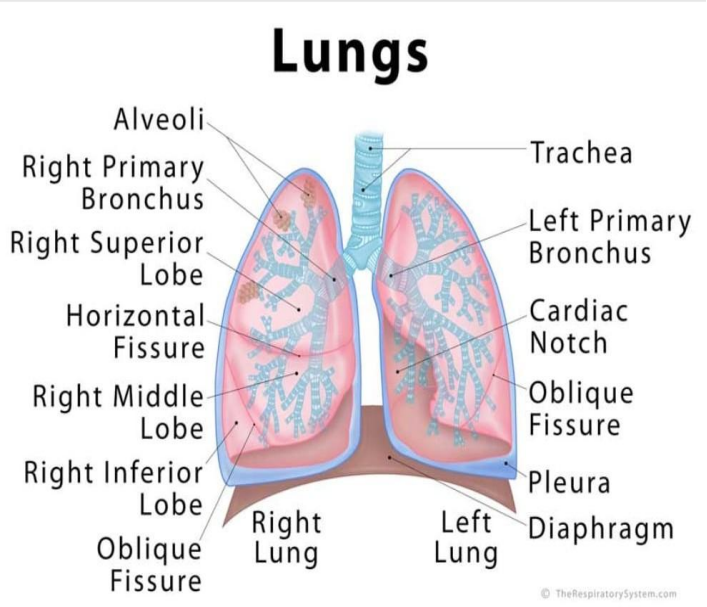

Lungs

करता है।

हमारा दाहिना फेफड़ा, बाएँ फेफड़े से कुछ बड़ा और चौड़ा, परन्तु लम्बाई में कुछ छोटा होता है। दोनों फेफड़ों का चौड़ा भाग अवतल (concave) होता है। यह तन्तुपट (diaphragm) के अपनी ओर के उभरे अर्थात उत्तल (convex) भाग पर फुफ्फुसावरणी अर्थात् प्लयूरल गुहा द्वारा चिपका रहता है। इसे फेफड़े का आधार (base) कहते हैं ऊपरी, अर्थात् हँसली की हड्डी (clavicle bone) के निकट के शंक्वाकार छोर को शीर्ष (apex) कहते हैं। बायाँ फेफड़ा एक तिरछी खाँच (fissure) द्वारा बड़े उच्च पिण्ड (superior lobe) तथा छोटे पिण्ड (inferior lobe) में विभेदित होता है। दायाँ फेफड़ा दो तिरछी खाँचों द्वारा, उच्च (superior), मध्य (middle) तथा निम्न (inferior) पिण्डों (lobes) में विभेदित होता है।

प्रत्येक फेफड़े में जाने वाली प्राथमिक श्वसनी (primary bronchus) मध्यावकाश (mediastinum) की ओर वाली सतह से फेफड़े में घुसती है। फेफड़े में इसके प्रवेश स्थान को नाभिका (hilus) कहते हैं। फेफड़े में आने–जाने वाली रूधिरवाहिनियों, लसिकावाहिनियों तथा तन्त्रिकाओं के मार्ग भी नाभिका में ही स्थित होते हैं।

6.4.6 श्वसनिकाएँ (bronchioles)

दाहिने फेफड़े की प्राथमिक श्वसनी इसमें घुसकर इसके तीन पिण्डों में जाने वाली तीन पिण्डकीय या द्वितीयक श्वसनियों (lobar or secondary bronchi) में विभक्त हो जाती हैं। इसी प्रकार, बाएँ फेफड़े की प्राथमिक श्वसनी इसमें घुसकर इसके दो पिण्डों में जाने वाली दो द्वितीयक श्वसनियों में बँट जाती है। संयोजी ऊतक की महीन पट्टियाँ (partitions) प्रत्येक फेफड़े के सम्पूर्ण भीतरी ऊतक, अर्थात् पैरेन्काइमा (parenchyma) को इस फुफ्फुसश्वसनी खण्डों (bronchopulmonary segments) में तथा प्रत्येक ऐसे खण्ड को बहुत से पिण्डकों (lobules) में बाँटती हैं। इन पट्टियों को रज्जु (trabeculac) कहते हैं। इनके ऊतक में लचीले तन्तु, अरेखित पेशी तन्तु तथा लसिकावाहिनियाँ होती हैं श्वसनियाँ, रूधिर वाहिनियाँ तथा तन्त्रिकाएँ भी यकृत के ऊतक में इन्हीं रज्जुओं के अनुसार शाखान्वित होती जाती हैं और ये शाखाएँ रज्जुओं के साथ–साथ फैली होती हैं। तदनुसार प्रत्येक फेफड़े में द्वितीयक श्वसनियाँ दस–दस खण्डीय या तृतीयक श्वसनियों (segmental or tertiary bronchi) में विभक्त होती हैं। इसके बाद, द्विभागी शाखान्वयन (dichotomous branching) द्वारा प्रत्येक खण्डीय श्वसनी अनेक बार अन्तःफुफ्फुसीय श्वसनियों (intrapulmonary bronchi) में बँटती है। ये श्वसनियाँ छोटी एवं महीन होती है, परन्तु इनमें उपास्थीय छल्ले होते हैं। प्रत्येक अन्तःफुफ्फुसीय श्वसनी की अन्तिम शाखा को छोर श्वसनी (terminal bronchus) कहते हैं। यह अब छल्लेविहीन शाखाओं में बँटती है जिन्हें श्वसनिकाएँ (bronchioles) कहते हैं। प्रत्येक श्वसनिका के भी अनेक बार क्रमिक विभाजन होते हैं और इनके फलस्वरूप बनी अन्तिम शाखाओं

को पिण्डकीय श्वसनिकाएँ (lobular bronchioles) कहते हैं, क्योंकि ऐसी प्रत्येक शाखा किसी एक पिण्डक (lobule) में जाती है। यहाँ यह छः छोर श्वसनिकाओं (terminal bronchioles) में बँटती है।

6.4.7 वायुकोष्ठक (alveoli)

प्रत्येक छोर श्वसनिका भी कई श्वसन श्वसनिकाओं (respiratory bronchioles) में बँटती है प्रत्येक श्वसन श्वसनिका दो से ग्यारह, महीन दीवार की, कूपिका नलिकाओं (alveolar ducts) में बँटती है। प्रत्येक कूपिका नलिका अपने छोर पर वायुकोष्ठकों (alveoli) के एक गोल से समूह में घुस जाती है। इस समूह में कई छोटे–छोटे वायुकोष (air or alveolar sacs) होते हैं। कूपिका नलिका की छोटी–छोटी शाखाएँ पृथक वायुकोषों से जुड़ती हैं। प्रत्येक वायुकोष में दो या तीन छोटे–छोटे थैलीनुमा वायुकोष्ठक (alveoli) होते हैं।

हमारे प्रत्येक फेफड़े में लगभग 15 करोड़ वायुकोष्ठक (alveoli) होते हैं। इन तक पहुँचने के लिए प्राथमिक श्वसनी से लेकर वायुनलियों का 24–25 बार शाखान्वयन (branching) होता है। अतः फेफड़े में मोटी–पतली वायुनलियों की एक जटिल वृक्ष–सदृश रचना बनी होती है। इसी को श्वसनीय वृक्ष (bronchial tree) कहते हैं।

कार्यिकी के आधार पर श्वसनीय वृक्ष को दो भागों में बाँटा जा सकता है– वायु–संचालन क्षेत्र (air conducting zone) तथा श्वसन क्षेत्र (respiratory zone)। श्वासनाल (trachea) से लेकर छोर श्वसनिकाओं (terminal bronchioles) तक का भाग वायु–संचालन क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र में लगभग 16 बार क्रमिक शाखान्वयन होता है। इसका कार्य केवल वायु के आवागमन के मार्ग के रूप में होता है। इसकी वायुनलियों की दीवार के भीतरी, एपिथीलियमी स्तर पर फैला श्लेष्म वायु से प्रदूषण कणों को हटाने का काम करता है।

छोर श्वसनिकाओं के बाद, वायुकोष्ठकों तक का सारा वायुमार्ग श्वसन क्षेत्र कहलाता है। इस भाग में लगभग 7-8 बार क्रमिक शाखान्वयन होता है। इस भाग की सभी वायुनलियों से छितरे हुए एकाकी वायुकोष्ठक (alveoli) जुड़े होते हैं, और अन्तिम शाखाएँ–कूपिका नलिकाएँ (alveolar ducts)– वायुकोष्ठकों में समाप्त होती हैं। इस क्षेत्र को श्वसन क्षेत्र इसलिए कहते हैं कि प्रत्येक वायुकोष्ठक में साँस की वायु तथा रूधिर के बीच गैसीय विनिमय (gaseous exchange) होता है।

6.4.8 डायफ्राम (Diaphragm)

वक्षीय गुहा का निचला भाग एक पतले पट्ट द्वारा बंद रहता है, जिसे डायफ्राम कहते हैं। यह वक्ष और उदर के बीच स्थित एक गुम्बदाकार संरचना है जो देहगुहा को अग्र वक्ष गुहा एवं पश्च उदर गुहा में विभाजित करता है। उच्छवास (Exhalation) के दौरान यह संकुचित हो जाता है।

6.5 श्वसन की क्रिया विधि (Mechanism of Respiration)

वायुमण्डल से ऑक्सीजन का अन्तर्ग्रहण (Ingestion) श्वसन तंत्र द्वारा किया जाता है। श्वसन क्रिया के

माध्यम से शरीर की प्रत्येक कोशिका ऑक्सीजन प्राप्त करती है एवं उसके ऑक्सीकरण द्वारा ऊर्जा तथा कार्बन डाइऑक्साइड मुक्त होती है। श्वसन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को निम्नलिखित चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) बाह्य श्वसन

(ii) गैसों का परिवहन

(iii) अन्तः श्वसन

6.5.1 बाह्य श्वसन या फुफ्फुस श्वसन (External Respiration or Pulmonary Respiration)

जीवों एवं वातावरण के बीच में श्वसन गैसों जैसे ऑक्सीजन (O_2) एवं कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) का आदान–प्रदान को बाह्य श्वसन कहते हैं अर्थात् ऑक्सीजन का शरीर में आना और कार्बन डाईऑक्साइड का शरीर से बाहर जाना बाह्य श्वसन कहलाता है। बाह्य श्वसन क्रिया के फुफ्फुस (lungs) में पूर्ण होने के कारण इसे फुफ्फुस श्वसन (Pulmonary Respiration) एवं ऑक्सीजन व कार्बन डाइऑक्साइड के आदान–प्रदान (Exchange) के कारण गैसीय विनिमय (Gaseous Exchange) कहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि ऑक्सीजन की कुछ मात्रा शरीर द्वारा अवशोषित कर ली जाती है तथा शरीर में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड की कुछ मात्रा श्वसन के द्वारा बाहर निकाल दी जाती है।

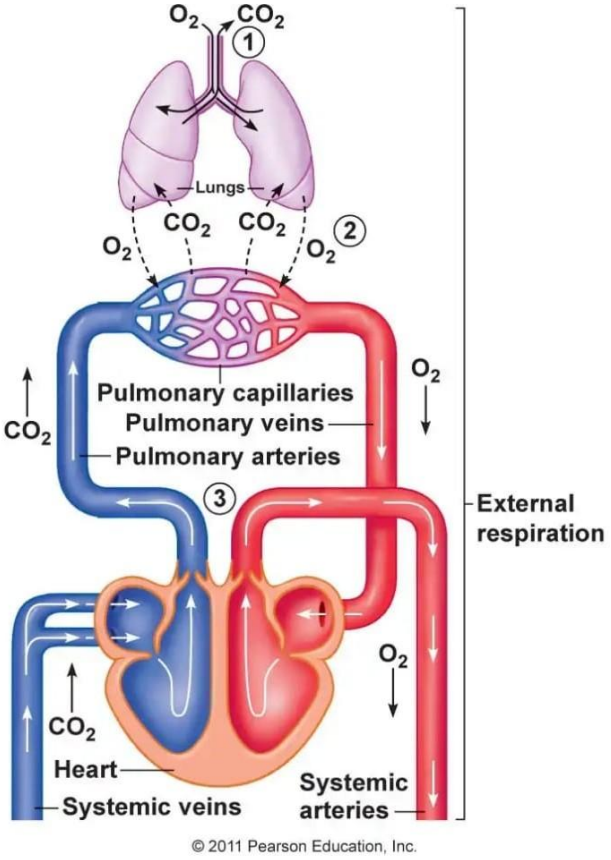

Anatomy of Respiration

(क) श्वासोच्छ्वास (Breathing)

वायु को श्वसन–मार्ग द्वारा शरीर के अंदर लेने व वापस बाहर छोड़ने की क्रिया को श्वासोच्छ्वास या श्वसन क्रिया (Breathing) कहते हैं। यह श्वसन का प्रथम चरण होता है। यह क्रिया दो अवस्था में पूर्ण होती है–

(i) निःश्वसन (Inspiration)

श्वासोच्छ्वास (Breathing) के समय वातावरण से वायु का शरीर के अन्दर फेफड़ों में पहुँचने की क्रिया निःश्वसन

कहलाती है। मनुष्य द्वारा ली गयी सांस की हवा में 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 20 प्रतिशत ऑक्सीजन, 0.03 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड तथा 0.5 प्रतिशत जल वाष्प होती है। बाहर से आयी हुई वायु तथा फेफड़ों के वायुकोष्ठकों (Alveoli) के बीच ऑक्सीजन (O_2) एवं कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) का आदान–प्रदान विसरण (Diffusion) कहलाता है।

(ii) उच्छ्वसन (Expiration)

निःश्वसन के पश्चात् CO_2 युक्त वायु का अंगों से बाहर वातावरण में निकलना उच्छ्वसन (Expiration) कहलाता है। मनुष्य द्वारा छोड़ी गयी सांस की हवा में 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 16 प्रतिशत ऑक्सीजन, 4 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड तथा 6.5 प्रतिशत जल वाष्प होती है। श्वसन क्रिया में वायु में नाइट्रोजन की मात्रा में कोई भी परिवर्तन नहीं होता है। फेफड़े में जो ऑक्सीजन और कार्बन डाईऑक्साइड गैसों का आदान–प्रदान होता है वह उन गैसों के दाब के अन्तर के कारण होता है।

एक सामान्य वयस्क व्यक्ति प्रति मिनट लगभग 7–8 लीटर वायु लेता और छोड़ता है अर्थात लगभग 11,000 लीटर वायु प्रतिदन। ग्रहण की गई वायु लगभग 20 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है तथा बाहर छोड़ी गई वायु में 15 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। इस प्रकार, लगभग 5 प्रतिशत ऑक्सीजन मानव शरीर द्वारा ग्रहण कर ली जाती है। ऑक्सीजन की यह मात्रा लगभग 550 लीटर प्रतिदिन के बराबर है।

(iii) उदरीय श्वासोच्छ्वास (Abdominal Breathing) : सामान्य, शान्त श्वासोच्छ्वास मुख्यतः तन्तुपट अर्थात डायफ्राम की गतियों द्वारा संचालित होता है। अन्तःश्वास में जब तन्तुपट अर्थात डायफ्राम थोड़ा सिकुड़कर चपटा–सा होता है तो उदरांगों पर इसका दबाव पड़ता है। फलतः उदरांग उदरीय भित्ति पर दबाव डालते हैं जिससे उदर फूलता है। फिर उच्छ्वास में उदर वापस सामान्य हो जाता है। अब क्योंकि सामान्य शान्त श्वासोच्छ्वास में वक्ष भाग नाममात्र को ही फूलता–पिचकता है, परन्तु उदरीय गतियाँ अधिक स्पष्ट होती है, इसे उदरीय श्वासोच्छ्वास भी कहते हैं।

(iv) गहरी, चेष्ट श्वासोच्छ्वास (Deep, Heavy or Forced Breathing):घबराहट, थकावट या व्यायाम के समय हम जान–बूझकर गहरी श्वास ले सकते हैं। अतः गहरी श्वास ऐच्छिक (voluntary) होती है। इसकी अन्तःश्वास के समय तन्तुपट अर्थात डायफ्राम का संकुचन चार–पाँच गुना अधिक होता है और बाह्य अन्तरापर्शुक पेशियों का संकुचन भी पूरा होता है। फलतः वक्ष भाग का आयतन सामान्य श्वास की तुलना में 15 से 20% अधिक बढ़ता है। स्पष्ट है कि गहरी अन्तःश्वास में सामान्य अन्तःश्वास की अपेक्षा काफी अधिक वायु फेफड़ों में भरती है और वक्षीय गति उदरीय गति से अधिक स्पष्ट हो जाती है। ऐसी श्वास को इसलिए वक्षीय श्वासोच्छ्वास (thoracic breathing) कहते हैं।

गहरी श्वासोच्छ्वास की उच्छ्वास बहुत निश्चेष्ट नहीं होती। इसमें अन्तःअन्तरापर्शुक पेशियों तथा कुछ उदरीय पेशियों में अत्यधिक संकुचन होता है जिससे पसलियाँ तथा उरोस्थि

(sternum) नीचे और पीछे (पृष्ठतल) की ओर खिंचकर वक्षीय कटहरे के आयतन को काफी कम कर देती हैं। इससे फेफड़ों पर अधिक दबाव पड़ता है। साथ ही उदरीय पेशियों के संकुचन के कारण उदरांगों का दबाव तन्तुपट अर्थात् डायफ्राम पर भी पड़ता है जिससे तन्तुपट वक्ष की ओर काफी उभरकर फेफड़ों को नीचे से दबाता है। इस सबके फलस्वरूप फेफड़ों से, सामान्य से काफी अधिक वायु निकल जाती है।

(ख) गैसों का विनिमय (Exchange of Gases)

श्वासोच्छ्वास (Breathing) की प्रक्रिया में अंदर ली गयी वायु फेफड़ों के वायुकोष्ठकों (Alveoli) में पहुँचती है। वायुकोष्ठकों के चारों ओर सूक्ष्म रक्त कोशिकाओं (Blood Capillaries) का एक सघन जाल फैला होता है वायुकोष्ठकों में उपस्थित वायु में आक्सीजन (O_2) का दबाव अधिक होने के कारण यह ऑक्सीजन शिराओं (Veins) द्वारा रक्त में पहुँच जाती है तथा शिराओं में उपस्थित अशुद्ध रक्त (Deoxy genated Blood) में मिली हुई CO_2 वायुकोष्ठकों की वायु में मिल जाती है। यह गैसीय विनिमय घुली अवस्था में अथवा विसरण प्रवणता (Diffusion Gradient) के आधार पर साधारण विसरण द्वारा होता है। फेफड़े में ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड गैसों का विनिमय उनके दाब में अन्तर के कारण होता है।

कूपिका वायु या वायुकोशीय वायु (Alveolar Air) में विनिमय दाब के अन्तर के कारण ऑक्सीजन शिरा कोशिका (Vein Capillary) की ओर एवं कार्बन डाइऑक्साइड वायुकोष्ठकों (Alveoli) के विसरण की दिशा एक–दूसरे के विपरीत होती है।

गैसों का विनिमय ऊतकों (Tissues) के मध्य से भी होता है। ऊतकों में सक्रिय उपापचय (Active Metabolism) से कोशिकाओं में कार्बन डाइऑक्साइड एवं ऑक्सीजन की मात्रा क्रमशः अधिकतम (Maximum) तथा निम्नतम (Minimum) होती है। इसके फलस्वरूप CO_2 कोशिकाओं से रूधिर में तथा ऑक्सीजन रूधिर से ऊतक की ओर होती है। मानव शरीर में ऑक्सीजन का परिवहन क्रमशः फेफड़ों, रक्त एवं ऊतकों के माध्यम से होता है। जो विसरण के सिद्धान्त पर कार्य करता है।

6.5.2 गैसों का परिवहन (Transportation of Gases)

वायु श्वसन के दौरान जो भी गैसें हमने हमारे शरीर में ली हैं वो गैसें हमारे शरीर की कोशिकाओं तक कैसे पहुंचती हैं और वापस फेफड़ों तक कैसे आती है ये हम गैसों के परिवहन वाले भाग में जानेगें। ऑक्सीजन का परिवहन रक्त के माध्यम से फेफड़े सें कोशिकाओं या ऊतकों तक तथा कार्बन डाइऑक्साइड का कोशिकाओं से फेफड़े तक निरंतर पहुँचते रहना ही गैसीय परिवहन कहलाता है।

(i) ऑक्सीजन का परिवहन (Transportation of Oxygen)

ऑक्सीजन का परिवहन मार्ग

नासारन्ध्र→ग्रसनी→स्वर यंत्र→श्वासनली→श्वसनी→श्वसनिकायें→वायुकोष्ठक→रूधिर कोशिका

मनुष्य के शरीर में सामान्यतः 98.5% ऑक्सीजन का परिवहन लाल रूधिर कणिकाओं (RBCs) में पाये जाने वाले हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) द्वारा किया जाता है तथा शेष 1.5% ऑक्सीजन का परिवहन रूधिर प्लाज्मा (Blood Plasma) द्वारा किया जाता है। हीमोग्लोबिन (Hb) एक प्रकार का प्रोटीन है जो रक्त में पाया जाता है इसके केन्द्र में लौह परमाणु की उपस्थित होती है।

हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन के साथ मिलकर एक अस्थायी यौगिक ऑक्सीहीमोग्लोबिन (Oxyhaemoglobin) का निर्माण करता है।

$$O_2 \quad + \quad Hb \quad \rightarrow \quad HbO_2$$

(ऑक्सीजन) (हीमोग्लोबिन) (ऑक्सीहीमोग्लोबिन)

रूधिर परिवहन की प्रक्रिया में ऑक्सीहीमोग्लोबिन (HbO_2) विभिन्न कोशिकाओं में पहुँचता है। कोशिकाओं में उपस्थित ऑक्सीजन के कम दाब के परिणामस्वरूप ऑक्सीहीमोग्लोबिन, ऑक्सीजन एवं हीमोग्लोबिन के रूप में टूट जाता है। इससे जो ऑक्सीजन मुक्त होती है वह ऊतकों में पहुँच जाती है। एक स्वस्थ मनुष्य के रक्त में हीमोग्लोबिन (Hb) की औसत मात्रा 15 ग्राम प्रति से 100 मिली होती है। हीमोग्लोबिन (Hb) का रंग बैंगनी (Violet) होता है। जबकि ऑक्सीहीमोग्लोबिन (HbO_2) युक्त शुद्ध रक्त चमकदार लाल व अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का होता है। ऊतकों में दूषित रक्त होने पर इसकी मात्रा बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में ऑक्सीहीमोग्लोबिन शीघ्रता से ऑक्सीजन व हीमोग्लोबिन में टूट जाता है और ऊतकों को ऑक्सीजन उपलब्ध कराता है।

(ii) कार्बन डाइऑक्साइड का परिवहन (Transportation of Carbon dioxide)

ऑक्सीजन की तुलना में कार्बन डाइऑक्साइड जल में अधिक विलेय (Soluble) होता है। इसलिए कार्बन डाइऑक्साइड का परिवहन ऑक्सीजन की तुलना में सरल होता है।

कार्बन डाईऑक्साइड का परिवहन-

हीमोग्लोबिन के माध्यम से

प्लाज्मा में घुलकर

बाईकार्बोनेट्स के रूप में

कार्बोमिनो यौगिको के रूप में

a. हीमोग्लोबिन के माध्यम से –

कोशिकाओं से फेफड़ों तक कार्बन डाइऑक्साइड का परिवहन हीमोग्लोबिन के द्वारा लगभग 10-20% तक ही संभव होता है। इसलिए CO_2 का परिवहन रक्त परिसंचरण (Blood Circulation) में अन्य प्रकार से भी होता है।

b. प्लाज्मा में घुलकर –

रक्त प्लाज्मा में कार्बन डाइऑक्साइड के घुलने पर कार्बोनिक अम्ल (Carbonic Acid, H_2CO_3) का निर्माण होता है। जिससे शरीर में कार्बोनिक अम्ल के रूप में 7% कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) का परिवहन होता है।

c. बाईकार्बोनेट्स के रूप में –

कार्बन डाईऑक्साइड के लगभग 70 प्रतिशत भाग का संवहन बाई–कार्बोनेट्स के रूप में होता है। जब बाइकार्बोनेट प्लाज्मा के सोडियम (Na) से एवं रक्त में उपस्थित पोटैशियम (K) से अभिक्रिया करते हैं तब क्रमशः सोडियम बाइकार्बोनेट ($NaHCO_3$) एवं पोटैशियम बाइकार्बोनेट ($KHCO_3$) का निर्माण होता है।

d. कार्बामिनो के रूप में –

कार्बामिनो यौगिकों के रूप में CO_2 का परिवहन लगभग 23% तक होता है। CO_2 हीमोग्लोबिन के अमीनो समूह (-NH_2) से संयोग करके कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन (Carboxy Haemoglobin) तथा प्लाज्मा प्रोटीन से संयोग करके कार्बामिनो यौगिक का निर्माण करते हैं।

6.5.3 अन्तः श्वसन (Internal Respiration)

श्वसन की प्रक्रिया हर जीवित कोशिका के कोशिका द्रव्य (साइटोप्लाज्म) और माइटोकॉण्ड्रिया में पूरी होती है। यह प्रक्रिया कोशिका के जीवद्रव्य में सम्पन्न होती है अतः आन्तरिक श्वसन को कोशिकीय श्वसन (Cellular Respiration) भी कहा जाता है। इस प्रक्रिया के शुरू होने से पहले तक ऑक्सीजन कोशिकाओं तक पहुंच चुकी होती है। अन्तःश्वसन में भोज्य पदार्थ अर्थात् कार्बोहाइड्रेट का ऑक्सीकरण होता है। जैसे वाह्य श्वसन में गैसों का आदान प्रदान फेफड़ों में होता है वैसे ही आन्तरिक श्वसन में गैसों का आदान प्रदान कोशिकाओं में होता है इसलिए इसे कोशिकीय श्वसन भी कहते हैं। कोशिकीय श्वसन दो प्रकार का होता है 1. अनॉक्सी–श्वसन, 2. ऑक्सी–श्वसन।

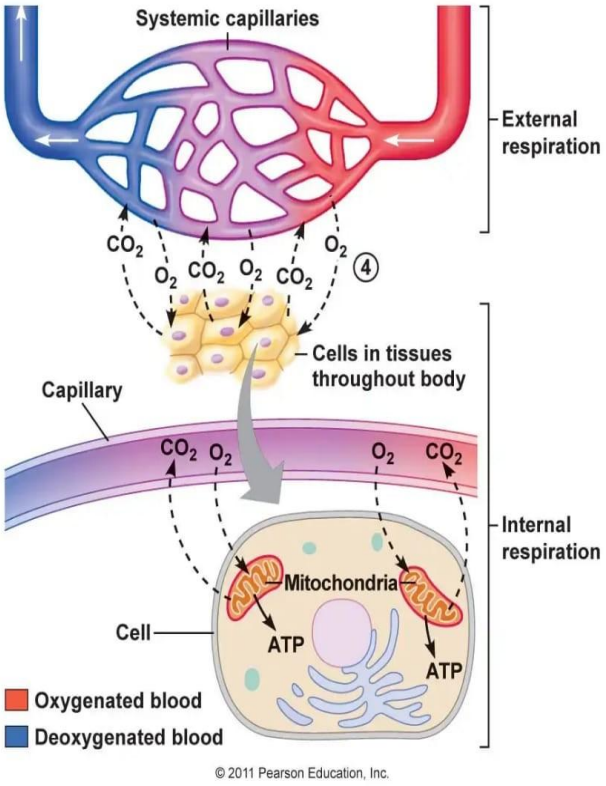

(i) अवायुवीय या अनॉक्सी–श्वसन (Anaerobic Respiration) :

जो श्वसन ऑक्सीजन की अनुपस्थित में होता है उसे अनॉक्सी–श्वसन कहते हैं। इसमें ग्लूकोज को आंशिक विघटन कोशिका के साइटोप्लाज्म (कोशिका द्रव्य) में पूरा होता है। इस पूरी अनॉक्सी श्वसन के

परिसणामस्वरूप हमें पाइरूविक अंम्ल और 2ATP ऊर्जा प्राप्त होती है।

$C_6H_{12}O_6 \rightarrow$ पाइरूविक अम्ल + 2ATP ऊर्जा

यह सम्पूर्ण क्रिया ग्लाइकोलिसिस (Glycolysis) कहलाती है। इसमें कुछ कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) अवश्य बनती है। रासायनिक स्तर पर इसे शर्करा का किण्वन (sugar fermentation) कह सकते हैं।

(ii) वायुवीय या ऑक्सी–श्वसन (Aerobic Respiration) :

जब श्वसन ऑक्सीजन की उपस्थिति में पूरा होता है तो इसे ऑक्सी श्वसन या वायुवीय श्वसन कहते हैं। इसमें ऑक्सीजन की उपस्थित में ग्लूकोज के अणु का पूर्ण विघटन होता है। चूंकि अनॉक्सी श्वसन में ऑक्सीजन की उपस्थित नहीं होती है तो जो प्रक्रिया होती है वो ग्लाइकोलिसिस तक ही पूर्ण होती है। लेकिन अब ऑक्सी श्वसन में ऑक्सीजन उपस्थित होती है तो प्रक्रिया आगे बढ़ती है।

ऑक्सी श्वसन कोशिका के माइटोकॉण्ड्रिया में विशेष एन्जाइम की उपस्थित में पूरी होती है। ग्लाइकोलिसिस से प्राप्त पाइरूविक अम्ल को माइटोकॉण्ड्रिया में पूर्ण ऑक्सीकरण होता है जिसका अन्तिम उत्पाद कार्बन डाइऑक्साइड, जल और ऊर्जा प्राप्त होता है।

$$C_6H_{12}O_6 + O_2 \rightarrow CO_2 + H_2O + 36\,ATP \text{ ऊर्जा}$$

कार्बन डाईऑक्साइड फेफड़े से होते हुए शरीर से बाहर निकल जाती है और जो मुख्य ऊर्जा ATP के रूप में संचित हो जाती है। इस तरह से कुल 36 ATP ऊर्जा ऑक्सी श्वसन के दौरान प्राप्त होती है। इस प्रकार पूरी कोशिकीय श्वसन (आन्तरिक श्वसन) में एक ग्लूकोज के पूर्ण ऑक्सीकरण पर कुल 2+36 = 38 ATP ऊर्जा प्राप्त होती है। ऑक्सी श्वसन की प्रक्रिया को ही क्रेब्स चक्र कहते हैं।

रूधिर परिसंचरण की क्रिया द्वारा जब ऑक्सीहीमोग्लोबिन कोशिकाओं में पहुँचता है तब ऑक्सीजन के आंशिक दबाव की स्थित में यह ऑक्सीजन एवं हीमोग्लोबिन में विखण्डित हो जाता है, जो ऊतकों तक लगभग 25% ऑक्सीजन को पहुँचा देता है।

6.5.4 श्वसन–दर (The rate of respiration)

सामान्य श्वसन में प्रश्वसन (Inspiration) के तुरन्त बाद निःश्वसन (Expiration) होता है, जिसके पश्चात् पुनः प्रश्वसन होने से पूर्व तक कुछ क्षणों के लिए विराम हो जाता है जिसे विराम काल (Pause) कहते हैं। इस प्रकार प्रश्वसन, निःश्वसन तथा विराम काल, तीनों के द्वारा श्वसन का एक चक्र (Cycle) बनता है। एक मिनट में जितने श्वसन–चक्र सम्पन्न हो जाते हैं, वह श्वसन–दर कहलाती है।

वयस्क व्यक्तियों में विश्राम के समय श्वसन–दर एक मिनट में 12 से 15 बार होती है। छोटे बच्चों की श्वसन–दर प्रति मिनट 25 से 40 बार होती है। स्त्रियों में पुरूषों की अपेक्षा श्वसन–दर कुछ अधिक होती है। अधिक परिश्रम, भाग दौड़ आदि के समय श्वसन–दर बढ़ जाती है।

सामान्यतः श्वसन–क्रिया की दर, शरीर की ऑक्सीजन सम्बन्धी आवश्यकता के अनुसारा घटती–बढ़ती रहती है। शारीरिक श्रम के समय श्वसन–दर के बढ़ने का यही कारण है, क्योंकि इस समय ऊतकों एवं कोषों को अधिक ऊर्जा के लिए अधिक मात्रा में ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। ऑक्सीजन की आवश्यकता घटने पर, जैसा कि विश्राम की अवस्था में होता है, यह दर पुनः सामान्य हो जाती है।

6.6 श्वसन का नियन्त्रण (Control of respiration)-

श्वसन का नियन्त्रण दो तरह से होता है– 1. तंत्रिकीय नियन्त्रण 2. रसायनिक नियन्त्रण

1. तंत्रिकीय नियन्त्रण – इसमें तीन श्वसन नियन्त्रण केन्द्र भाग लेते हैं इन केन्द्रों को Rhythimicity Center कहते हैं जिसमें पहला है प्रश्वसनीय केन्द्र (Inspiratory center), दूसरा निःश्वसनीय केन्द (Expiratory center), और तीसरा है न्यूमोटेक्सिक केन्द्र (Pneumotoxic center)। प्रश्वसनीय केन्द्र निःश्वसनीय केन्द्र मतिष्क के मेडुला ऑब्लांगेटा (Medulla oblogata) भाग में स्थित होता है तथा न्यूमोटेक्सिक केन्द्र मस्तिष्क के पोन्स (pons) क्षेत्र में स्थित होता है। अर्थात हमारा श्वसन तंत्र मस्तिष्क के मेडुला ऑब्लंगेटा और पोन्स में स्थित श्वसन केन्द्र द्वारा नियमित और नियन्त्रित रहता है।

(a) – प्रश्वसनीय क्षेत्र दो अवस्था में होता है एक होता है सक्रिय अवस्था और दूसरा होता है निष्क्रिय अवस्था। सक्रिय अवस्था में प्रश्वसनीय क्षेत्र दो सेकेण्ड के लिये तथा निष्क्रिय अवस्था में तीन सेकेण्ड के लिये होता है। जब यह सक्रिय अवस्था में होता है तब डायफ्राम और बाह्य इण्टरकोस्टल पेशियां संकुचन करती हैं। निष्क्रिय अवस्था में डायफ्राम और बाह्य इण्टरकोस्टल पेशियां आराम की अवस्था में रहती हैं तो छाती की दीवार और फेफड़ें लोचदार वापसी में आ जायेगा। जब डायफ्राम और इण्टरकोस्टल पेशियां आराम संकुचन करते हैं तब हम सामान्य शान्त सांस लेते हैं और जब डायफ्राम और इण्टरकोस्टल पेशियां आराम करते हैं तब हम सामान्य शान्त सांस छोड़ते हैं ये दोनों की प्रक्रिया सामान्य श्वसन के दौरान होता है।

(b)– निःश्वसन क्षेत्र, प्रश्वसन क्षेत्र के सक्रिय होने पर सक्रिय होता है। निःश्वसन क्षेत्र के सक्रिय होने पर आन्तरिक कोस्टल पेशी तथा उदरीय पेशी संकुचित होती है और इसके संकुचित होने से सशक्त सांस छोड़ते हैं निःश्वसन प्रक्रिया सशक्त श्वसन के दौरान होता है।

(c)– न्यूमोटेक्सिक केन्द्र मस्तिष्क के पोन्स मे स्थित होता है। यह व्यायाम के दौरान श्वसन दर को बढ़ाने का काम करता है। न्यूमोटेक्सिक केन्द्र सांस लेना और सांस छोड़ने के बीच संचरण का निर्देशन करता है।

2. रसायनिक नियन्त्रण– इसमें जो संरचना शामिल है उसे रासायनिक शरीर (Chemosensitive bodies) कहते हैं यहां पर रासायनिक का अर्थ है रसायन संवेदी शरीर इसमें शामिल होते हैं। सबसे पहले तो जो शरीर इसमें शामिल है वह है केरोटिड शरीर (Carotid bodies), केरोटिड बाडीज, केरोटेड साइनस के आधार पर स्थित होती है। दूसरी है एओरटिक बाडी (Aortic bodies) । एओरटिक बाडीज एओरटा के आधार पर स्थित होती है केरोटिड और एओरटिक बाडी दोनों ही कार्बन डाईऑक्साइड के आंशिक दबाव के लिये ज्यादा संवेदनशील होती है तथा ऑक्सीजन के लिये कम संवेदनशील होती हैं। जब भी कार्बन डाईऑक्साइड का आंशिक दबाव बढ़ेगा तब रसायनग्राही बाडी उद्दीप्त हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप निःश्वसन की प्रक्रिया चालू हो जाती है।

श्वसन तंत्र पर योग का प्रभाव

श्वसन शरीर में प्रत्येक कोशिका को ऑक्सीजन की आपूर्ति करने और फिर शरीर से बाहर अपशिष्ट उत्पाद कार्बन डाई ऑक्साइड को परिवहन करने की प्रणाली है। योग आसन इन क्षेत्रों को खिंचाव और मजबूत करते हैं और गहरी पूर्ण श्वास को प्रोत्साहित करते हैं। श्वसन प्रणाली के लिए योग श्वसन समस्याओं को प्रेरित करने वाले लक्षणों को कम करने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

1. श्वसन तंत्र पर आसनों का प्रभाव – हठ योग शारीरिक मुद्राओं और सांस लेने की प्रथाओं का संयोजन है जो शरीर और मस्तिष्क को पूर्ण संतुलन बनाए रखने में मदद करने के लिए बनाया गया है। श्वसन तंत्र का स्वस्थ होना शरीर के अन्य सभी प्रणालियों को प्रभावित करता है। इस महत्वपूर्ण प्रणाली को स्वस्थ बनाए रखने के लिए हठ योग

के कई अभ्यास विशेष रूप से सहायक हैं। आसनों के अभ्यास से सांस की मांसपेशियों को मजबूत और लचीला बनाया जा सकता है। अपनी छाती की आस–पास की मांसपेशियों को मजबूत करने के लिए भुंजगासन, धनुरासन, ऊर्ध्व मुखस्वानासन, चक्रासन आदि योगआसनों का उपयोग कर सकते हैं।

2. श्वसन तंत्र पर प्राणायाम का प्रभाव – अनुलोम–विलोम प्राणायाम नाक गुहा में रूकावटों को दूर करने में मदद करता है। प्राणायाम का नियमित अभ्यास नासिका को एलर्जी से मुक्त होने और अपशिष्ट तत्वों के प्रति फिल्टरिंग क्षमता को बढ़ाने में मदद करता है। प्राणायाम साइनस गुहाओं को भी साफ करता है। साइनस में सूजन के कारण सिर में दर्द आदि कई लक्षण दिखाई देते हैं। प्राणायाम न केवल वेंटिलेशन में सुधार करता है, बल्कि साइनस के उचित द्रव निकासी पर भी कार्य करता है और बदले में 'साइनोसाइटिस' से छुटकारा दिलाता है। प्राणायाम फेफड़े के एल्वियोलाई को खोलकर ऑक्सीजन की बेहतर पूर्ति करते हैं जिससे फेफड़े की अधिक ऑक्सीजन अवशोषित करने की क्षमता बढ़ जाती है। भस्त्रिका, कपालभाति, भ्रामरी, अनुलोम–विलोम जैसे श्वास अभ्यास फेफड़ों की क्षमता में सुधार करने में मदद करते हैं और शुद्ध करते हैं।

3. श्वसन तंत्र पर मुद्रा एवं बंधों का प्रभाव – आम तौर पर हम सांस लेने के लिए अपने फेफड़े का केवल कुछ हिस्सा ही उपयोग करते हैं, कुछ मुद्राएँ हैं जो हमारे फेफड़े का पूरा उपयोग करने में मदद करती हैं, ताकि हम अधिकतम प्राण–वायु का उपयोग कर सकें और हमारे शरीर को अधिक ऊर्जा प्राप्त हो सके। ज्ञानमुद्रा, आदिमुद्रा, ब्रह्ममुद्रा, चिन्मय मुद्रा आदि मुद्राओं के साथ ऊँ का उच्चारण करने से फेफड़े के वायुकोष अधिक–से–अधिक खुलते हैं। जिससे सांस के साथ अधिक ऑक्सीजन लेने की क्षमता बढ़ती है।

श्वसन तंत्र पर ध्यान का प्रभाव – ध्यान श्वसन दर को कम करता है। एक कम श्वसन दर इंगित करता है कि फेफड़े अन्य चीजों के अलावा अधिक कुशलता से काम कर रहे हैं। सांस की जागरूकता श्वास प्रक्रिया का एक जागरूक नियंत्रण है, और अनुभवी ध्यानियों द्वारा बहुत अच्छी तरह से जाना जाता है।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1 रक्त कोशिकाओं एवं शरीर की ऊतक कोशिकाओं के बीच गैसों के विनिमय को क्या कहते हैं ?

प्रश्न 2 वयस्क व्यक्ति में विश्राम के समय श्वसन दर कितना होता है ?

प्रश्न 3 बाएं एवं दाएं फेफड़े में कितने–कितने खण्ड होते हैं ?

प्रश्न 4 फेफड़े में विद्यमान वायुकोषों एवं इनके चारों ओर स्थित रक्तकोशिकाओं के मध्य जो गैसों का विनिमय होता है, उसे क्या कहते हैं ?

प्रश्न 5 जब रक्त में ऑक्सीजन वहन क्षमता कम हो जाती है, तो उसे क्या कहते हैं ?

6.7 सारांश

उपरोक्त इकाई में आपने श्वसन तंत्र की संरचना एवं उसके कार्यों का अध्ययन किया जिससे आपने जाना कि किस प्रकार जब हम श्वास लेते हैं तो बाह्य वातावरण से वायु नासिका एवं नासिका गुहा में प्रवेश करती है। जहाँ से वायु ग्रसनी में होते हुए श्वासनलिका में चली जाती है। श्वासनलिका से श्वसनी एवं श्वसनी से श्वसनिकाओं में होती हुई वायु फेफड़ों के वायुकोषों में भर जाती है। वायुकोषों एवं रक्त वाहिनियों के मध्य गैसों का आदान–प्रदान होता है। गैसों के आदान–प्रदान के परिणामस्वरूप वायुमंडल की ऑक्सीजन रक्तवाहिनियों में चली जाती है एवं रक्त वाहिनियों में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड वायुकोषों से नासिका तक जाती हुई वापस वायुमंडल में भेज दी जाती है। यह प्रक्रिया कई चरणों में होकर पूर्ण होती है। जोकि श्वसन तंत्र का मुख्य श्वसनांग फेफड़ों में होती है।

6.8 शब्दावली

नासिका – नाक

प्रश्वसन – सांस भीतर लेना

श्वासोच्छवास – सांस लेना व छोड़ना

अन्तर्ग्रहण – अन्दर लेना

बहिःक्षेपण – बाहर छोड़ना

फुफ्फुस – फेफड़ा

6.9 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. आन्तरिक श्वसन
2. 16 से 20 बार प्रति मिनट
3. बाएं फेफड़े में 2 खण्ड तथा दाएं फेफड़े में 3 खण्ड
4. बाह्य श्वसन
5. Hypoxaemia

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6. रस्तोगी, डॉ. वीरबाला (2016), जैव रसायन तथा कार्यकी, केदारनाथ रामनाथ
7. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश (2008), मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन, आगरा

8. दीक्षित राजेश (2002), शरीर रचना क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा

9. शर्मा, डॉ. ताराचन्द्र (1999), आयुर्वेदिक शरीर रचना विज्ञान, नाडा पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक

10. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009), एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, भाषा भवन, मथुरा

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 श्वसन तंत्र का संरचनात्मक वर्णन करते हुए उसकी क्रियाविधि को समझाइये ?

प्रश्न 2 श्वसन तंत्र की क्रियाविधि को समझाते हुए श्वसन के नियन्त्रण पर प्रकाश डालिए ?

इकाई–7 प्रजनन तंत्र– संरचना इकाई शीर्षक व कार्य

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 प्रजनन तंत्र या संस्थान

7.4 पुरूष प्रजनन अंग या जननांग

7.4.1 वृषण

7.4.2 अधिवृषण

7.4.3 शुक्रवाहिका

7.4.4 प्रोस्टेट ग्रंथि

7.4.5 शिश्न (लिंग)

7.4.6 शुक्राशय

7.4.7 काउपर या बल्वोयूरेथ्रल ग्रंथियां 7.4.8 वीर्य

7.5 स्त्री प्रजनन अंग या जननांग

7.5.1 अण्डाश्य

7.5.2 गर्भाशयिक नलियॉ या डिम्ब वाहिनियॉ 7.5.3 गर्भाशय

7.5.4 योनि

7.5.5 स्तन ग्रंथि

7.5.6 मासिक चक

7.6 मानव प्रजनन की क्रियाविधि

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.10 संदर्भ ग्रंथ

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के बारे में विस्तार से पढ़ा और जाना कि यह किस प्रकार से मानव शरीर के लिए महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन का विषय है 'प्रजनन तंत्र'। जिस प्रकार उपरोक्त सभी तंत्र मानव शरीर के लिए उपयोगी है उसी प्रकार प्रजनन अंगों की भी मानव शरीर में अहम भूमिका है। प्रजनन एक जैविक क्रिया (Biological process) है, जिसमें हर जीवधारी अपने वंश को आगे बढ़ाने के लिये जनन क्रिया करता है तथा अपने ही जैसे नये जीव की उत्पत्ति करता है। जिससे उसकी पीढ़ी आगे बढ़ सके। नये जीव के निर्माण के लिये हर जीव में प्रजनन की व्यवस्था अलग–अलग होती है। मनुष्य में लैंगिक जनन होता है। प्रस्तुत इकाई में हम मानव प्रजनन तंत्र की रचना एवं कार्य का अध्ययन करेगें।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद विद्यार्थी–

- प्रजनन तंत्र को समझा सकेंगे।
- नर जननागों की सचित्र व्याख्या कर सकेंगे।
- मादा जननांगों का सचित्र वर्णन कर सकेंगे।
- प्रजनन अंगों के कार्यो की व्याख्या कर सकेंगे।

7.3 प्रजनन तंत्र (Reproductive system)

अपनी जाति की उत्पत्ति करने को प्रजनन कहा जाता है। जो अंग इस प्रक्रिया में भाग लेते हैं उसे प्रजनन अंग (Reproductive Organ) कहते है तथा इस पूरे तंत्र को प्रजनन तंत्र (Reproductive System) कहते हैं। जन्म देने वाले को जनक (parent or parents) तथा नये जन्म लेने वाले को संतान अथवा संतति (off spring) कहा जाता है। भ्रूण में नर व मादा का भेद गर्भधारण के 7–8 सप्ताह बाद प्रारम्भ होता है, क्योंकि शिशु के जन्म तक सभी जनमांग बन जाते है। बाल्यावस्था (Childhood) में जननांगों की वृद्धि तो होती रहती है, परन्तु ये क्रियाशील नही होते । इसीलिए बाल्यावस्था में जननांगों के अतिरिक्त अन्य शारीरिक लक्षणों तथा व्यवहार आदि में लडकों और लड़कियों में विशेष अन्तर नही होता। लगभग 11–13 वर्ष की आयु में, बाल्यावस्था

समाप्त हो जाती है और यौवनाराम्भ (Puberty) से किशोरावस्था (Adolescnce) प्रारम्भ हो जाती है। किशोरावस्था (13–19 वर्ष तक की आयु) में जननांगों तथा अतिरिक्त लैंगिक लक्षणों सहित पूर्ण शरीर का विकास जनन क्रियाओं सहित समस्त शरीर क्रियाओं तथा स्वभाव एवं व्यवहार आदि पर लिंग हॉरमोन्स का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है और प्रजनन की क्षमता अर्थात लैंगिक परिपक्वता (Sexual Maturity) विकसित हो जाती है अर्थात व्यक्ति वयस्क बन जाता है । अगर हम बात करे मानव की, तो मानव को दो रूपों में बांटा जाता है– नर और मादा। ये दोनों रूप एक लिंगी (Unisexual) होता है। मादा गर्भ में ही विकसित शिशु को जन्म देती है। पुरूष एवं स्त्री दोनों के शरीर में एक जटिल, सुविकसित एवं एक दूसरे से भिन्न प्रजनन अंग उपस्थित होते हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से प्रजनन तंत्र कहा जाता है।

7.4 पुरूष प्रजनन अंग या जननांग

अगर हम बात करे नर प्रजनन तंत्र की तो उसको कुल आठ भागों की हम चर्चा करेंगे–

7.4.1 वृषण (Testes)

शिश्न के नीचे दो अण्ड होते हैं उन्हें वृषण कहते हैं, यह प्राथमिक नर जनन अंग कहा जाता है और यह दोनों टांगों के बीच शिश्न के ठीक नीचे वाले भागों में स्थित होते हैं। यह सामान्यतः 4 से 5 सेंटीमीटर लम्बे तथा 2 से 3 सेंटीमीटर चौड़ी अण्डाकार संरचनायें होती है। जो वृषण कोष (serotum) नाम की थैली में स्थित होती है। वृषण के अन्दर शुक्राणुओं या वीर्य का निर्माण होता है। यह शरीर के बाहर ही क्यों हैं, सारे अंगों की तरह शरीर के अन्दर हो सकते थे। ऐसा इसलिये हैं क्योंकि इस वृषण की थैली का तापमान शरीर के तापमान से दो डिग्री सेल्शियस कम होता है क्योंकि शुक्राणुओं का निर्माण शरीर के तापमान से दो डिग्री सेल्शियस से कम पर होता है। यदि वृषण की यह थैली शरीर के अन्दर होती तो शुक्राणुओं का निर्माण नहीं हो पाता इसलिये यह शरीर के बाहर होती है।

शुक्र जनन नलिकाओं के बाहरी क्षेत्र में अन्तराली कोशिकायें स्थित होती है। जो एण्ड्रोजन हार्मोन का स्राव करती हैं। यह हार्मोन पुरूषों के विशिष्ट लक्षणों के विकास को नियमित करता है। इन हार्मोन्स में टेस्टोस्टेरॉन, डाइहाइड्रो टेस्टोस्टेरॉन तथा एण्ड्रोस्टेनेडियोन प्रमुख हैं। टेस्टोस्टेरॉन हार्मोन को पौरूष विकास हार्मोन भी कहा जाता है। पौरूष का मतलब पुरूषों का विकास इसी हार्मोन के माध्यम से होता है। जिस भी व्यक्ति के शरीर में टेस्टोस्टेरॉन हार्मोन की कमी होगी, उस व्यक्ति के चेहरे पर दाढ़ी और मूंछ कम होगी। किसी किसी पुरूष की आवाज पतली या फिर कहें महिलाओं जैसी होती है यह भी इसी हार्मोन के कारण होता है।

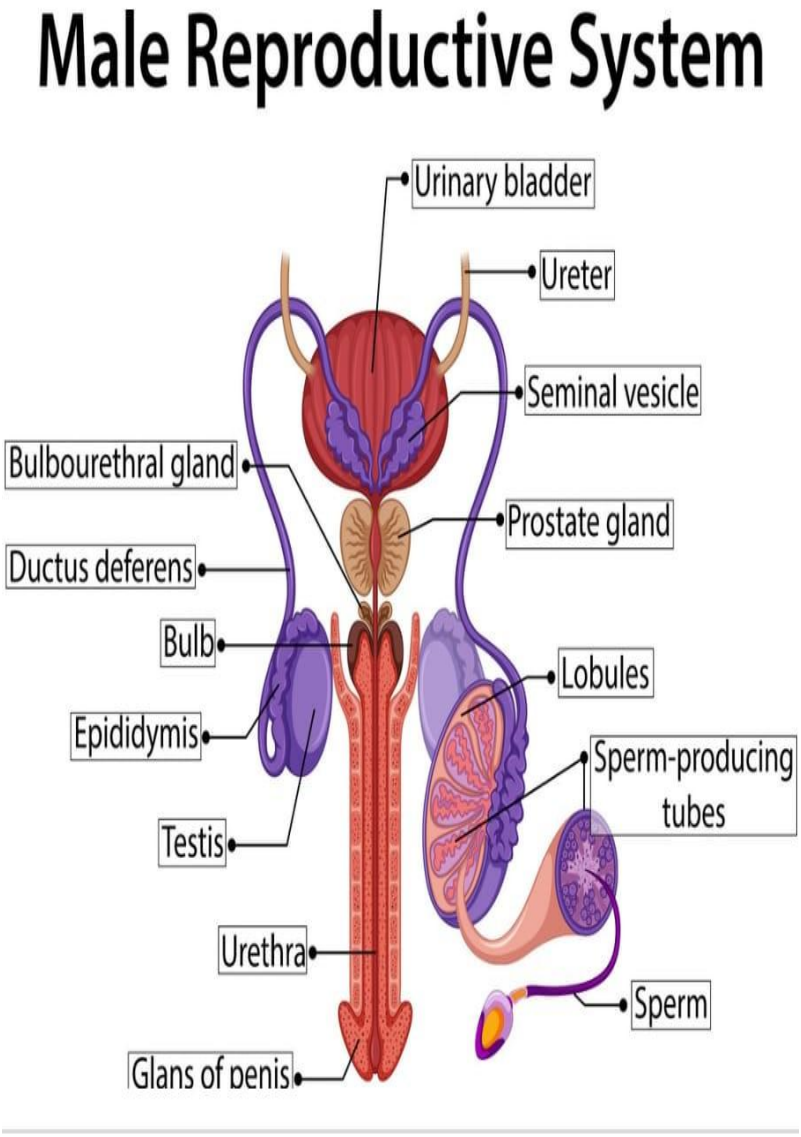

7.4.2 अधिवृषण (Epididymis)

यह लगभग 6 मीटर लम्बा होता है। प्रत्येक वृषण के पिछले भाग तथा शुक्रवाहिका के मध्य एक अत्यन्त कुण्डिलित नलिका जुड़ी होती है जो अधिवृषण कहलाती है। इस नलिका में शुक्राणुओं का विकास होता है और यह यहीं पर आकर संग्रहित हो जाते हैं।

नोट :– शुक्राणुओं का निर्माण वृषण में होता है। लेकिन शुक्राणुओं का पूर्ण विकास अधिवृषण में होता है। इस नलिका में यह शुक्राणु 72 घंटे तक जिन्दा रहते हैं।

7.4.3 शुक्रवाहनियां (Vas Deferens)

यह 45 सेंटीमीटर लम्बी होती है इसकी दीवार ऊपर दी नलिकाओं की दीवार की अपेक्षा थोड़ी मोटी और संकरी होती है। यह अधिवृषण से जुड़ी होती है। ध्यान दीजियेगा कि वृषण से एक नलिका अधिवृषण से जुड़ी, अधिवृषण से शुक्रवाहिनियां आकर जुड़ी होती है। शुक्रवाहिनियों में शुक्राणु कई महीनों तक जीवित रहते

हैं।

आपने नसबन्दी के बारे में सुना होगा नसबन्दी में शुक्रवाहिनी को काट दिया जाता था ताकि शुक्राणु यहां तक न पहुंच पायें ताकि व्यक्ति का अगला बच्चा न हो पाये।

जहां शुक्रवाहिका अधिवृषण से जुड़ी होती है उस जगह को शुक्राशय कहा जाता है।

7.4.4 प्रोस्टेट ग्रन्थि (Prostate Gland)

यह गोलाकार होता है। जोकि मूत्रमार्ग से लेकर मूत्र.ाशय तक होता है। यह ग्रन्थि एक प्रकार के द्रव्य के निर्माण करती है। जिसे प्रोस्टेट द्रव्य कहते हैं। शुक्राणुओं में जो गन्ध आती है वह इसी द्रव्य की वजह से आती है। यह शुक्राणुओं को पोषण एवं सुरक्षा प्रदान करती है।

7.4.5 शिश्न (Penis)

यह पुरूषों में बाह्म जनन अंग है नर में उपस्थित शुक्राणु को मादा योनि के भीतर पहुंचाने के लिये शिश्न की जरूरत पड़ती है। इसकी मांसपेशियां विशिष्ट प्रकार की होती है। उत्तेजना की अवस्था में शिश्न में रक्त की आपूर्ति बढ़ जाती है जिससे शिश्न में कड़ापन आ जाता है अर्थात यह लचीला मांस कठोर हो जाता है।

7.4.6 शुक्राशय (Seminal Vesicle)

इसकी लम्बाई 5 सेंटीमीटर होती है। यह एक जोड़ी पेशीयुक्त संरचना होती है। किन्तु इसमें शुक्राणुओं का संचय नहीं होता है। यह एक पीले तथा चिपचिपे पदार्थ का स्रावण करती है। वीर्य का 60 प्रतिशत भाग इसी का बना होता है। वीर्य का यह 60 प्रतिशत भाग प्रोटीन होता है यह प्रोटीन फ्रक्टोज, सीमीनोजेलिन, शर्करा, प्रोस्टेग्लैन्डीन्स होता है।

7.4.7 कॉउपर की ग्रंथियां (Cowper's Glands)

प्रोस्टेट ग्रन्थि के नीचे छोटी–छोटी एक जोड़ी ग्रन्थियां होती हैं जिनसे गाढ़े रंग का चिपचिपा पदार्थ निकलता है। सहवास के समय इस ग्रन्थि से यह पदार्थ निकलकर मूत्र मार्ग को चिकना बनाता है। ताकि जो मादा की योनि है उसको चिकना बनाकर सहवास को सुगम बना सके और जो शुक्राणु है वह मादा के अन्दर जाकर स्थापित हो सके।

7.4.8 वीर्य (Semen)

वीर्य एक जैविक तरल पदार्थ है जो नर जननांगों द्वारा निर्मित होता है। वीर्य में शुक्राणु के साथ–साथ अन्य तरल पदार्थ भी सम्मिलित होते हैं। मानव वृषण में शुक्राणु का निर्माण होता है। जब यह शुक्राणु अधिवृषण, शुक्रवाहिका, शुक्राशय, प्रोस्टेट ग्रन्थि तथा काउपर ग्रन्थि से गुंजरते हैं तो इनमें अन्य अनेक तरल मिल जाते हैं।

शुक्राणु मिश्रित यही तरल वीर्य कहलाता है। एक सामान्य एवं स्वस्थ वयस्क पुरूष एक स्खलन में सामान्यतः 2.5 से 3.5 मिलीलीटर वीर्य का उत्सर्जन करता है।

7.5 स्त्री प्रजनन अंग या जननांग

अभी तक आपने नर प्रजनन अंगों के बारे में पढ़ा अब हम मादा प्रजनन अंगों की चर्चा करेंगे। जिसमें कुल 6 भाग हैं–

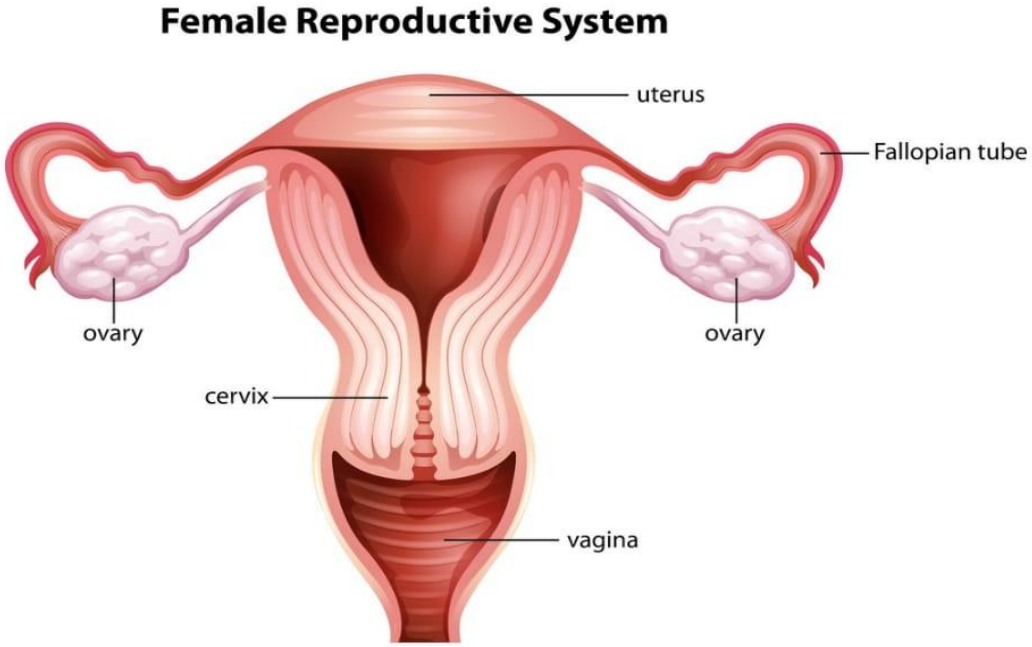

7.5.1 अण्डाशय (Ovary)

जिस तरह से पुरूषों में वृषण होता है, उसके दो अण्डे होते हैं ठीक उसी तरह से मादाओं में भी अण्डाशय होता है। जिसमें अण्डों की संख्या दो होती है। अण्डाशय गर्भाशय के दोनों तरफ स्थित होता है। अण्डाशय का आकार दो सेंटीमीटर लम्बा तथा 8 सेंटीमीटर मोटा होता है। अण्डाशय में ही अण्डाणु बनते हैं, जिस तरह शुक्राणु का निर्माण वृषण में होता हैं उसी तरह अण्डाणु का निर्माण अण्डाशय में होता है। इनसे मादा हार्मोन इस्ट्रोजन, प्रोजेस्ट्रॉन का स्रावण भी होता है।

अडाशय में दो महत्वपूर्ण हार्मोन का स्रावण होता है– 1. **इस्ट्रोजन–**

यह हार्मोन स्त्री के लैगिक लक्षणों तथा सहायक जननांगों के विकास को प्रेरित करता है। इसलिये इसे नारी विकास हार्मोन भी कहा जाता है। इस्ट्रोजन के प्रभाव से स्त्रियों में स्तनों, अण्डवाहिनियों, गर्भाशय, योनि आदि

जननांगों का विकास होता है। इसके अतिरिक्त यह हार्मोन स्त्रियों की बाह्य शारीरिक संरचना, आवाज, स्वभाव आदि को भी प्रभावित करती है।

2. प्रोजस्ट्रोन –

अण्डाशय में स्थित ग्राफियन पुट्रिटकायें अण्डे के उत्सर्जन के पश्चात कॉर्पस लुटियम नामक संरचना में परिवर्तित हो जाती हैं इसी कॉर्पस लुटियम से प्रोजेस्ट्रोन नामक हार्मोन का स्राव होता है। यह हार्मोन स्त्रियों के शरीर को गर्भधारण के लिये तैयार करता है। यदि अण्डाशय द्वारा उत्सर्जित किये गये अण्डे का निषेचन नहीं होता है तो कॉर्पस लुंटियम नष्ट हो जाता है तथा प्रोजस्ट्रोन स्राव में कमी आती है और परिणामस्वरूप एक नया मासिक चक्र प्रारम्भ होता है। यदि अण्डे का निषेचन हो जाता है तो प्रोजेस्ट्रोन गर्भ एवं भ्रूण को पोषण प्रदान करने के लिये रक्त वाहिकाओं का विकास करता है साथ ही यह अन्तःगर्भाशय स्तर में उपस्थित ग्रन्थियों को पोषक पदार्थो का स्राव करने के लिये प्रेरित करता है ताकि प्रारम्भिक भ्रूण का पोषण हो सके। प्रोजेस्ट्रोन हार्मोन के प्रभाव से स्त्रियों की दुग्ध ग्रन्थियां बड़ी हो जाती है परिणामस्वरूप उनके स्तनों का आकार भी बढ़ जाता है।

नोट :– गर्भवती स्त्री के शरीर में कॉर्पस लुटियम तथा गर्भनाल के द्वारा रिलेक्सिन नामक हार्मोन का स्राव होता है। यह हार्मोन गर्भ में शिशु के विकास के साथ–साथ श्रोणि मेखला के प्यूबिक सिम्फाइसिस नामक जोड़ को ढ़ीला व लचीला बनाता है तथा उसे फैलाकर मध्य के क्षेत्र में वृद्धि करता है ताकि शिशु का जन्म सरलता से हो सके।

7.5.2 अण्ड वाहिनी या डिम्ब वाहिनियां (Oviduct or fallopian tubes)

इसे फैलोपियन ट्यूब भी कहते हैं जिस तरह से शुक्रवाहिनी अधिवृषण से जुड़ी रहती है उसी तरह से अण्डवाहिनयां प्रत्येक गर्भाशय से जुड़ी होती है। अण्डाशय से गर्भाशय तक यह एक पाइप के माध्यम से जुड़ी होती है और इसी के माध्यम से अण्डाणु अण्डवाहिनियों में पहुंचते हैं सहवास के पश्चात शुक्राणु गर्भाशय से होते हुये अण्डवाहिनियों तक पहुंचते हैं जहां शुक्राणु अण्डाणु से मिलकर प्रत्येक अण्डाणु को निषेचित करता है।

नोट :– निषेचन की प्रक्रिया अण्ड वाहिनयों में ही सम्पन्न होती है। स्त्री में बांझपन की समस्या का एक मुख्य कारण अण्डवाहिनियों का बन्द होना भी होता है।

7.5.3 गर्भाशय (Uterus)

मादा के उदरगुहा के ठीक नीचे तथा श्रोणि गुहा के ठीक मध्य में गर्भाशय स्थित होता है। गर्भाशय लगभग 7.5 सेंटीमीटर लम्बा, 3 सेंटीमीटर मोटा तथा 5 सेंटीमीटर चौड़ा होता है। यह नाशपाती के आकार को होता है। ऊपर तरफ चौड़ा तथा नीचे की तरफ थोड़ा सा सकरा होता है। इसी संकरे भाग को ग्रीवा (Cervix) कहते हैं योनि इसी ग्रीवा से जुड़ी होती है।

जब शिश्न योनि में जाता है तो वह शुक्राणुओं को योनि में पहुचा देता है। यह शुक्राणु बहते–बहते गर्भाशय

के ग्रीवा में आ जाते हैं जहां से फिर बहते हुये शुक्राणु गर्भाशय के संकरे भागसे चौड़े भाग में प्रवेश कर जाते हैं। गर्भाशय से शुक्राणु अण्डवाहिनी में पहुंच जाते हैं। जहां यह अण्डाणु के साथ मिलकर निषेचित होने लगते हैं।

गर्भाशय के आगे वाला भाग मूत्राशय होता है जबकि गर्भाशय के ठीक पीछे वाला भाग मलाशय से जुंड़ा होता है। डिंबवाहिनियों में निषेचित अण्डाणु फिर वापस गर्भाशय में पहुंचता है जहां यह भ्रूण में परिवर्तित होकर बच्चे के रूप में विकसित होने लगता है।

7.5.4 योनि (Vagina)

यह मूत्राशय तथा मलाशय के बीच में स्थित होता है योनि के कार्य की चर्चा करें तो यहां से मैथुन प्रक्रिया की जाती है, मूत्र विसर्जन किया जाता है, रजोधर्म (मासिक धर्म) की क्रिया होती है साथ ही साथ यह प्रसव का मार्ग भी होता है। योनि का एक सिरा गर्भाशय की ग्रीवा से जुड़ा होता है। दूसरा सिरा छिद्र के रूप में बाहर खुलता है।

सहवास के दौरान और मैथुन इच्छा के समय योनि में स्थित बार्थोलिन ग्रन्थि से एक चिपचिपा पदार्थ निकलता है यह द्रव्य सहवास के समय योनि को चिपचिपा बनाता है। जिससे शिश्न आसानी से योनि में प्रवेश कर सके। योनि के ठीक ऊपर एक छोटा सा उभार होता है। जिसे भगशिश्न (Clitoris) कहते है। यह एक अत्यन्त उत्तेजित अंग होता है। जिसे स्पर्श करने से स्त्री को अत्यधिक सुख की अनुभूति होती है। ?

नर का शुक्राणु योनि से होते हुये गर्भाशय के रास्ते से अण्ड वाहिनी में पहुंचता है जहां पर निषेचन की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है।

7.5.5 स्तन–ग्रंथि (Mammary glands)

पुरूष और स़्त्री दोनों के स्तनों में ग्रन्थिल ऊतक उपस्थित होते हैं। परन्तु स्त्रियों में यौवनावस्था के पश्चात स्ट्रोजन हार्मोन के प्रभाव से ग्रन्थिल ऊतक विकसित होकर पुरूषों की तुलना में बड़े आकार के स्तनों में परिवर्तित हो जाते हैं। स्तन ग्रन्थियां बहिस्रावी होती है। जो दुग्ध का उत्पादन करती हैं और नवजात एवं अल्पायु संतानों को पोषण प्रदान करती हैं। स्त्रियों के स्तन में विशिष्ट प्रकार की ग्रन्थियां अथवा ग्रन्थियों का समूह उपस्थित होता है। जो दुग्ध का स्राव करने में सक्षम होता है। पूर्ण विकसित स्तन ग्रन्थियों में उपस्थित खोखली गुंहिकायें दुग्ध स्रावी घनाकार कोशिकायें मायोएपीथीलियल कोशिकायें मिलकर लोब्यूल नामक संरचनाओं का निर्माण करती हैं। प्रत्येक लोब्यूल में एक लेक्टिफेरस वाहिनी उपस्थित होती है जो स्तन के अग्रभाग से जुड़ी होती है।

7.5.6 मासिकचक्र (Menstrual cycle)

सभी स्त्रियां यौवनारम्भ की अवस्था प्राप्त करने के पश्चात प्रत्येक माह एक पूर्ण विकसित अण्ड या डिम्ब का उत्सर्जन करती हैं। स्त्री शरीर में प्रत्येक माह होने वाली यह प्राकृतिक प्रक्रिया मासिक चक्र कहलाती है। मासिक चक्र के दौरान अण्डाशय के द्वारा अण्डाणु का निर्माण होता है। जो विकसित होकर अण्डवाहिनी के माध्यम से गर्भाशय में

आता है। गर्भाशय में अण्डाणु का पोषण होता है और वह निषेचन के लिये विकसित होता है। इसी दौरान गर्भाशय की आन्तरिक परत मोटी होने लगती है ताकि वह गर्भावस्था के लिये गर्भाशय को तैयार कर सके। यदि इस दौरान पुरूष के शुक्राणुओं से अण्डाणु का निषेचन नहीं होता तो अण्डाणु तथा गर्भाशय की आन्तरिक परत दोनों ही गर्भाशय से अलग होकर रक्तस्राव के रूप में शरीर से बाहर निकल जाते हैं यदि अण्डाणु द्वारा अण्डोत्सर्ग के पश्चात पुरूष शुक्राणुं द्वारा अण्डाणुओं का निषेचन कर दिया जाता है तो यह गर्भाशय में ही परिवर्द्धित एवं विकसित होने लगते हैं तथा शिशु के जन्म तक मासिक चक्र की प्रक्रिया रूक जाती है। यह अवस्था गर्भधारण की अवस्था कहलाती है।

7.6 मानव प्रजनन की क्रियाविधि (Mechanism of human reproduction)

अभी तक आपने नर और मादा प्रजनन अंगों के बारे में जाना आइये अब मानव प्रजनन की क्रियाविधि की चर्चा करते हैं। मानव प्रजनन की क्रियाविधि को तीन भागों में बांटा गया ह

1. युग्मकजनन (Gametogenesis)

प्राथमिक लैंगिक अंग : पुरुषों में वृषण और स्त्रियों में अण्डाशय युग्मकजनन विधि द्वारा क्रमशः नर युग्मक यानी शुक्राणु और मादा युग्मक यानि अण्डाणु उत्पन्न करते हैं। वृषण में, अपरिपक्व नर जर्म कोशिकाएँ (शुक्राणुजन/स्पर्मेटोगोनिया–बहुवचनः एकवचन–स्पर्मेटोगोनिर्यो) शुक्रजनन (स्पर्मेटोजेनेसिस) द्वारा शुक्राणु उत्पन्न करती हैं जो कि किशोरावस्था के समय शुरू होती है। शुक्रजनक नलिकाओं (सेमिनिफरेस ट्यूब्यूल्स) की भीतरी भित्ती में उपस्थित शुक्राणुजन समसूत्री विभाजन (माइटोटिक डिविजन) द्वारा संख्या में वृद्वि करते हैं। प्रत्येक शुक्राणुजन द्विगुणित होता है और उसमें 46 गुणसूत्र (क्रोमोसोम) होते हैं। कुछ शुक्राणुजनों में समय–समय पर अर्धसूत्री विभाजन या अर्धसूत्रण (मिओटिक डिविजन) होता हैं। जिनको प्राथमिक शुक्राणु कोशिकाएँ (प्राइमरी स्पर्मेटोसाइट्स) कहते हैं। एक प्राथमिक शुक्राणु कोशिका प्रथम अर्धसूत्री विभाजन (न्यूनकारी विभाजन) को पूरा करते हुए दो समान अगुणित कोशिकाओं की रचना करते हैं, जिन्हें द्वितीयक शुक्राणु कोशिकाएँ (सेकेडरी स्पर्मेटोसाइट्स) कहते हैं। एक प्राथमिक शुक्राणु कोशिका प्रथम अर्धसूत्री विभाजन (न्यूनकारी विभाजन) को पूरा करते हुए दो समान अगुणित कोशिकाओं की रचना करते हैं जिन्हें द्वितीयक शुक्राणु कोशिकाएँ (सेकेंडरी स्पर्मेटोसाइट्स) कहते हैं। इस प्रकार उत्पन्न प्रत्येक कोशिका में 23 गुणसूत्र होते हैं। द्वितीयक शुक्राणु कोशिकाएँ, दूसरे अर्धसूत्री विभाजन से गुजरते हुए चार बराबर अगुणित शुक्राणुप्रसू (स्पर्मेटिड्स) पैदा करते हैं। शुक्राणुप्रसू रूपांतरित होकर शुक्राणु (स्पर्मेटोजाआ/स्पर्म) बनाते हैं और इस प्रक्रिया को शुक्राणुजनन (स्पर्मिओजेनेसिस) कहा जाता है। शुक्राणुजनन के पश्चात् शुक्राणु शीर्ष सर्टोली कोशिकाओं में अतःस्थापित (इंबेडेड) हो जाता है और अंत में जिस प्रक्रिया द्वारा शुक्राणु, शुक्रजनक नलिकाओं से मोचित (रिलीज) होते हैं, उस प्रक्रिया को (वीर्यसेचन) स्पर्मिएशन कहते हैं।

शुक्रजनन प्रक्रिया किशोरावस्था / यौवनारंभ से होने लगती है क्योकि इस दौरान गौनेडोट्रॉपिन

रिलीजिंग हार्मोन (जीएनआएच) के स्रवण में काफी वृद्धि हो जाती है। यह एक अधश्चेतक (हाइपोथैलमिक) हॉर्मोन है। गोनैडोट्रापिन रिलीजिंग हार्मोन के स्तर में वृद्धि के कारण यह अग्र पीयूष ग्रन्थि (एंटिरियर पिट्यूटरी ग्लैंड) पर कार्य करता है तथा दो गोनैडोट्रॉपिन हॉर्मोन–पीत पिंडकर (फॉलिकल स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन / एफ एस एच) के स्रवण को उद्दोपित करता है। एल एच लीडिग कोशिकाओं पर कार्य करता है और पुंजनों (एंड्रोजेन्स) के संश्लेषण और स्रवण को उद्दीपित करता है। इसके बदले में पुंजन शुक्राणुजनन की प्रक्रिया को उद्दीपित करता है। एफ एस एच सर्टोली कोशिकाओं पर कार्य करता है और कुछ घटकों के स्रवण को उद्दीपित करता है, जो शुक्राणुजनन की प्रक्रिया में सहायता करते हैं। आइए हम एक शुक्राणु की संरचना की जाँच करें। यह एक सूक्ष्मदर्शीय संरचना है जो एक शीर्ष (हेड), ग्रीवा (नेक) एक मध्य खंड (मिड्ल पीस) और एक पूँछ (टेल) की बनी होती है। एक प्लाज्मा झिल्ली शुक्राणु की पूरी काया (बॉडी) को आवृत्त किए रहती है। शुक्राणु के शीर्ष में एक दीर्घीकृत (इलांगेटेड) अगुणित केंद्रक (हेप्लॉयड न्यूक्लियस) होता है तथा इसका अग्रभाग एक टोपीनुमा संरचना से आवृत होता है जिसे अग्रपिंडक (एक्रोसोम) कहते हैं। यह अग्रपिंडक उन प्रकिण्वों (एंजाइम्स) से भरा होता है, जो अंडाणु के निषेचन में मदद करते हैं। शुक्राणु के मध्य खंउ में असंख्य सूत्रकणिकाएँ (माइटोकॉन्ड्रिया) होती हैं, जो पूँछ को गति प्रदान करने के लिए ऊर्जा उत्पन्न करती हैं जिसके कारण शुक्राणु को निषेचन करने के लिए आवश्यक गतिशीलता प्रदान करना सुगम बनाता है। मैथुन क्रिया के दौरान पुरुष 20 से 30 करोड़ शुक्राणु स्खालित करता है सामान्य उर्वरता (अबंधता) से लगभग 60 प्रतिशत शुक्राणु निश्चित रूप से सामान्य आकार और आकृति वाले होने चाहिए। इनमें से कम से कम 40 प्रतिशत आवश्यक रूप से सामान्य जनन क्षमता के लिए तीव्र गतिशीलता प्रदर्शित करते हैं।

शुक्रजनक नलिकाओं से मोचित (रिलीज्ड) शुक्राणु सहायक नलिकाओं द्वारा वाहित (टांसपोर्टेड) होते है। शुक्राणुओं की परिपक्वता एवं गतिशीलता के लिए अधिवृषण, शुक्रवाहक, शुक्राशय तथा पुरस्थ ग्रन्थियों का स्रवण भी आवश्यक है। शुक्राणुओं के साथ–साथ शुक्राणु प्लाज्मा मिलकर वीर्य (सीमेन) बनाते हैं। पुरुष की सहायक नलिकाओं और ग्रंथियों के कार्य को वृषण हार्मोन (ऐंड्रोजेंस) बनाये रखता है।

एक परिपक्व मादा युग्मक के निर्माण की प्रक्रिया को अंडजनन (ऊजेनेसिस) कहते हैं जोकि पुरुष के शुक्राणुजनन से स्पष्ट रूप से भिन्न है। अंडजनन की शुरूआत भ्रूणीय परिवर्धन चरण के दौरान होती है जब कई मिलियन मातृ युग्मक कोशिकाएँ यानि अंडजननी (ऊगोनिया) प्रत्येक भ्रूणीय अंडाशय के अंदर विनिर्मित होती हैं जन्म के बाद अंडजननी का निर्माण और उसकी वृद्धि नही होती है। इन कोशिकाओं में विभाजन शुरू हो जाता है और अर्धसूत्री विभाजन के पूर्वावस्था–1 (प्रोफेज–1) में प्रविष्ट होती हैं। और इस अवस्था में स्थायी तौर पर अवरूद्ध रहती है। प्राथमिक अंडक कणिकामय अंडक (प्राइमरी ऊसाइटस) कहते हैं। उसके बाद प्रत्येक प्राथमिक अंडक कणिकामय कोशिकाओं (ग्रेनलोसा सेल्स) की परत से आवृत्त होती है और इन्हें प्राथमिक पुटक (प्राइमरी फॉलिकिल) कहा जाता है। एक प्रक्रिया द्वारा इन पुटकों की भारी मात्रा में जन्म से

योवनारंभ तक ह्रास होता रहता है। इसलिए योवनारंभ के समय प्रत्येक अंडाशम में केवल 60 हजार से 80 हजार प्राथमिक पुटक ही शेष बचते है। यह प्राथमिक पुटक कणिकामय कोशिकाओं के और अधिक परतों से आर्वत्त हो जाते हैं तथा एक और नये प्रावरक (थिकल) स्तर से घिर जाते हैं जिसे द्वितीयक पुटक कहते है।

यह द्वितीयक पुटक जल्द ही एक तृतीय पुटक में परिवर्तित हो जाता है। जिसकी तरल से भरी गुहा को गह्वर (एंट्रम) कहा जाता है, यह इसका एक विशिष्ट लक्षण है। प्रावरक स्तर (थीका लेयर) अंतर प्रावरक (थोका इंटरना) और बाह्य प्रावरक (थोका एक्सटरना) में गठित होता है। इस समय आपका ध्यान इस ओर खींचना महत्त्वपूर्ण होगा कि तृतीय पुटक के भीतर प्राथमिक अंडक के आकार में वृद्धि होती है और इसका पहला अर्धसूत्री विभाजन पूरा होता है। यह एक असमान विभाजन है, जिसके फलस्वरूप वृहत अगुणित द्वितीयक अंडक तथा एक लघु प्रथम ध्रुवीय पिंड की रचना होती है द्वितीयक अंडक, प्राथमिक अडंक के पोषक से भरपूर कोशिका प्रद्रव्य (साइटोप्लाज्म) की मात्रा को संचित रखती है। तृतीय पुटक आगे चलकर परिपक्व पुटक या ग्राफी पुटक (ग्रैफियन फालिकिल) में परिवर्तित हो जाता है द्वितीयक अंडक अपने चारों ओर एक नई झिल्ली का निर्माण करता है जिसे पारदर्शी अंडावरण (जोना पेल्यूसिडा) कहते हैं। अब ग्राफी पुटक फटकर द्वितीयक अंडक (अंडाणु) को अंडाशय से मोचित करता है इस प्रक्रिया को अंडोत्सर्ग (ओवुलेशन) कहा जाता है।

मादा प्राइमेटों (यानी बंदर, कपि एवं मनुष्य आदि) में होने वाले जनन चक्र को आर्तव चक्र (मेन्सटुअल साइकिल) या सामान्य जनों की भाषा में मासिक धर्म या माहवारी कहते हैं। प्रथम ऋतुस्राव/रजोधर्म (मेन्सट्रुएशन) की शुरूआत यौवनारंभ पर शुरू होती है, जिसे रजोदर्शन (मिनार्की) कहते हैं। स्त्रियों में यह आर्तव चक्र प्रायः 28/29 दिनों की अवधि के बाद दोहराया जाता है, इसीलिए एक रजोधर्म से दूसरे रजोधर्म के बीच घटना चक्र को आर्तव चक्र (मेन्सटुअल साइकिल) कहा जाता है। प्रत्येक आर्तव चक्र के मध्य में एक अंडाणु उत्सर्जित किया जाता है या अंडोत्सर्ग होता है। आर्तव चक्र की शुरूआत आर्तव प्रावस्था से होती है जबकि रक्तस्राव होने लगता है। यह रक्तस्राव 3–5 दिनों तक जारी रहता है। गर्भाशय से इस रक्तस्राव का कारण गर्भाशय की अतःस्तर परत और उसकी रक्त बाहिनियों का नष्ट होना है जो एक तरल का रूप धारण करता है और योनि से बाहर निकलता है। रजोधर्म तभी आता है जब मोचित अंद्वाणु निषेचित नहीं हुआ हो। रजोधर्म की अनुपस्थिति गर्भ धारण का संकेत है। यद्यपि इसके अन्य कारण जैसे– तनाव, निर्बल स्वास्थ्य आदि भी होसकते हैं। आर्तव प्रावस्था के बाद पुटकीय प्रावस्था आती है। इस प्रावस्था के दौरान गर्भाशय के भीतर के प्राथमिक पुटक में वृद्धि होती है और यह एक पूर्ण ग्राफी पुटक बन जाता है तथा इसके साथ–साथ गर्भाशय में प्रचुरोद्भवन (प्रोलिफरेशन) के द्वारा गर्भाशम अंतःस्तर पुनः पैदा हो जाता है। अंडाशय और गर्भाशय के ये परिवर्तन, परिवर्तन पीयूष ग्रंथि तथा अंडाशयी हॉर्मोन की मात्रा के स्तर में बदलावों से प्रेरित होते हैं पुटक प्रावस्था के दौरान गोनैडोट्रॉपिन (एल एच एवं एफ एस एच) का स्रवण धीरे–धीरे बढ़ता है।

यह स्राव पुटक परिवर्धन के साथ–साथ वर्धमान पुटक द्वारा ऐस्ट्रोजन के स्रंवण को उद्दीपित करता है। एल एन तथा एफ एस एच दोनों ही आर्तव चक्र के मध्य (लगभग 14वें दिन) अपनी उच्चतम स्तर को प्राप्त करते हैं। मध्य चक्र के दौरान एल एच का तीव्र स्रवण जब अधिकतम स्तर को प्राप्त करते हैं। मध्य चक्र के दौरान एल एच का तीब्र स्रवण जब अधिकतम स्तर पर होता हैं। मध्य चक्र के दौरान एल एच का तीव्र स्रवण जब अधिकतम स्तर पर होता है तो इसे एल एच सर्ज कहा जाता है। यह ग्राफी पुटक को फटने के लिए प्रेरित करता है, जिसके कारण अंडाणु मोचित हो जाता है यानी अंडोत्सर्ग (ओव्यूलेशन) होता है। अंडोत्सर्ग के पश्चात पीत प्रावस्था होती है, जिसके दौरान ग्राफी पुटक का शेष बचा हुआ भाग पीत पिंड (कार्पस ल्युटियम) का रूप धारण कर लेता है। यह पीत पिंड भारी मात्रा में प्रोजेस्ट्रॉन स्रवित करता है, जो कि गर्भाशय अंतःस्तर को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार गर्भाशय अंतःस्तर निषेत्तित अंडाणु के अंतर्रोपण (इम्प्लांटेशन) तथा सगर्भता की अन्य घटनाओं के लिए आवश्यक है। सगर्भता के दौरान आर्तव चक्र की सभी घटनाएँ बंद हो जाती हैं इसीलिए इस समय रजोधर्म नहीं होता है। जब निषेचन नहीं होता है, तो पीत पींड में ह्रास होता है और यह अंतःस्तर का विखंडन करता है, जिससे कि फिर से रजोधर्म का नया चक्र शुरू हो जाता है यानी महावारी पुनः होती है। जिससे कि फिर से रजोधर्म का नया चक्र शुरू हो जाता है यानी माहवारी पुनः होती है। स्त्री में यह आर्तव चक्र 50 वर्ष की आयु के लगभग बंद हो जाता है इस स्थिति को रजोनिवृत्ति (मीनोपॉज) कहा जाता है। इस प्रकार रजोदर्शन से लेकर रजोनिवृत्ति की अवस्था में चक्रीय रजोधर्म सामान्य जनन अवधि का सूचक है।

2. निषेचन एवं अतर्रोपण (Fertilization) :

स्त्री एवं पुरुष के संभोग (मैथुन) के दौरान शिश्न द्वारा शुक्र (वीर्य) स्त्री की योनि में छोड़ा जात है यानी वीर्यसेचन होता है। गतिशील शुक्राणु तेजी से तैरते हुए गर्भाशम ग्रीवा से होकर गर्भाशय में प्रवेश करते हैं और अंततः अंडवाहिनी नली के तुबिका क्षेत्र (एंपुला) तक पहुँचते हैं। इसी बीच अंडाशय द्वारा मोचित अंडाणु भी तुंबिका क्षेत्र तक पहुँच जाता है, जहाँ निषेचन की क्रिया संपन्न होती है। निषेचन तभी हो सकता है यदि अंडाणु तथा शुक्राणु दोनों एक ही समय में तुंबिका क्षेत्र पर पहुँच जाएँ यही कारण है जिससे कि सभी संभोग क्रियाएँ निषेचन व सगर्भता की स्थिति में नहीं पहुँच पाती है।

शुक्राण के साथ एक अंडाणु के संलयन की प्रक्रिया को निषेचन (फर्टिलाइजेशन) कहते हैं। निषेचन के दौरान एक शुक्राणु अंडाणु के पारदर्शी अंडावरण (जोना पेल्युसिडा) स्तर के संपर्क में आता है और अतिरिक्त शुक्राणुओं के प्रवेश को रोकने हेतु उसके उक्त स्तर में बदलाव प्रेरित करता है। इस प्रकार यह सुनिश्चित हो जाता है कि एक अंडाणु को केवल एक ही शुक्राणु निषेचित कर सकता है। अग्रपिंडक का स्रंवण शुक्राणु की पारदर्शी अंडावरण के माध्यम से अंडाणु के कोशिका द्रव्य (साइटोप्लाज्म) तथा प्लाज्मा भित्ति में प्रवेश करने में मदद करता है। यह द्वितीय अंडक के अर्धसूत्री विभाजन को प्रेरित करता हे। दूसरा

अर्धसूची विभाजन भी असमान होता है और इसके फलस्वरूप द्वितीय ध्रुवीय पिंड (सेकेंडरी पोलर बॉडी) की रचना होती है और एक अगुणित अंडाणु (डिंबाणु प्रसू या ऊओटिड) बनता है। शीध्र ही शुक्राणु का अंडाणु के अनुणित केंद्रक के साथ संलयन (फ्युजन) होता है, जिससे कि द्विगुणित युग्मनज (जाइगोट) की रचना होती है।

हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इसी चरण में शिशु के लिंग का निर्धारण यानी लड़का या लड़की का होना निश्चित हो जाता है। आइए! देखें यह कैसे होता है? जैसे कि आप जानते हैं कि स्त्री में गुणसूत्र का स्वरूप XX है तथा पुरुष में XY होता है। इसलिए स्त्री (अंडाणु) द्वारा उत्पादित सभी अगुणित युग्मकों में X लिंग गुणसूत्र होते हैं जबकि पुरुष युग्मकों (शुक्राणुओं) में लिंग गुण सूत्र होते हैं और दूसरे 50 प्रतिशत शुक्राणु में लिंग गुणसूत्र होते हैं। इसलिए पुरूष एंव स्त्री युग्मकों के संलयन के पश्चात् युग्मनज में या तो XX या XY लिंग गुणसूत्र की संभावना होगी। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि X या Y लिंग गुणसूत्र वाले शुक्राणुओं में से कौन अंडाणु का निषेचन करता है। जिस युग्मनज में XX गुणसूत्र होंगे वह एक मादा शिशु (लड़की) के रूप में जबकि XY गुणसूत्र वाला युग्मनज नर शिशु (लड़का) के रूप में विकसित होगा। इसी कारण कहा जाता है कि वैज्ञानिक रूप से यह कहना सत्य है कि एक शिशु के लिंग का निर्धारण उसके पिता द्वारा होता है न कि माता के द्वारा।

समसूत्री विभाजन (विदलन / क्लीवेज) की शुरूआत तब हो जाती है जबकि युग्मनज अंडवाहिनी के संकीर्ण पथ (इस्थमस) से गर्भाशय की ओर बढ़ता है और तब यह 2,4, 8, 16 संतति कोशकाओं, जिसे कोरकखंड (ब्लास्टोमीयर्स) कहते हैं। की रचना करता है। 8 से 16 कोरकखंडों वाले भ्रूण को तूतक (मोरूला) कहते हैं यह तूतक लगातार विभाजित होता रहता है और जैसे–जैसे यह गर्भाशय की ओर बढ़ता है, यह कोरकपुटी (ब्लास्टोसिस्ट) के रूप में परिवर्तित हो जाता हे एक कोरकपुटी (ब्लास्टोसिस्ट) के रूप में परिवर्तित हो जाता है एक कोरकपुटी में कोरकखंड बाहरी परत में व्यवस्थित होते हैं जिसे पोषकोरक (ट्रोफोब्लास्ट) कहते हैं। कोशिकाओं के भीतरी समूह, जो पोषकोरक से जुड़े होते हैं, उन्हें अंतर कोशिका समूह (इनर सेलमास) कहते हैं। अब पोपकोरक स्तर गर्भाशय अंतःस्तर से संलग्न हो जाता है और अन्तर कोशिका समूह भ्रूण के रूप में अलग–अलग या विभेदित हो जाता है। संलग्न होने के बाद गर्भाशयी कोशिकाएँ तेजी से विभक्त होती हैं और कोरकपुटी को आवृत्त कर लेती हैं। इसके परिणामस्वरूप कोरकपुटी गर्भाशय अंतः स्तर में अन्तःस्थापित (इंबेडंड) हो जाती है इसे ही अंतर्रोपण (इम्प्लांटेशन) कहते हैं और बाद में यह सगर्भता का रूप धारण कर लेती है।

3. भ्रूणीय विकास (Embryonic Development) :

विकासभ्रूण के अंतर्रोपण के पश्चात् पोषकोरक पर अंगुली–जैसी संरचनाएँ उभरती हैं, जिन्हें जरायु अंकुरक गर्भाशयी ऊतक और मातृ रक्त से आच्छादित होते हैं। जरायु अंकुरक और गर्भाशयी ऊतक एक

दूसरे के साथ अंतरांगंलियुक्त (इंटरडिजिटेटेड) हो जाते हैं तथा संयुक्त रूप से परिवर्धनशील भ्रूण (गर्भ) और मातृ शरीर के साथ एक संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई को गठित करते हैं, जिन्हें अपरा (प्लैसेंटा) कहा जाता है।

अपरा, भ्रूण को ऑक्सीजन तथा पोषण की आपूर्ति एंव कार्बन डाइऑक्साइड तथा भ्रूण द्वारा उत्पन्न उत्सर्जा (एक्सक्रेटरी) अवशिष्ट पदार्थो को बाहर निकालने का कार्य करता है। यह अपरा एक नाभि रज्जु (अम्बिलिकल कॉर्ड) द्वारा भ्रूण से जुड़ा होता है, जो भ्रूण तक सभी आवश्यक पदार्थो का अंदर लाने तथा बाहर ले जाने के कार्य में मदद करता है। अपरा, अंतःस्रावी ऊतकों का भी कार्य करता है और अनेकों हॉर्मोन जैसे कि मानव जरायु गोनैडोट्रॉपिन (ह्यूमन कोरिऑनिक गोनैडोट्रॉपिन एच सी जी) मानव अपरा लैक्टोजन (ह्यूमन प्लेसैंटल लैक्टोजन – एच पी एल) ऐस्ट्रोजन, प्रोजेस्टोजन, आदि उत्पादित करता है। सगर्भता के उत्तरार्ध की अवधि में अंडाशय द्वारा रिलैक्सिन नामक एक हॉर्मोन भी स्रावित किया जाता है। हमें यह याद रखना चाहिए कि एच सी जी, एच पी एल और रिलैक्सिन स्त्री में केवल सगर्भता की स्थिति में ही उत्पादित होते हैं। इसके अलावा दूसरे हॉमार्नो जैसे एस्ट्रोजन, प्रोजेस्टोजन, कॉर्टिसाल, प्रोलैक्टिन, थाइरॉक्सिन, आदि की भी मात्रा सगर्भता के दौरान माता के रक्त में कई गुणा बढ़ जाती है। इन हॉर्मोनों के उत्पादन में बढोत्तरी होना भी भ्रूण वृद्धि, माता की उपापचयी क्रियाओं में परिवर्तनों तथा सगर्भता को बनाए रखने के लिए आवश्यक होता है।

अंतर्रोपण के तुरंत बाद अन्तर कोशिका समूह (भ्रूण) बाह्यत्वचा (एक्टोडर्म) नामक एक बाहरी स्तर और अंतस्त्वचा (एंडोडर्म) नामक एक भीतरी स्तर में विभेदित हो जात है। इस बाह्य त्वचा और अंतस्त्वचा के बीच जल्द ही मध्यजनस्तर (मेजोडर्म) प्रकट होता है। ये तीनों ही स्तर व्यस्कों में सभी ऊतकों (अंगो) का निर्माण करते हैं। यहाँ यह उललेख करना आवश्यक है कि इस अन्तर कोशिका समूह मे कुछ निश्चित तरह की कोशिकाएँ, जिन्हें स्टेम कोशिकाएँ (स्टेम सेल्स) कहते हैं, समाहित रहती है, जिनमें यह क्षमता होती है कि वे सभी अंगों एवं ऊतकों को उत्पन्न कर सकती हैं।

सगर्भता के विभिन्न महीनों में भ्रूण परिवर्धन के प्रमुख लक्षण क्या होते हैं? मानव में सगर्भता की अवधि 9 महीने की होती है। मानव में एक महीने की सर्गभता के बाद भ्रूण का हृदय निर्मित होता है। एक बढ़ते हुए भ्रूण का पहला संकेत स्टेथोस्कोप से उसके हृदय की धड़कनों को ध्यानपूर्वक सुना जा सकता है। सगर्भता के दूसरे माह के अन्त तक भ्रूण के पाद और अंगुलियाँ विकसित होती हैं। 12वें सप्ताह (पहली तिमाही) के अन्तः तक लगभग सभी प्रमुख अंग–तंगों की रचना हो जाती है, उदाहरण के लिए पाद एवं बाह्य जनन अंग अच्छी तरह विकसित हो जाते हैं। गर्भावस्था के पाचवें माह के दौरान गर्भ की पहली गतिशीलता और सिर पर बालों का उग–आना सातान्यतः देखा जा सकता है। लगभग 24वें सप्ताह के अन्त तक (दूसरी तिमाही) के अंत में, पूरी शरीर पर कोमल बाल निकल आते हैं, आँखों की पलकें अलग–अलग हो जाती हैं

और बरौनियाँ बन जाती हैं। गर्भावस्था के 9वें माह के अन्त तक गर्भ पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है और प्रसव के लिए तैयार हो जाता है।

प्रसव एवं दुग्धस्रवण : मानव में सगर्भता की औसत अवधि लगभग 9.5 माह होती है जिसे गर्भावधि (जेस्टेशन पीरियड) कहते हैं। सगर्भता के अंत में गर्भाशय के जोरदार संकुचनों के कारण गर्भ बाहर निकल आता है। गर्भ के बाहर निकलने की इस क्रिया को शिशु–जन्म या प्रसव (पारट्युरिशन) कहा जाता है। प्रसव एक जटिल तंत्रिअंतःस्रावी (न्यूरोइन्डोक्राइन) क्रियाविधि द्वारा प्रेरित होता है। प्रसव के लिए संकेत पूर्णविकसित गर्भ एवं अपरा से उत्पन्न होते हैं जो हल्के (माइल्ड) गर्भाश्य संकुचनों को प्रेरित करते हैं जिन्हें गर्भ उत्क्षेपन प्रतिवर्त (फीटल इजेक्शन रेफलेक्स) कहते हैं। यह मातृ पीयूष ग्रंथि से ऑक्सीटोसिन के निकलने की क्रिया को सक्रिय बनाती है। ऑक्सीटोसिन गर्भाशय पेशी पर कार्य करता है और इसके कारण जोर–जोर से गर्भाशय सकुंचन होन लगते हैं। गर्भाशय संकुचन ऑक्सीटोसिन के अधिक स्रवण को उद्दीपित करता है। गर्भाशय संकुचनों तथा ऑक्सीटोसिन स्राव के बीच लगातार उद्दीपक प्रतिवर्त के कारण यह संकुचन तीव्र से तीव्रतर होता जाता है। इससे शिशु, माँ के गर्भाशय से जनन नाल द्वारा बाहर आ जाता है यानी प्रसव सम्पन्न हो जाता है। शिशु के जन्म के तुरन्त बाद ही अपरा भी गर्भाशय से बाहर निकल जाता है।

स्त्री की स्तन ग्रंथियों में सगर्भता के दौरान कई प्रकार के बदलाव आते हैं और सगर्भता के अंत तक इनसे दूध उत्पन्न होने लगता है। इस प्रक्रिया को दुग्धस्रवण (लैक्टेशन) कहते है। यह माँ को अपने नवजात शिशु की आहार पूर्ति कराने में मदद देता है। दुग्धस्रवण के आरंभिक कुछ दिनों तक जो दूध निकलता है उसे प्रथम स्तन्य या खीस (कोलोस्ट्रम) कहते हैं, जिसमें कई प्रकार के प्रतिरक्षी (एंटीबॉडी) तत्व समाहित होते हैं जो नवजात शिशु में प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न करने के लिए परम आवश्यक होते हैं। एक स्वस्थ शिशु की वृद्धि एवं विकास के लिए प्रसव के बाद आरंभ के कुछ माह तक शिशु को स्तनपान कराने की सलाह डॉक्टर देते हैं।

प्रजनन तंत्र पर योग का प्रभाव

सभी योग अभ्यास और योग ध्यान हमारे तनाव के स्तर को कम करके और हमारे दिमाग और भावनाओं को शांत और संतुलित करके प्रजनन प्रणाली की मदद करते हैं। हमारा तंत्रिका तंत्र हमारे पूरे अंतःस्रावी तंत्र को प्रभावित करता है, जिनमें से प्रजनन प्रणाली भी इसी का एक हिस्सा है और हमारे तनाव के स्तर के आधार पर हमारे शरीर की सामान्य होमियोस्टेसिस के साथ–साथ हमारे चयापचय को बढ़ाने या घटाने जैसे विशिष्ट प्रभावों को प्रभावित किया जा सकता है। कुछ योग आसन महिलाओं एवं पुरूषों के प्रजनन अंगों में बेहतर रक्त प्रवाह कर उन अंगों को आराम देने में मदद करते हैं।

1. प्रजनन तंत्र पर आसानों का प्रभाव – मार्जरी आसन रीढ़, कूल्हे, पेट और कंधों को आराम पहुँचाते हैं।

अधोमुख शवासन, अर्द्ध चन्द्रासन, बालासन, वीरभद्रासन, उथित त्रिकोणासन, वृक्षासन, उत्तानपादासन, भुंजगासन, जानु सिरासन, उपविष्ठा कोणासन, वीरासन, सेतुबन्ध आसन, विपरीतकरणी आसन, मर्कटासन, सूक्ष्मव्यायाम, चक्कीचालासन, शवासन तथा नौकासन आदि स्त्री जनन अंगों की मालिश करते हैं और उन अंगों तक रक्त के प्रवाह को बढ़ाते हैं जिससे इन अंगों में पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन पहुँचती है और ये अंग अपना कार्य अच्छी तरह से कर पाते हैं।

योग पुरूष जनन अंगों की मांसपेशियों की ताकत और लचीलापन को बनाए रखता है और उसके परिसंरचरण में सुधार करता है। नियमित योग अभ्यास में संलग्न होने से शुक्राणु की गतिशीलता की गुणवत्ता में सुधार के साथ–साथ पुरूष के शुक्राणुओं की संख्या में भी सुधार आता है, प्रोस्टेट रोग की संभावना को कम करने और बढ़े हुए प्रोस्टेट के आकार को कम करने में मदद करता है। गरूड़ासन ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता को बढ़ाता है। मानसिक समरसता लाता है। योग पुरूष प्रजनन अंगों पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है और विशेष रूप से प्रोस्टेट समस्याओं को कम करता है। धनुरासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, गौमुखासन, तितली आसन, कौवाचालासन, सूक्ष्मव्यायाम आदि पुरूष जनन अंग तक रक्त के प्रवाह को बढ़ाते हैं।

योग अभ्यास और एक योग जीवन शैली हमारे हार्मोन के उत्पादन को बढ़ावा देने और फिर उन्हें संतुलित बनाए रखने में मदद कर सकते हैं। एक महिला अपने मासिक धर्मचक्र के दौरान या जो गर्भवती हैं या रजोनिवृत्ति के दौरान उसके स्वास्थ्य की स्थिति देख सकती है। उदाहरण के लिए, यदि आप दर्दनाक महावारी तनाव का सामना कर रहे हैं, या यदि रजोनिवृत्ति के लिए अग्रणी हैं और आपके हार्मोन संतुलन से बाहर हैं, तो ऐसी स्थित में योगमय जीवन अपनाने, संतुलित जीवन जीने से आपको कम हार्मोन उत्पादन को बढ़ावा देने में मदद मिलेगी, और उन्हें दन समस्याओं में राहत मिलती है।

2. प्रजनन तंत्र पर मुद्राओं का प्रभाव– मुद्राओं में मूलबन्ध प्रजनन अंगों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है और पुरूषों में शुक्राणुओं की उत्पत्ति को बढ़ाता है। मूलबन्ध का नियमित अभ्यास से हार्निया जैसी बीमारियों की सम्भावनाएं घट जाती हैं। मूलबन्ध प्रजनन अंगों को नियंत्रण में करने की भी अनुमति प्रदान करता है।

3. प्रजनन तंत्र पर प्राणायाम का प्रभाव– प्राणायाम प्रजनन अंगों में ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा को पहुँचाते हैं। तथा उन अंगों की क्रियाशीलता को बढ़ाते हैं। आज के दौर में मनुष्य कई सारी शारीरिक बीमारियों से घिरा हुआ है जिसका मूल कारण तनाव है। प्राणायाम तनाव को कम करके प्रजनन सम्बन्धी बीमारियों को दूर करता है। अनुलोम–विलोम प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम, कपालभाति, भस्त्रिका, शीतली, सीतकार प्राणायाम आदि प्रजनन तंत्र को मजबूत बनाते हैं।

4. प्रजनन तंत्र पर ध्यान का प्रभाव – ध्यान हमारे मन को शांत और संतुलित करता है ध्यान का अभ्यास हमारे विचारों को शांत करता है जिसके कारण मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाली संवेदनायें भी कम होती है और हार्मोन्स का

स्राव भी कम होता है। इस प्रकार ध्यान मन में उठने वाली कामुक भावनाओं पर नियंत्रण करता है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

1. मानव शरीर के किस भाग में शुक्राणु डिम्ब को निषेचित करता है?
2. शुक्राणुओं का निर्माण किस जनन अंग में होता है?
3. नर में पाई जाने वाली जनन ग्रंथि कौन सी है?
4. रजो चक्र (Menstruation Cycle) का नियमन करने वाली कौन सी ग्रंथि है?
5. किस हार्मोन को प्रेगनेंसी हॉर्मोन कहते है?

7.7 सारांश

उपरोक्त इकाई में आपने जाना कि पुरूष एवं स्त्री में एक जटिल, सुविकसित तथा एक दूसरे से अलग प्रजनन अंग होते हैं। जिनमें पुरूष प्रजनन तंत्र में एक जोड़ा वृषण होता है जिसमें शुक्राणुओं का निर्माण होता है। अधिवृषण शुक्राणुओं को परिपक्व करता है एवं उसका संग्रहण करता है। शुक्रवाहिका शुक्राणुओं को मूत्रमार्ग तक ले जाने का कार्य करती है। शुक्राशय तथा प्रोस्टेट ग्रन्थि वीर्य का निर्माण करती है। काउपर ग्रन्थि मूत्र के अम्लीय प्रभाव को कम करता है तथा मूत्रमार्ग को चिकनाहट प्रदान करता है। मूत्रमार्ग मूत्र तथा वीर्य को शारीर से बाहर निकालने का कार्य करता है। शिश्न पुरूषा का बाह्य जननांग है जो प्रजनन प्रक्रिया के दौरान स्त्री योनि में प्रवेश करता हैं तथा वीर्य को निकालता है। शुक्राणुाअें के अधिवृषण, शुक्रवाहिका, शुक्राशय, प्रोस्टेट ग्रन्थि तथा काउपर ग्रन्थि से गुजरते हुये अनेक तरल पदार्थ इसमे मिल जाते हैं। शुक्राणु से मिश्रित यह तरल वीर्य कहलाता है।

स्त्री प्रजनन तंत्र में एक जोड़ा अण्डाशय होता है जो युग्मक का निर्माण करता है। अण्डवाहिनी अण्डाशय तथा गर्भाशय से जुड़ी होती है। अण्डवाहिनी का मुख्य कार्य अण्डाणुओं का संग्रह करना होता है। पुरूष के शुक्राणु द्वारा स्त्री के अण्डाणुं का निषेचन अण्डवाहिनी के एम्पुला नामक भाग में होता है। इसके पश्चात निषेचित अण्डाणु गर्भाशय में प्रवेश कर जाता है और शिशु के रूप में जन्म लेने के लिये गर्भाशय में ही विकसित होने लगता है।

7.8 शब्दावली

1. डिम्बवाहिनी – अण्डवाहिनी
2. प्रेग्नेसी – गर्भावस्था
3. रजोचक्र – मासिक चक्र

4. शिश्न – लिंग (पुरूषो का बाह्य जनन अंग)

5. योनि – लिंग (स्त्रियों का बाह्य जनन अंग)

7.9 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. डिम्बवाहिनी नली

2 वृषण में

3 प्रोस्टेट ग्रंथि

4 पीयूष ग्रंथि

5 प्रोजिस्टीरॉन

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रस्तोगी, डॉ. वीरबाला (2016), जैव रसायन तथा कार्यकी, केदारनाथ रामनाथ
2. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश (2008), मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन, आगरा
3. दीक्षित राजेश (2002), शरीर रचना क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
4. शर्मा, डॉ. ताराचन्द्र (1999), आयुर्वेदिक शरीर रचना विज्ञान, नाडा पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक
5. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009), एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, भाषा भवन, मथुरा

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– प्रजनन तंत्र क्या है। स्त्री प्रजनन अंगों की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 2– प्रजनन तंत्र को समझाते हुए मानव प्रजनन की क्रियाविधि को समझाइए?

प्रश्न 3– पुरूष जननांगों की व्याख्या करते हुए प्रजनन की क्रियाविधि को समझाइए?

इकाई 8 – परिसंचरण तंत्र – संरचना व कार्य

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 परिसंचरण तंत्र

8.4 रूधिर परिसंचरण तंत्र

- 8.4.1 हृदय की संरचना
- 8.4.2 हृदय के कक्ष
- 8.4.3 हृदय की धड़कन
- 8.4.4 हृदय–चक्र
- 8.4.5 हृदय के कार्य
- 8.4.6 हृदय ध्वनियाँ
- 8.4.7 हृदय की संचालन प्रणाली
- 8.4.8 हृदय की रक्त आपूर्ति

8.5 रूधिर वाहिनियाँ

- 8.5.1 धमनियाँ
- 8.5.2 शिराएँ
- 8.5.3 केशिकाएँ

8.6 रूधिर दाब या रक्त चाप

8.7 मनुष्य का धमनीं तन्त्र

8.8 मनुष्य का शिरा तन्त्र

8.9 **रुधिर** एवं लसीका रिसंचरण तंत्र

8.10 सारांश

8.11 शब्दावली

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने श्वसन तंत्र की संरचना एवं कार्य का अध्ययन किया और जाना कि किस प्रकार श्वसनांगों में वातावरण की वायु से ऑक्सीजन लेकर शरीर के अंगों की कोशिकाओं तक पहुँचाया जाता है और कोशिकाओं से कार्बनडाइऑक्साइड लेकर श्वसनांगों द्वारा वापस वातावरण में छोड़ दिया जाता है। मोटर की टंकी में पेट्रोल भरने से कोई लाभ नहीं यदि पेट्रोल की टंकी से इंजन में ले जाने वाली पाइप लाइन न हो। इसी प्रकार मानव शरीर में भी आहारनाल में भोजन पचाने एवं श्वसनांगों में वातावरण की वायु से ऑक्सीजन (O_2) ग्रहण करने मात्र से कोई लाभ नहीं, जब तक कि पचे हुए पोषक पदार्थो एवं ऑक्सीजन (O_2) को इन अंगों से शरीर की सभी कोशिकाओं में पहुँचाने की व्यवस्था न हो। अतः मानव शरीर में एक तरल के माध्यम से पूर्ण शरीर में सन्तुलन बनाए रखने हेतु पाइप लाइनों का एक विस्तृत तन्त्र होता है। इसे परिसंचरण तंत्र (circulatory sysgtem) कहते हैं। प्रस्तुत इकाई में आप हृदय की संरचना एवं कार्य तथा रूधिर वाहिनियों का अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन के बाद छात्र –

- हृदय की संरचना एवं कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।
- हृदय चक्र का वर्णन कर सकेंगे।
- रूधिर वाहिनियों का संक्षिप्त विवरण कर सकेंगे।
- रक्त चाप पर चर्चा कर सकेंगे।

8.3 परिसंचरण तंत्र

मानव तथा उच्च श्रेणी के जन्तुओं के शरीर के अन्दर पदार्थो का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने जाने के लिये नलिकाओं से बना तंत्र परिसंचरण तंत्र कहलाता है। इसकी खोज विलियम हार्वे ने की थी। शरीर एवं वातावरण के बीच तथा शरीर के विभिन्न ऊतकों के बीच पदार्थों का निरन्तर रासायनिक आदान–प्रदान (chemical exchange) परिसंचरण तंत्र के माध्यम से होता है। इस प्रकार पाचन तंत्र से पचे हुए पोषक पदार्थों, श्वसनांगों से ऑक्सीजन (O_2) तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से हॉरमोन्स को शरीर कोशिकाओं में वितरित करने तथा कोशिकाओं से कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) को श्वसनांगों में और अमोनिया, यूरिया आदि उत्सर्जी पदार्थों को उत्सर्जी अंगों में पहुँचाने का काम परिसंचरण तंत्र करता है।

रूधिर के माध्यम से देखा जाये तो परिसंचरण दो तरह का होता है–

1. खुला परिसंचरण तंत्र – इसमें रक्त कुछ देर तक नलिकाओं में बहने के बाद खुले स्थान पर बहता है। इस तंत्र में दाब और गति कम होती है। परिसंचरण भी कम समय में पूरा हो जाता है।

2. बन्द परिसंचरण तंत्र – रक्त का प्रवाह बन्द नलिकाओं में होता है। इस तत्र में दाब और गति बहुत अधिक होती है। शरीर में उपस्थित पदार्थ ऊतक द्रव्य के द्वारा स्थानान्तरित होता है।

परिसंचरण तन्त्र के विभिन्न कार्य निम्नलिखित हैं–

(i) यह शरीर के विभिन्न भागों तक ग्लूकोज, विटामिन, वसीय अम्ल आदि को अवशोषित करके पहुँचाता है।

(ii) यह शरीर के विभिन्न भागों से उत्सर्जी अंगों तक यूरिक अम्ल, यूरिया आदि विभिन्न नाइट्रोजनी अवशिष्ट पदार्थों को पहुँचाता है।

(iii) यह अन्तःस्रावी ग्रन्थि से निकले हार्मोन को लक्षित अंगों तक ले जाता है।

(iv) यह ऑक्सीजन का परिवहन फेफड़ों से ऊतक एवं कोशिकाओं तक करता है।

(v) शरीर–ताप के नियन्त्रण में परिसंचरण तन्त्र का महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

उपरोक्त कार्यों के क्रियान्वयन के लिए मनुष्य के परिसंचरण तंत्र में दो प्रकार के तरल होते हैं– रूधिर (blood) एवं लसिका (lymph)। ये दोनों तरल, एक–दूसरे से पृथक, अनेक छोटी–छोटी वाहिनियों द्वारा शरीर के सभी भागों में पहुँचते हैं। अतः परिसंचरण तंत्र को दो तंत्रों में बांटा जाता है –

(1) रूधिर परिसंचरण तंत्र (Blood Circulatory or Vascular System)

(2) लसिका तन्त्र (Lymphatic System)

8.4 रूधिर परिसंचरण तंत्र

रूधिर सम्पूर्ण शरीर में पदार्थो का परिवहन करने वाला एक तरल माध्यम है। मानव शरीर में बंद एवं दोहरा परिसंचरण होता है। रूधिर को इसके पाइप लाइन तंत्र (pipeline system) अर्थात रूधिरवाहिनियों (blood vessels) में पम्प करने का काम स्पंदनशील (pulsatite) हृदय (heart) करता है। इसीलिए, रूधिर संवहन तन्त्र को हृदयीसंचरण तंत्र (cardio-vascular system) भी कहते हैं। रूधिर संवहन तंत्र को प्रमुख दो भागों में बाँटते हैं– (1) हृदय (heart), (2) रूधिर वाहिनियाँ (Blood Vessels)।

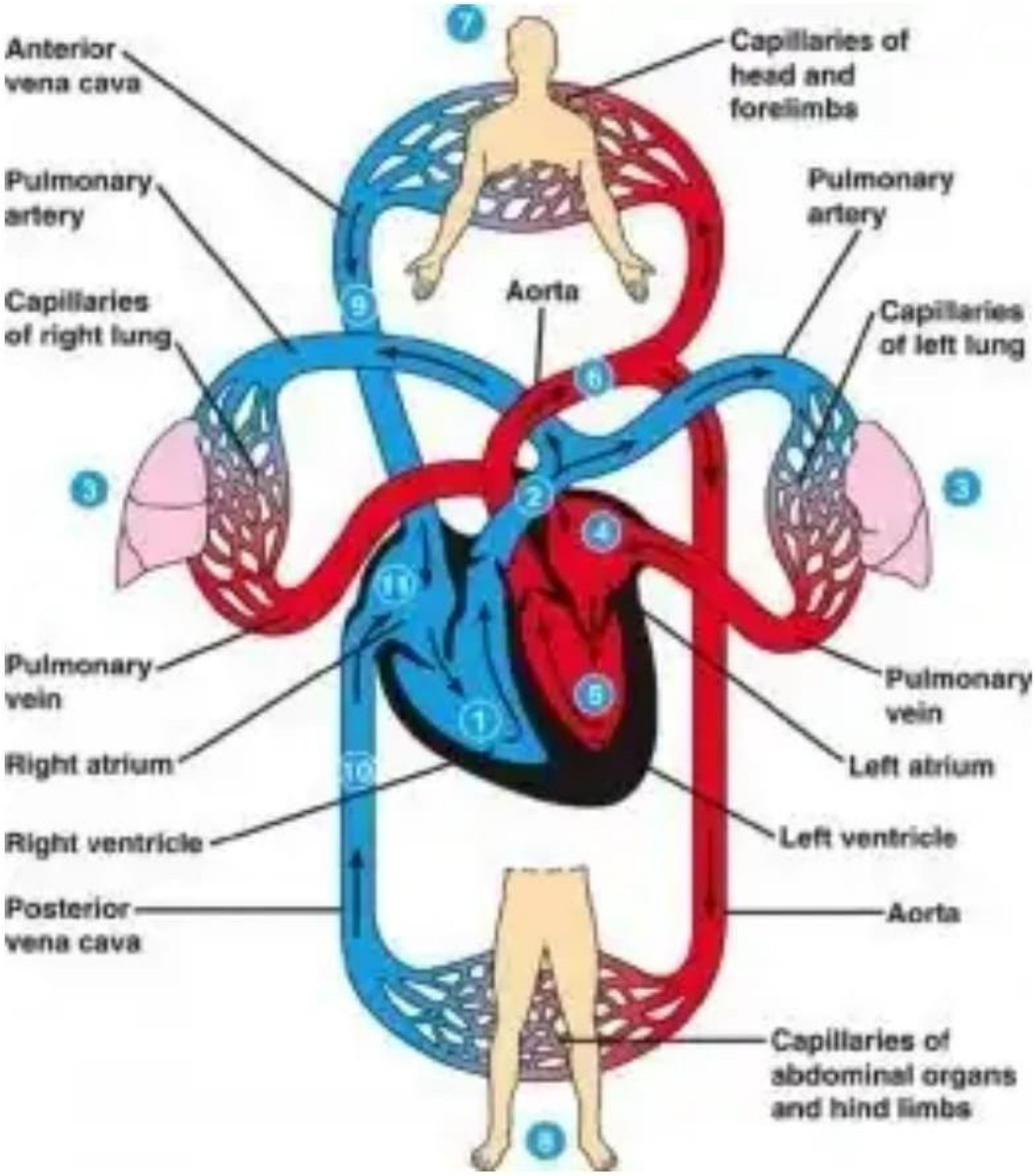

The human circulatory system

8.4.1 हृदय की सरचना

Anterior View:

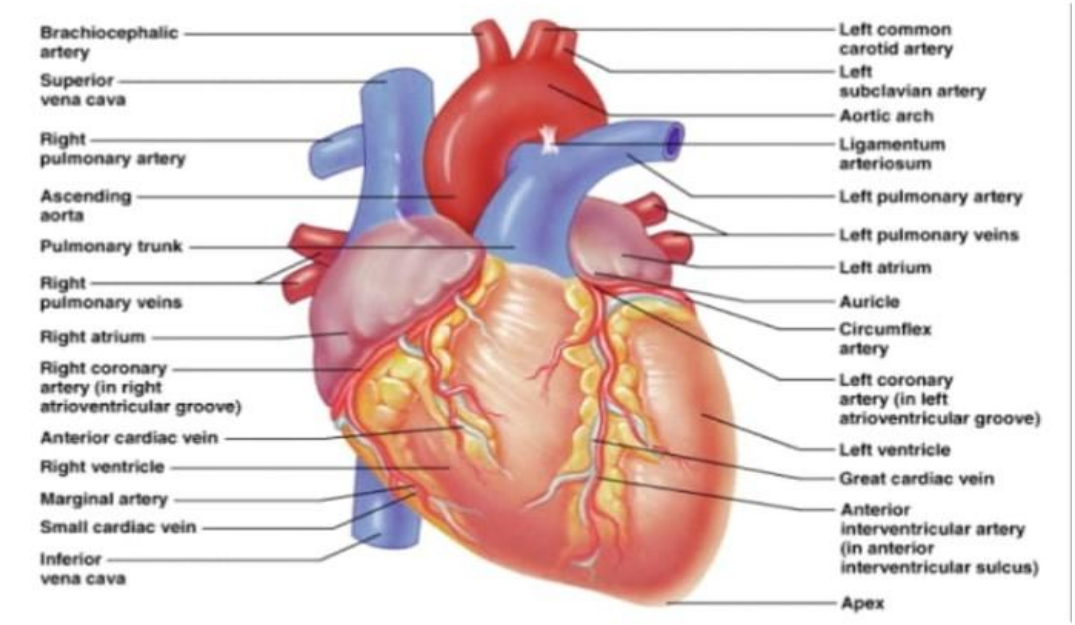

Posterior View

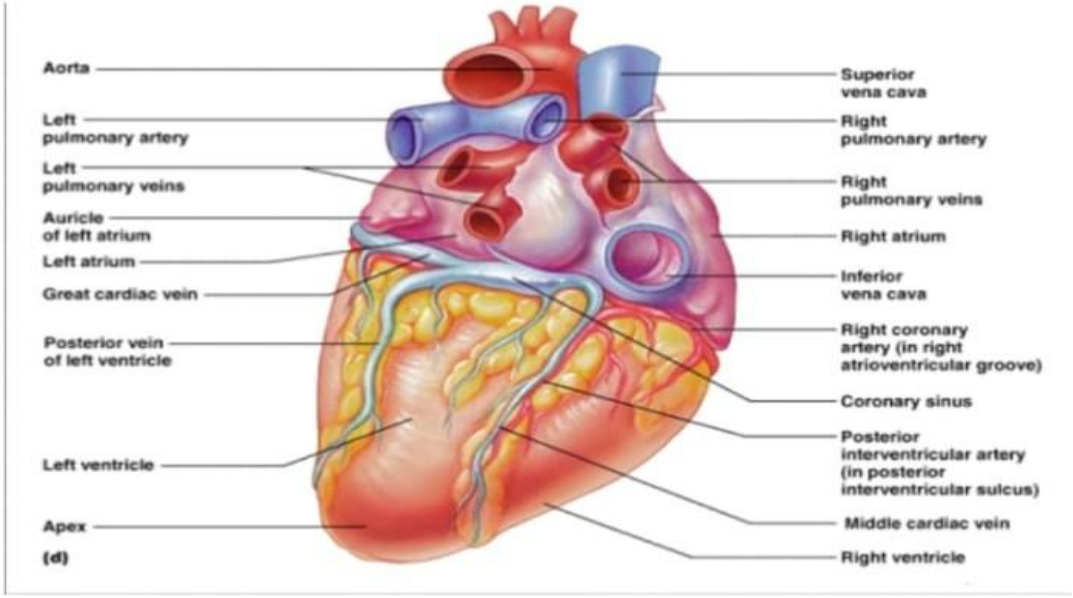

हृदय रूधिर को बहने हेतु दाब प्रदान करने वाला पम्प है। मानव हृदय एक पेशीय (Muscular) एवं शंक्वाकार (conical) अंग है जो वक्ष भाग के बीच के खाली स्थान (Mediastinal space) में फेफड़ों के बीच तथा तन्तुपट (diaphragm) के ठीक ऊपर, आगे की ओर स्थित रहता है। यह परिसंचरण तंत्र का केन्द्रीय पम्पिंग अंग है, जो रूधिर वाहिनियों के माध्यम से रक्त को शरीर के सभी अंगों तक पहुँचाता है। हृदय एक खोखला अंग है। यह हमारी बन्द मुट्ठी के बराबर होता है, यह लगभग 12 सेमी. लम्बा, सबसे चौड़े भाग में 1 सेमी. चौड़ा तथा 6 सेमी. मोटा होता है। एक सामान्य व्यस्क व्यक्ति का हृदय का भार लगलग 300–400 ग्राम होता है। हृदय एक दोहरी झिल्ली (Membrane) के अन्दर रहता है जिसे पेरीकार्डियम (pericardium) कहते हैं। दोनों झिल्लियों के मध्य एक द्रव भरा होता है जिसे पेरीकार्डियल द्रव (pericardial fluid) कहते हैं। यह द्रव बाहरी आघातों से हृदय की सुरक्षा करता है। हृदय की भित्ती हृद पेशियों (Cardiac Muscles) की बनी होती है जो शाखान्वित तथा अनैच्छिक होती है अर्थात् शाखाओं जैसी हृदय पर फैली रहती हैं और हमारी इच्छा के अनुसार काम नहीं करती हैं। जो बिना रूके लगातार जीवन भर संकुचन तथा शिथिलन करती रहती है।

8.4.2 हृदय के कक्ष (Chambers of Heart)

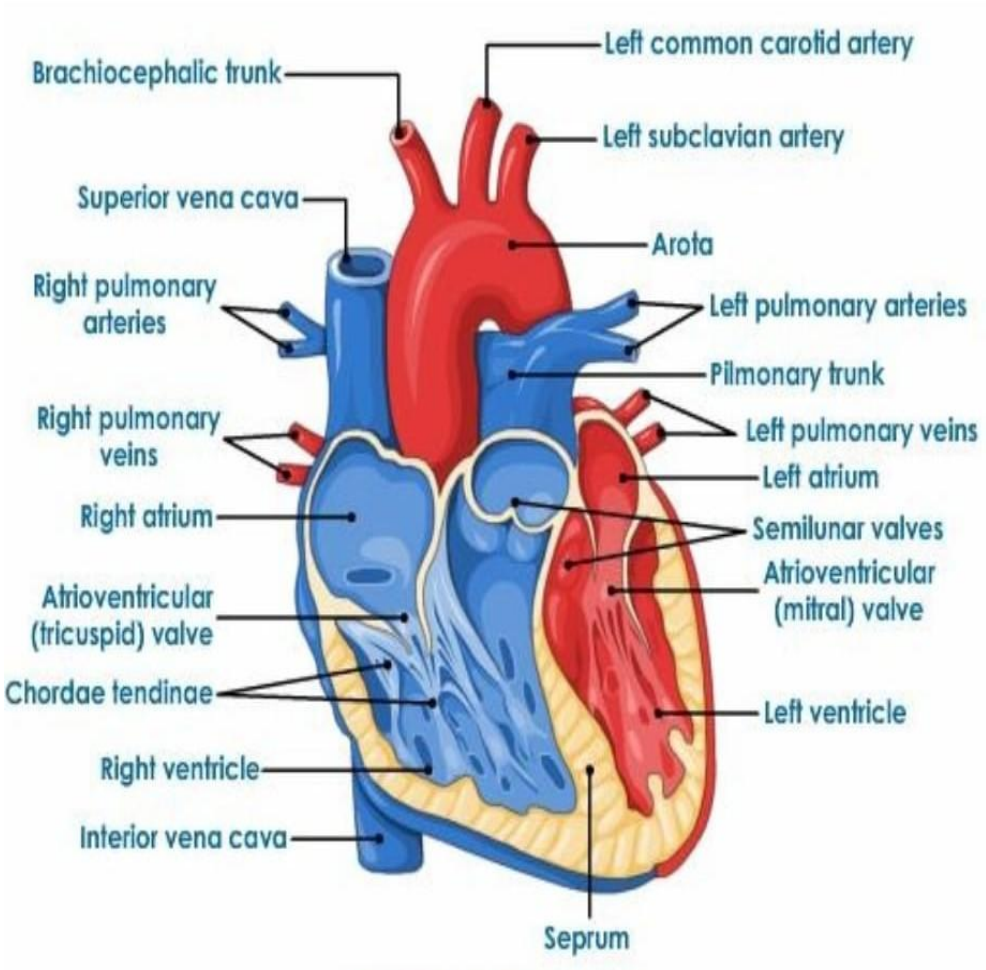

Internal View of the Heart

मनुष्य के हृदय की आन्तरिक संरचना में हृदय चार वेशमों का बना होता है, दो अलिन्द तथा 2 निलय।दोनों अलिन्द अन्तर अलिन्दीय पट्टी (Inter Articular Septum) द्वारा पृथक रहते हैं। भ्रूण अवस्था में हृदय की अन्तर आलिन्दीय भित्ति पर एक छिद्र पाया जाता है, जिसे फोरामेन ओवेल (Foramen ovale) कहते हैं। वयस्कों में यह छिद्र बन्द होकर एक अवशेष रूप में रह जाता है।

दाहिनी अलिन्द में मोटी महाशिरायें अलग–अलग छिद्रों द्वारा खुलती है, जिन्हें अग्र महाशिरा अर्थात् इन्फीरियर वेनाकॉवा (Inferior Venacava) तथा पश्च महाशिरा अर्थात सुपीरियर वेनाकॉवा (Superior Venacava) कहते हैं। दायें अलिन्द में फेफड़े से शुद्ध रक्त लाने वाली फुफ्फुसीय शिरायें (Pulmonary veins) आकर खुलती है। अलिन्द की भित्ति निलय की अपेक्षा पतली होती है जबकि निलय की भित्ती अलिन्द की अपेक्षा अधिक मोटी और मांसल होती है। दोनों असमान निलय आन्तर निलय पट्टी (Inter Ventricular Septum) द्वारा अलग होते हैं। दाहिने अलिन्द निलय छिद्र पर त्रि–कपाटीय वॉल्व (Tri-cuspid volve) तथा बायें निलय छिद्र पर द्वि–कपाटीय वाल्व (Bi-cuspid volve) होता है। कपाट हृदय रज्जुओं (Cardiac Tendinae) द्वारा निलय की भित्ती पर स्थित पेशीय स्तम्भों द्वारा जुड़े रहते हैं। ये रक्त को विपरीत दिशा में जाने से रोकते हैं। दाहिने निलय के अगले भाग के बांये छोर से एक फुफ्फुसीय महाधमनी (Pulmonary Artery) निकल कर फेफड़ों को अशुद्ध रक्त पहुंचाती है। नियल की गुंहा में जिस स्थान से पल्मोनरी महाधमिनी निकलती है वहां तीन अर्द्धचन्द्राकार कपाट होते हैं जो रक्त को निलय से पल्मोनरी महाधमिनी में तो जाने देते हैं परन्तु उसे निलय में वापस नहीं आने देते। इसी प्रकार बायें निलय से निकलने वाली दैहिक महाधमिनी के उद्‌गम स्थान पर भी तीन अर्द्धचन्द्राकार कपाट होते हैं जो रक्त को वापस निलय में नहीं आने देते।

8.4.3 हृदय की धड़कन या स्पंदन

हृदय के एक सुकंचन (Systole) और एक शिथिलन (Diastole) मिलकर हृदय धड़कन (Hear t Beat) का निर्माण करते हैं। जैसाकि आप जानते हैं कि हृदय पम्पिंग केन्द्र के रूप में जीवन भर बिना थके, लगातार अपनी पेशियों को सिकोड़ता है और रक्त को धमनियों में पहुंचाता है। इसके इस नियमित और क्रमिक संकुचन को ही इसकी धड़कन या स्पंदन कहते हैं। प्रत्येक स्पंदन की दो प्रावस्थायें होती हैं– प्रकुंचन तथा प्रसारण। प्रकुंचन की स्थित में हृदय का आयतन घट जाता है तथा रक्त तेजी से धमनियों में चला जाता है इसके विपरीत प्रसारण की स्थित में हृदय का आयतन वापस सामान्य हो जाता है। जिससे शिराओं में उपस्थित रक्त हृदय में आता है। स्पंदन के समय हृदय एक सथ नहीं सिकुड़ता बल्कि इसके विभिन्न भागों का स्पंदन एक नियमित क्रम में एक दूसरे के बाद होता है। अतः रक्त का प्रवाह इसमें एक ही दिशा में होता है और प्रत्येक स्पंदन को हृदीय चक्र (Cardiac Cycle) कहते है।

8.4.4 हृदय चक्र (cardiac cycle)

जैसा कि आपने ऊपर पढ़ा कि हृदय की प्रत्येक स्पंदन को हृदीय चक्र कहते हैं। जैसाकि आप जानते हैं

कि एक सिस्टोल और एक डायस्टोल मिलाकर हृदय चक्र बना। यह हृदय चक्र हृदय की धड़कन पर आधारित होता है अर्थात एक सामान्य स्वस्थ मनुष्य का हृदय एक मिनट में लगभग 70–75 बार धड़कता है। एक हृदयी चक्र का समय 60/75 = 0.8 सेकेण्ड होता है। 75 बार स्पंदन करके हमारा हृदय प्रति मिनट 5–6 लीटर रूधिर पम्प करता है। अर्थात हृदय का स्ट्रोक वाल्युम 70 ml होता है। हृदय चक्र के समय दोनो निलय हृदय को जोर से पम्प करने का काम करते हैं और प्रत्येक निलय से 70 ml रक्त हृदय से बाहर निकालने का कार्य करता है नियल की इस अवस्था को ही स्ट्रोक वाल्युम कहते हैं। हृदय चक्र के परिणामस्वरूप 5000 ml or 5 Ltr. रक्त बाहर निकलता है

Stroke Volume	x	Heart Rate	=	Cardiac Output
(70)		(72)		(5000 ml or 5r Ltr.)

व्यायाम या परिश्रम के समय स्पंदन दर काफी बढ़ जाती है। सामान्यतः प्रति मिनट हृदय द्वारा पम्प किएगए रूधिर को हृदयी निर्गत (cardiac output) कहते हैं। इस रूधिर का लगभग 10% अंश स्वयं हृद पेशियों में, 15% मस्तिष्क में, 25% पााचन तन्त्र के अंगों में, 20% वृक्कों में तथा 30% अन्य अंगों में जाता है। प्रत्येक हृदय चक्र में होने वाली प्रक्रियाओं को निम्नलिखित चार चरणों में बाँटा जाता है–

(i) अलिन्द संकुंचन (Artrial systole)- यह अवस्था लगभग 0.1 सेकेण्ड तक रहती है। इस अवस्था के दौरान दोनो अलिन्दों में साथ–साथ संकुचन होता है जिससे रक्त ट्राइकस्पिड एवं माइट्रल वाल्व के माध्यम से दोनों निलयों में पहुँच जाता है।

(ii) निलय प्रकुंचन (Ventricular systole)- यह अवस्था 0.3 सेकेण्ड तक रहती है। इस अवस्था के दौरान दोनों निलयों में साथ–साथ संकुचन होता है जिससे रक्त दाएं निलय में स्थित फुफ्फुसीय कपाट को खोलता हुआ फुफ्फुसीय धमनी (pulmonary artery) में चला जाता है और इससे होकर रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में चला जाता है। तथा बाएं निलय में स्थित महाधमनी वाल्व (arortic valve) यह अर्द्धचन्द्राकार कपाट को खोलता हुआ महाधमनी (aorta) में चला जाता है। जहां से इसकी शाखाओं और उपशाखाओं से होकर शुद्ध रक्त फेफड़ों को छोड़कर शरीर के हर भाग में पहुँच जाता है।

(iii) अलिन्द अनुशिथिलन (Artrial diastole)- यह अवस्था 0.7 सेकण्ड तक रहती है। इस अवस्था के दौरान अलिन्द शिथिल (relaxed) या आराम की स्थिति में रहते हैं तथा निलय संकुचित बने रहते हैं और अलिन्द शरीर के हृदय को आने वाली वृहत् शिराओं (vana vaca) से दुबारा भरने लगते हैं। दायाँ अलिन्द अग्र और पश्च महाशिराओं से और बायां अलिन्द चारों फुफ्फुसीय शिराओं से रक्त प्राप्त करता है।

(iv) निलय अनुशिथिलन (Ventricular diastole)- यह अवस्था 0.5 सेकण्ड होती है। इस अवस्था के दौरान दोनों निलय शिथिल रहते हैं और निलय अलिन्दों से आए रक्त से भर जाते हैं।

हृदय चक्र की शुरुआत अलिन्द प्रकुंचन (atrial systole) से होती है। यह घटना 0.1 सेकण्ड में समाप्त हो जाती है और अगले ही पल अलिन्द अनुशिथिलन (atrial diastole) शुरू हो जाता है, जो 0.7 सेकण्ड तक चलता है। अलिन्द–अनुशिथिलन के बाद दुबारा अलिन्द–प्रकुंचन की पुनरावृत्ति होती है। इसी प्रकार अलिन्द चक्र (atrial cycle) चलता रहता है, जिसकी कुल अवधि 0.8 सेकण्ड है।

अलिन्द–प्रकुंचन के बाद निलय–प्रकुंचन (Ventricular systole) शुरू होता है। इसकी अवधि 0.3 सेकण्ड होती है। इसके तुरन्त बाद निलय अनुशिथिलन (ventricular diastole) शुरू हो जाता है। इसकी अवधि 0.5 सेकण्ड होती है। इसकी समाप्ति पर दुबारा निलय–प्रकुंचन की आवृत्ति होती है। इस प्रकार निलय चक्र (ventricular cycle) चलता रहता है। इसकी अवधि कुल 0.8 सेकण्ड होती है।

निलयों का अनुशिथिलन 0.5 सेकण्ड की समयावधि में से 0.4 सेकण्ड की अवधि अलिन्द अनुशिथिलन की समसामायिक होती है। इस प्रकार हृदय चक्र की पूरी अवधि 0.8 सेकण्ड में से 0.4 सेकण्ड की ऐसी अवधि होती है जिसमें दोनों अलिन्द और दोनों निलय अनुशिथिलन की अवस्था में एक साथ रहते हैं अर्थात हृदय 0.4 सेकण्ड तक विश्राम करता है। इस अवस्था को सामान्य विश्राम का काल (general pause) भी कहा जाता है। बाकी 0.4 सेकण्ड कार्य करता है। इस प्रकार हृदय पूरे जीवन में अपने कार्यकाल के सिर्फ आधे समय में ही काम करता है और बाकी आधा समय विश्राम में बिताता है।

8.4.5 हृदय का कार्य (Function of the Heart)

हृदय एक पम्प है जिसका कार्य रक्त को अन्दर खींचना और धमनियों के द्वारा शरीर के अन्य भागों में पहुंचाना है। एक स्पंदन की समाप्ति से लेकर अगले स्पंदन की समाप्ति तक के चक्र को हृदयी चक्र अथवा कार्डिएक साइकिल कहते हैं।

हृदय का प्रमुख कार्य बिना थके जीवन भर शरीर के विभिन्न भागों में रक्त को पम्प करना होता है। शरीर के वभिन्न भागों से अशुद्ध रक्त शिराओं द्वारा हृदय को पहुंचाया जाता है। हृदय इस अशुद्ध रक्त को शुद्ध करने के लिये फेफड़ों में पहुंचाता है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये हृदय हर पल सिकुड़ता एवं शिथिल होता रहता है।

हृदय के सिकुड़ने को प्रकुंचन या सिस्टोल (Systole) कहते हैं तथा शिथिलन को प्रसारण या डायस्टोल (Diastole) कहते हैं लगातार प्रकुंचन तथा शिथिलन से एक हृदय स्पंदन बनता है। स्वस्थ मनुष्य में प्रति मिनट 72 से 75 बार हृदय में स्पंदन होता रहता है। सिस्टोल या प्रकुंचन में हृदय का आयतन घट जाने से रूधिर तीव्र वेग के साथ धमनियों में पम्प होता है इसके विपरीत प्रसारण या डायस्टोल में हृदय का आयतन सामान्य हो जाने के कारण शिराओं में रक्त धीरे–धीरे बहता है।

शरीर के सभी भागों से अशुद्ध रक्त अग्रमहाशिरा और पश्च महाशिरा द्वारा हृदय के दायं अलिन्द में

प्रवेश करता है दायें अलिन्द में दबाव व आयतन बढ़ने से संकुचन होने लगता है और अशुद्ध रक्त त्रि–वलनों कपाट से दायें निलय पहुंच जाता है अब दायें अलिन्द में शिथिलन और दायें नियल में संकुचन होने के कारण अर्द्धचन्द्राकार कपाट या फुफ्फुसीय कपाट से होता हुआ अशुद्ध रक्त फुफ्फुसीय धमनी में प्रवेश करता है और यहां से अशुद्ध रक्त फेफड़ों में पहुंचात है। फेफड़ों में यह अशुद्ध रक्त ऑक्सीजन के साथ मिलकर शुद्ध हो जाता है। अब यह शुद्ध रक्त फुफ्फुसीय महाशिराओं से होता हुआ बायें अलिन्द में प्रवेश करता है। बायें अलिन्द में फिर से दबाव व आयतन बढ़ने से इसमें संकुचन होता है जिससे रक्त द्विवलनीय कपाट को खोलता हुंआ बायें निलय में पहुंच जाता है। अब बायें निलय में संकुचन होने के कारण शुद्ध रक्त बायें निलय से एआर्टिक वाल्व को खोलते हुए महाधमनी में प्रवेश करता है। महाधमनी से शुद्ध रक्त धमनियों के माध्यम से शरीर के सभी भागों तक पहुंचता है इस तरह से हमारा हृदय लगातार कार्य करता रहता है।

8.4.6 हृदय ध्वनियां (Heart sounds)

जब भी हम छाती पर कान या स्टेथोस्कोप लगाकर हृदय की आवाज सुनते हैं तो एक ध्वनि लब–डब की सुनाई देती है। ये ध्वनियां हृदय में लगातार सुनाई देती है और इसी ध्वनि के माध्यम से डॉक्टर सामान्य तौर पर हमारे हृदय के स्वस्थ होने की बात करते हैं यह ध्वनि हमारे हृदय के कपाटों के बन्द होने पर सुनाई देती है। पहली ध्वनि (First heart Sound) ट्राइकस्पिड कपाट (वाल्व) तथा बाइकस्पिड कपाट (वाल्व) के बन्द होने के कारण पैदा होती है। जो लब की

ध्वनि के रूप में सुनाई देती है जब रक्त दोनो आलिन्दों से दोनों निलयों में भर जाता है निलयों में प्रकुंचन होने पर दोनों कपाट बन्द हो जाते है इसलिये इसे प्रकुचनी ध्वनि (systolic sound) कहते हैं। यह ध्वनि कुछ लम्बी, धीमी और ज्यादा समय तक (12 सेकण्ड तक) रहने वाली होती है। यह 'लब' (lubb) की ध्वनि होती है जो 'ल...ब' के समान प्रलम्बित होती है।

दूसरी ध्वनि (Second heart Sound) एओर्टिक कपाट (वाल्व) तथा फुफ्फुसीय कपाट (पल्मोनरी वाल्व) के बन्द हो जाने के परिणामस्वरूप पैदा होती है। निलयों से जब रक्त फुफ्फुसीय धमनी और महाधमनी में चला जाता है तब निलयों में शिथिलन होने के कारण दोनो कपाट बन्द हो जाते हैं इसलिये इसे 'अनुशिथिलनीय ध्वनि' (diastolic sound) कहा जाता है। यह 'डप' (dub) की ध्वनि होती है। यह तेज, छोटी तथा कम अवधि (0.01 सेकण्ड तक) रहने वाली हृदय

ध्वनि होती है।

पहली और दूसरी हृदय ध्वनियां लगातार पैदा होती रहती हैं जिन्हें स्टैथोस्कोप द्वारा सुनने पर 'लब–डब', 'लब–डब' की ध्वनियां सुनाई देती रहती है। इन ध्वनियों को सुनकर ही चिकित्सक 'हृदय के रोग' का पता लगाते हैं।

8.4.7 हृदय की संचालन प्रणाली (Conduction system of the heart)

शिरा–निलयी तन्त्र में विशिष्टिकृत तन्तुओं के दो सघन घुण्डीनुमा पिण्ड (nodes) होते हैं तथा इन पिण्डों से हृदय की पूर्ण दीवार में फैले प्रेरणा–प्रसारण तन्तु (impulse-conducting fibres) होते हैं। इस पूरे तन्त्र को निम्नलिखित पाँच घटकों में बाँटा जाता है।

1. **शिरा–अलिन्दीय घुण्डी (Sinuatrial node = SA node)**: यह स्वःउत्तेजक तन्तुओं का एक छोटा, अर्धचन्द्राकार–सा सघन पिण्ड होता है जो दाएँ अलिम्द की दीवार में उच्च महाशिरा (superior vena cava) के छिद्र के निकट स्थित होता है इसके तन्तुओं को गुण्ठीय तन्तु (nodal fibres) कहते हैं। इन तन्तुओं में किसी बाहरी उद्दीपन के बिना ही एक मिनट में 70 से 80 बार स्वः उत्तेजन से लयबद्ध (rhythmic) हृद्–स्पंदन की प्रेरणाओं का जीवनभर, बिना थके, सूत्रपात होता रहता है। इसीलिए घुण्डी को हृदय का स्पंदन केन्द्र या गति–निर्धारक (contraction centre or pacemaker) कहते हैं। इससे अनेक प्रेरणा–संचारी तन्तु निकलकर दाएँ एवं बाएँ अलिन्दों की हृद्पेशियों में आकुंचन की प्रेरणाओं का प्रसारण करते हैं।

2. **अलिन्द–निलयी घुण्डी (Atrio-ventricular node=AV node)** : यह प्रेरणा–प्रसारण तन्तुओं का SA घुण्डी से कुछ छोटा सचन पिण्ड होता है जो आन्तिरअलिन्दीय पट्ट (intratrial septum) के निचले भाग में दाएँ अलिन्द की ओर हृद् अर्थात कोरोनरी साइनस (coronary sinus) के छिद्र के निकट स्थित होता है। SA घुण्डी से निकले कुछ प्रेरणा–संचारी तन्तु AV की में जाते हैं अर्थात ये प्रेरणा–प्रसारण का एक आन्तरघुण्डीय परिपथ (intermodal pathway) स्थापित करते हैं। AV घुण्डी से वे प्रेरणा–प्रसारण तन्तु निकलते हैं जो निलयों में आकुंचन की प्रेरणाएँ ले जाते हैं।

3. **अलिन्द–निलयी गुच्छा अर्थात हिस का गुच्छक (ABV = Atrio-ventricular Bundle or Bundle of His)** : यह प्रेरणा–प्रसारण तन्तुओं का एक छोटा व मोटा गुच्छा होता है जो AV घुण्डी से निकलकर "हृदयी कंकाल" के सघन संयोजी ऊतक को बेधता हुआ आन्तरनिलयी पट्ट (interventricular septum) के ऊपरी भाग में पहुँचता है।

4. **दाईं व बाईं गुच्छक शाखाएँ (Right and Left Bundle Branches):** आन्तरनिलयी पट्ट में पहुँकर हिस का गुच्छक दो शाखाओं में बँट जाता है। एक शाखा पट्ट के दाएँ भाग में होती हुई पट्ट के निचले भाग में पहुँचती हैं। इसीलिए इन शाखाओं को दाई व बाई गुच्छक शाखाएँ कहते हैं।

5. **परकिन्जे तन्तु (Purkinje Fibres)** : आन्तरनिलयी पट्ट में होकर गुजरते समय तथा पट्ट के निचले भाग में पहुँचकर दाई एवं बाई गुच्छक शाखाओं के तन्तु अपनी–अपनी ओर के निलय की दीवार में फैल जाते हैं और विभाजित हो–होकर निलयों के पेशी तन्तुओं में आकुंचन की प्रेरणाएँ पहुँचाते हैं।

इन्हीं सब तन्तुओं को परकिन्जे तन्तु (Purkinje Fibres) कहते हैं।

कृत्रिम गति–निर्धारक (Artificial Pacemaker)

यदि किसी कारणवश शिराअलिन्दीय घुण्डी ठीक से काम नहीं कर पाती है या हृदय के विशिष्ट संचालक ऊतक में तन्त्रिकीयं आवेगों का प्रसारण ठीक से नहीं होता है तो एक कृत्रिम गति–निर्धारक को वक्ष भाग में हँसली की हड्डी (collar bone) के पास या उदर भाग में त्वचा के नीचे फिट करके एक विद्युत तार द्वारा हृदय से जोड़ देते है। यह गति–निर्धारक एक छोटा–सा,बैटरी द्वारा संचालि, विद्युत उपकरण होता है जो नियमित या आवश्यक समयान्तरों पर तन्त्रिकीय आवेगों का प्रसारण करता रहता है।

8.4.8 हृदय की रक्त आपूर्ति (Blood supply of the heart)

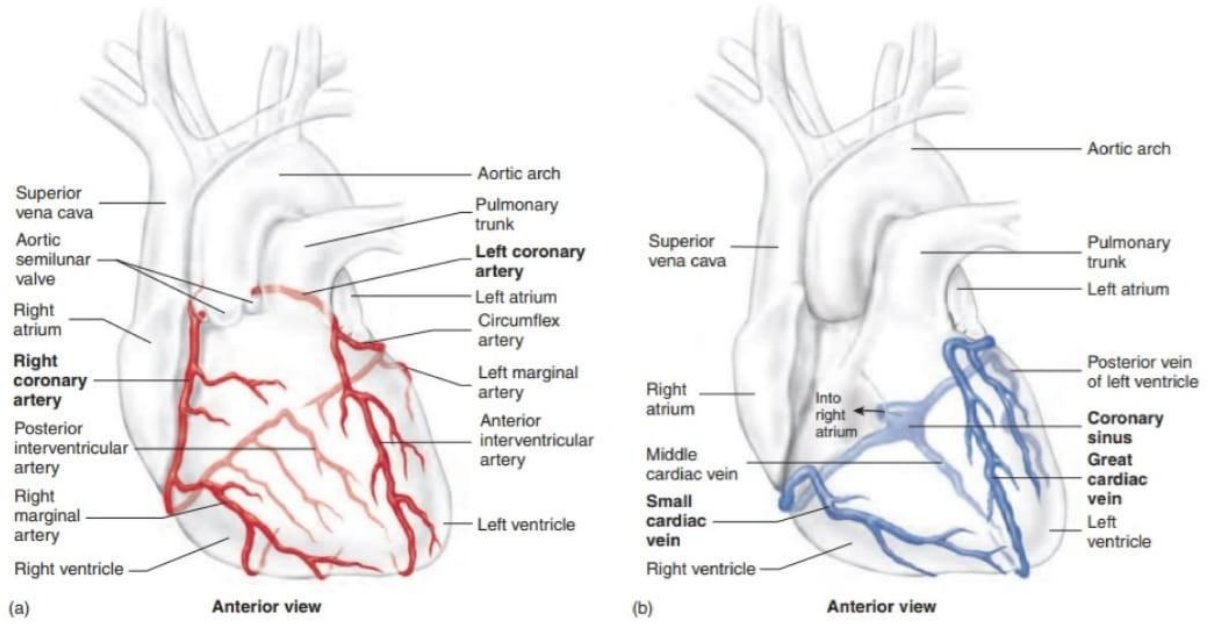

Figure AP R Blood Supply to the Heart

जिस तरह शरीर के प्रत्येक अंग को अपना कार्य ठीक तरह से करने के लिये ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। उसी तरह हमारे हृदय को भी अपना कार्य करने के लिये ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। हमारे हृदय की कोशिकाओं तक ऑक्सीजन युक्त रक्त लाने वाली धमनी को कॉरोनरी धमनी कहते हैं इसी तरह जब ऑक्सीजन कोशिकाओं तक आ जायेगी और कार्बन डाईऑक्साइड रक्त में आदान प्रदान होगा तब कार्बन डाईऑक्साइड युक्त रक्त को वापस हृदय के दायें निलय में कॉरोनरी शिरा पहुंचाती है। कॉरोनरी धमनी दो भागों में महाधमनी से निकलती है। ये दो भाग दायें कॉरोनरी धमनी तथा बायें कॉरोनरी धमनी

कहलाते हैं। हमारा हृदय तकरीबन 70 से 75 फीसदी ऑक्सीजन रक्त से ले लेता है। जो कि अन्य अंगों से बहुत अधिक है। रक्त की आपूर्ति यदि हृदय की कोशिकाओं में कम हो जाये तो उसकी वजह से हमारे हृदय को कोशिकाओं की मृत्यु होने लगेगी जिसमें हम कहते हैं कि हृदयाघात हो गया है और मनुष्य की मृत्यु हो सकती है।

हृदय की रक्त आपूर्ति में गड़बड़ी पैदा हो जाने से हृदय की क्रियाशीलता में बदलाव हो जाता है। जब कभी कॉरोनरी धमनी की किसी शाखा में पूरी तरह रूकावट पैदा हो जाता है तो हृदय के उस भाग का जिसकी वह रक्त आपूर्ति करती है, गल जाता है अर्थात मायोकार्डियल इनफार्क्शन (myocardial infarction) हो जाता है।

8.5 रूधिर वाहिनियाँ

अभी तक आपने हृदय के बारे में पढ़ा जो कि एक पम्प की तरह काम करता है। अब हम रूधिर वाहिनियों के बारे में पढ़ेगें जो कि एक पाइप के समान संरचना है जिसके अन्दर रक्त एक जगह से दूसरे जगह प्रवाहित होता है।

रूधिर वाहिनियों को तीन भागों में बांटा गया है –

8.5.1 धमनियां (Arteries)

यह लाल रंग की होती हैं यह रूधिर वाहिनियां शुद्ध रक्त को पूरे शरीर के ऊतकों तक ले जाती हैं धमनियों की दीवार शिराओं की दीवार की अपेक्षा मोटी होती है। इसकी दीवार की सरल पेशियों में लचीले ऊतक पाये जाते हें जिसकी वजह से धमनियां सिकुड़ और फैल सकती है। धमनियों में उच्च दाब सहन करने की क्षमता होती है। जब हृदय रक्त को धमनियों में पम्प करता है उस समय दाब काफी उच्च होता है। अतः धमनियों में रूधिर का परिसंचरण

झटके से तथा तेजी से होता है। धमनियों में कोई कपाट नहीं पाये जाते हैं धमनियां हमेशा ऑक्सीजन युक्त रक्त को ले जाती है केवल फुफ्फुसीय धमनी को छोड़कर जोकि कार्बन डाईऑक्साइड युक्त रक्त को हृदय के दायें निलय से फेफड़े तक ले जाती है। धमनियों से आगे चलकर एक पतली लचीली नलिकाओं की शाखायें निकलती हैं जिन्हें

धमनिकायें कहते हैं। ये धमनिकायें रूधिक कोशिकाओं से जुड़ी होती है।

8.5.2 शिराएं (Veins)

हमारी त्वचा पर कुछ नीली या बैंगनी नलिकायें दिखती हैं ये रूधिर वाहिनियां अशुद्ध रक्त को पूरे शरीर

के ऊतक से हृदय तक ले जाती हैं शिराओं की दीवार धमनियों की दीवार की अपेक्षा पतली होती हैं। इन पर लचीले ऊतक नहीं पाये जाते है। जिस कारण इसमें लचीलापन नहीं पाया जाता। शिराओं में कम दाब से रूधिर प्रवाहित होता है। शिराओं में कपाट पाये जाते हैं ताकि अशुद्ध रक्त अंगों तक वापस न जा सके। शिराओं में हमेशा कार्बन डाई ऑक्साइड रक्त बहता है केवल फुफ्फुसीय शिरा को छोड़कर जोकि ऑक्सीजन युक्त रक्त फेफड़ों से हृदय के बायें अलिन्द तक लाती है शिराओ से भी आगे चलकर कई सूक्ष्म नलिकाओं की शाखाायें निकलती हैं जिन्हें शिरिकायें कहते हैं ये शिरिकायें भी रूधिर कोशिकाओं से जुड़ी रहती है।

8.5.3 केशिकाएं (Capillaries)

रूधिर कोशिकायें बहुत महीन रूधिर वाहिनियां होती हैं इसकी दीवार की मोटाई केवल एक कोशिकीय स्तर की होती है। अर्थात् इसमें एक समय में एक रूधिर कणिका (RBC) एक पंक्ति मे ंजा सकता है। रूधिर कोशिकाओं के अन्दर पदार्थो का आदान प्रदान होता है जैसे शरीर के लिये आवश्यक पदार्थ ऑक्सीजन, जल, ग्लूकोज, हार्मोन्स आदि तथा अनावश्यक पदार्थ कार्बन डाईऑक्साइड, यूरिया, अमोनिया आदि का रूधिर कोशिकाओं में आदान प्रदान होता है।

इस तरह इन तीनों रूधिर वाहिनियों में धमनियां हृदय से ऑक्सीजन एवं पोषण युक्त रक्त को धमनिकाओं में भेजती हैं। धमनिकाओं से यह ऑक्सीजन युक्त रूधिर केशिकाओं में पहुंचता है जहां पर शरीर की कोशिकायें रक्त से ऑक्सीजन एवं पोषक पदार्थो को लेकर रक्त में कार्बन डाईऑक्साइड और अवशिष्ट पदार्थो को भेजती है

यह आदान प्रदान की प्रक्रिया रूधिर केशिकाओं में होती है तथा रक्त अंगों से कार्बन डाई ऑक्साइड ग्रहण कर अशुद्ध हो जाता है। अब यह अशुद्ध रक्त रूधिर केशिकाओं से सूक्ष्म शिराओं या शिरिकाओं में प्रवेश करता है यही शिरिकायें मिलकर शिराओं का तथा शिरायें अन्त में महाशिरा का निर्माण करती है। जहां से अशुद्ध रक्त चलकर वापस हृदय में आ जाता है।

8.6 रूधिर दाब या रक्त चाप

जैसा कि आपने पढ़ा है कि हृदय एक मिनट में 70 से 75 बार पम्प करता है। अगर आप व्यायाम या परिश्रम करते हैं तो यह दर काफी बढ़ जाती है हर बार रक्त को एक दाब मिलता है। उसी दाब के साथ वह पूरे शरीर में प्रवाहित होता है वही रक्त के दाब को हम शिराओं की दीवार पर नापते हैं जिसे हम कहते हैं रक्त दाब (Blood Pressure) । एक स्वस्थ मनुष्य में संकुचन और अनुशिथिलन दाब अर्थात रूधिर दाब 120/80 होता है।

हृदय के संकुचन से धमनियों की दीवार पर पड़ने वाला दाब रूधिर दाब (Blood Pressure) कहलाता है। इस दाब को संकुचन दाब (Systolic Pressure) कहते हैं जो निलयों के संकुचन के फलस्वरूप उत्पन्न

होता है।

यह सकुचन दाब उतना होता है, जितना कि 120 मिमी. पारे के स्तम्भ द्वारा उत्पन्न होता है।

इसके ठीक विपरीत अनुशिथिलन दाब (Diastolic Pressure) होता है जो निलय के अनुशिथिलन के फलस्वरूप उत्पन्न होता है, जब रूधिर आलिन्द (Auricle) से निलय (Ventricle) में प्रवेश कर रहा होता है तब यह दाब साधारणतः 80 मिमी. पारे के स्तम्भ द्वारा उत्पन्न दाब के बराबर होता है।

विभिन्न व्यक्तियों में रूधिर दाब उम्र, लिंग, अनुवांशिकता, शारीरिक एवं मानसिक स्थिति तथा अन्य कई कारणों से अलग–अलग होता है।

रूधिर दाब की माप एक विशेष उपकरण द्वारा की जाती है। यह उपकरण स्फिग्नोमैनोमीटर (Sphygnomanometre) कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति लगातार उच्च रूधिर दाब (160/90 Hg) से पीड़ित है, तो यह अवस्था उच्च रक्त चाप (Hypertension) कहलाती है। रूधिर दाब को सामान्यतः बाएं बाँह की धमनी (Left Brachial Artery) द्वारा मापा जाता है। नाड़ी को सामान्यतः कलाई धमनी (Radial Artery or wrist) से मापा जाता है। इसकी गति हृदय स्पंदन गति (70-90/मि.) के समान होती है।

सामान्य से तेज हृदय नाड़ी गति को टैकीकार्डिया (Tachy=fast) कहते हैं तथा सामान्य से धीमी हृदय नाड़ी गति को ब्रैडीकार्डिया (Brady=slow) कहा जाता है।

8.7 मनुष्य का धमनीं तन्त्र (ARTERIAL SYSTEM OF MAN)

हृदय के निलयों से रुधिर दो महाधमनी (aortic arches) चापों में जाता है। दाहिने निलय से फुफ्फुसीय चाप (pulmonary arch) में तथा बाएँ निलय से वैहिक चाप (systemic arch) में।

(A) फुफ्फुसीय चाप या फुफ्फुसीय महाधमनी (Pulmonary Arch or Pulmonary Aorta) : यह दाहिने निलय के ऊपरी बाएँ कोण से निकलकर बाई तथा पृष्ठतल (पीठ) की ओर घूम जाती है और दाई एवं बाई फुफ्फुसीय धमनियों (right and left pulmonary arteriespulmonary arch) में बँट जाती है। प्रत्येक फुफ्फुसीय धमनी अपनी ओर के फेफड़े में घुसकर शाखाओं में बँटती है जो फेफड़े के विभिन्न पिण्डों में चली जाती हैं। ये धमनियाँ हृदय से अशुद्ध रुधिर को शुद्धिकरण अर्थात ऑक्सीजनीकरण (oxygenation) के लिए फेफड़ों में ले जाती हैं। केवल इन्हीं धमनियों में अशुद्ध रुधिर होता है।

(B) वैहिक चाप या वैहिक महाधमनी (Systemic Arch or Systemic Aorta) : यह बाएँ निलय से शुद्ध रुधिर को, विभिन्न शाखाओं द्वारा शरीर के सभी अंगों में पहुँचाती है। बाएँ निलय के ऊपरी दाहिने कोण से निकलकर यह भी बाई तथा पृष्ठतल (पीठ) की ओर घूम जाती है। इसके घुमाव से पहले ही समीपस्थ भाग, अर्थात आरोही महाधमनी (ascending aorta) से दाई व बाई हृद् या कोरेनरी धमनियाँ (right and left coronary arteries) दीवार में जाती हैं। इसके बाद चाप के घुमाव के क्रमशः

निम्नलिखित तीन धमनियाँ निकलती हैं –

1. बाहुशीरस्य अर्थात ब्रैकिओसिफलिक महावाहिनी (Brachiocephalic Trunk) : यह चाप से निकलकर वाहिनी ओर झुक जाती है तथा दो धमनियों में विभक्त हो जाती है दाहिनी ओर की दाहिनी अधीक्षक (Right subclavian) तथा इससे बाई ओर की दाहिनी सहग्रीबा (Right common carotid) दाहिनी अधीक्षक धमनी से एक कषेरुक धमनी (Vertebral artery) दाहिनी कन्धे में होती हुई दाहिनी भुजा में चली जाती है। काँख (axila) के क्षेत्र में इसे दाहिनी कक्षीय धमनी (right axillary artery), परन्तु ऊपरी बाहु अर्थात प्रगण्ड (upper arm) में इसे दाहिनी बाहु धमनी (right brachial artery) कहते हैं। कुहनी (elbow) में पहुँचकर यह दो शाखाओं में बँट जाती है– अंगूठे की ओर वाहिनी वहिःप्रकोष्ठिक (right radial) तथा छोटी अंगुली की ओर दाहिनी अन्तः प्रकोष्ठिक (right ulnar) प्रकोष्ठिक धमनियों में विभक्त होकर भुजा के शेष भागों में रुधिर पहुँचाती हैं।

दाहिनी सहग्रीवा धमनी ग्रीवा में होती हुई सिर में जाकर दाहिनी बाह्य ग्रीवा एवं अन्तः ग्रीवा धमनियों (right external and internal carotid arteries) में बँटती है जिनकी शाखाएँ सिर के दाएँ भागों में रुधिर पहुँचाती हैं।

2. बाई सहग्रीवा धमनी (Left Common Carotid Artery) : बाहुशीरस्य महावाहिनी के बाद,वैहिक चाप के घुमाव में बाई सहग्रीवा धमनी निकलती है। यह ग्रीवा में होती हुई सिर में पहुँचकर बाई बाह्य ग्रीवा एवं अन्तः ग्रीवा धमनियों (Left external and internal carotid arteries)में विभक्त होकर सिर के बाई ओर के भागों में रुधिर की आपूर्ति करती है।

3. बाई अधीक्षक धमनी (Left Subclavian Artery) : वैहिक चाप के घुमाव से निकलने वाली यह तीसरी धमनी होती है। दाहिनी अधीक्षक की भाँति इसमें से बाई कशेरुक धमनी (Left vertebral artery) निकलकर सिर में जाती है और यह स्वयं बाई भुजा में पहले कक्षीय (axillary) तथा फिर बाहु (brachial) धमनी के रूप मे बढ़कर कुहनी के पास बाई वहिःप्रकोष्ठिक तथा अन्तःप्रकोष्ठिक धमनियों में बँट जाती है।

दैहिक चाप स उपरोक्त तीन धमनियों के निकलने के बाद, चाप स्वयं नीचे की ओर घूमकर, हृदय के पीछे से होती हुई शरीर की मध्य रेखा में नीचे की ओर बढ़ती है। वक्षीय भाग में इसे वक्षीय महाधमनी (thoracic aorta) तथा उदर भाग में उदरीय महाधमनी (abdominal aorta) कहते हैं।

वक्षीय महाधमनी से ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः निम्नलिखित धमनियाँ निकलती हैं –

1. अन्तरापर्शुक अर्थात इन्टरकॉस्टल धमनियाँ (Intercostal Arteries) : इनकी कई जोड़ियाँ वक्ष भाग में पृष्ठ महाधमनी से निकलकर वक्ष की पृष्ठ देहभित्ति, पसलियों हृदयावरण फेफड़ों श्वसनियों अर्थात ब्रॉन्काई आदि में रुधिर पहुँचाती हैं।

2. उच्च मध्यपट या उच्च फ्रीनिक धमनियाँ (Superior Phrenic Arteries) : इनकी एक जोड़ी पृष्ठ

महाधमनी से सन्तुपट या डायफ्राम (Diaphragm) के निकट निकलकर इसी की ऊपरी सतह में रुधिर पहुँचाती हैं।

3. श्वसनीय धमनियाँ (Bronchial Arteries) इनकी एक जोड़ी श्वसनियों (Bronchi) तथा फेफड़ों में रुधिर ले जाती हैं।

4. ग्रासनलीय धमनियाँ (Oesophageal Arteries) ये ग्रासनली के विभिन्न भागों में रुधिर पहुँचाती हैं।

उदरीय महाधमनी से ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः निम्नलिखित धमनियाँ निकलती हैं–

1. निम्न मध्यपट या निम्न फ्रीनिक धमनियाँ (Inferior Phrenic Arteries) : मध्यपट अर्थात डायफ्राम (Diaphragm) को बेधकर उदरगुहा में पहुँचते ही महाधमनी से एक जोड़ी निम्न मध्यपट धमनियाँ निकलकर मध्यपट की निचली सतह में रुधिर पहुँचाती हैं।

2. उदरगुहीय अर्थात सीलियक महावाहिनी (Coeliac Trunk) : यह एक छोटी व मोटी महावाहिनी होती है जो निम्न मध्यपट धमनियों के ठीक नीचे महाधमनी से निकलकर तीन धमनियों में विभक्त हो जाती है –यकृत में जाने वाली सहयकृती (Common Hepatic Artery) धमनी आमाशय की दीवार में जाने वाली बाई जठर धमी (Left Gastric Artery) तथा प्लीहा (Spleen) अग्याशय एवं आमाश्य की दीवार को रुधिर की आपूर्ति करने वाली प्लीहा धमनी (Splenic Artery)

3. उच्च आन्त्रयोजनी धमनी (Superior Mesenteric Arteries) : सीलियक धमनी के कुछ ही पीछे यह भी एक अकेली धमनी महाधमनी से दाई ओर निकलकर कई शाखाओं में बँट जाती है और ग्रहणी, अग्याशय, क्षुद्रान्त्र, सीकम कोलन आदि में रूधिर पहुँचाती है।

4. अधिवृक्क धमनियाँ (Suprarenal Ateries) : ये एक जोड़ी धमनियाँ अधिवृक्क ग्रन्थियों (Suprarenal Glands) में रुधिर ले जाती हैं।

5. वृक्क धमनियाँ (Renal Ateries) : ये दोनों ओर एक–एक होती हैं, परन्तु महाधमनी से दाहिनी वृक्क धमनी कुछ आगे तथा बाई कुछ पीछे से निकलती है। ये अपनी–अपनी ओर के वृक्कों अर्थात गुर्दो (Kidneys) में रुधिर ले जाती हैं।

6. जनद धमनियाँ (Gonadial Ateries) : ये भी दो होती है और महाधमनी से एक ही स्थान पर निकल कर अपनी अपनी ओर के जनदों (Gonads) में जाती हैं। पुरूषों में इन्हें वृषणीय (testicular)धमनियाँ कहते हैं, क्योकि ये वृषणों (tests) में जाती हैं। स्त्रियों इन्हें अण्डाशयी (ovarian) धमनियाँ कहते हैं, क्योंकि ये अण्डाशयों (ovaries) में जाती हैं।

7. निम्न आन्त्रयोजनी धमनी (Inferior Mesenteric Artery) : यह एक अकेली धमनी महाधमनी से बायी ओर निकलकर कोलन के पिछले भाग तथा मलाशय में रुधिर ले जाती है।

8. कटि या लम्बर धमनियाँ (Lumbar Ateries) : इनकी 4–5 जोड़ियाँ पश्च आन्त्रयोजनी धमनी के आस पास महाधमनी से निकल कर शरीर की पृष्ठ देहभित्ति में जाती हैं।

लम्बर धमनियों के पीछे, उदरगुहा के श्रोणि भाग (pelvic region) में पहुँचकर, महाधमनी स्वयं तीन शाखाओं में बँट जाती है–पार्श्वो में, दाई एवं बाई सहनितम्ब धमनियाँ (right and left common iliac arteries) तथा मध्य में एक छोटी व पतली त्रिक धमनी (Secral Artery)। प्रत्येक सहनितम्ब धमनी शीघ्र ही बाहर की ओर स्थिति एक मोटी वाह्य नितम्ब धमनी (external iliac artery) तथा भीतर के ओर स्थिति पतली व छोटी अन्तः नितम्ब धमनी (Internal iliac artery) में विभक्त हो जाती है। अन्तः नितम्ब धमनी को अधोजठर (hypogastric) धमनी भी कहते है। यह पृष्ठ देहभित्ति से लगी कई छोटी छोटी शाखाओं द्वारा मूत्राशय, मलाशय तथा गुदा के निकटवर्तीभागों में रुधिर पहुँचाती हैं।

वाह्य नितम्ब धमनी अपनी ओर की टाँग में घुस कर पहले ऊरु धमनी (femoral artery) तथा फिर जानुपृष्ठ धमनी (popliteal artery) कहलाती है। घुटने के पास जानुपृष्ठ धमनी दो शाखाओं में बँट जाती है– बाहर की ओर अग्र टिबियल धमनी (anterior tibial artery) तथा भीतर की ओर पश्च टिबियल धमनी (posterior tibial artery)। इन सब धमनियों की छोटी–छोटी शाखाएँ टाँगों की पेशियों एवं अन्य भागों में रुधिर पहुँचाती है।

8.8 मनुष्य का शिरा तन्त्र (VENOUS SYSTEM OF MAN)

हृदय में फेफड़ों से शुद्ध रुधिर की वापसी दो जोड़ी फुफ्फुसीय शिराओं द्वारा तथा शरीर के समस्त भागों से अशुद्ध रुधिर की वापसी एक उच्च महाशिरा एवं एक निम्न महाशिरा द्वारा होती है।

(A) फुफ्फुसीय शिराएँ **(Pulmonary Veins)** : प्रत्येक फेफड़े में ऑक्सीजनीकृत शुद्ध रुधिर इसके विविध भागों से दो फुफ्फुसीय शिराओं में एकत्रित होता है जो पृथक छिद्रों से बाएँ निलय में खुलती हैं। केवल इन्हीं शिराओं में शुद्ध रुधिर होता है।

(B)उच्च महाशिरा (Superior Vena cava) : यह लगभग 7 सेमी लम्बी तथा 2 सेमी मोटी महाशिरा होती है जो दाई एवं बाई बाहुशीरस्य शिराओं (right and left brachiocephalic veins) के सम्मिलन से बनती है तथा दाहिने अलिन्द के उच्च भाग में खुलती है।

1. बाहुशीरस्य शिराएँ (Brachiocephalic Veins) : प्रत्येक बाहुशीरस्य शिरा बाहर की ओर स्थित एक अधोक्षक शिरा (subclavian veins) तथा मध्य रेखा की ओर स्थित एक अन्तःगल शिरा (internal jugulareins) के सम्मिलन से बनतीं है। एक–दूसरी से मिलने से पहले, प्रत्येक बाहुशीरस्य शिरा में वक्ष के विभिन्न भागों से रुधिर लाने वाली तीन शिराएँ मिलती हैं।

(a) अन्तःवक्षीय शिरा (internal thoracic veins) : जो स्तनों (breast)तथा निकटवर्ती पेशियों से

रुधिर लाती है

(b) थाइरॉइड ग्रन्थि से रुधिर लाने वाली निम्न थाइरॉइड शिरा (inferior thyroid vein) तथा

(c) वक्ष के ऊपरी भाग से आने वाली उच्च अन्तरापुर्शुक अर्थात इन्टरकॉस्टल शिरा (superior intercostal vein)

2. **अन्तःगल शिरा (internal jugular vein)** : यह हमारी मस्तिष्क गुहा, चेहरे के ऊपरी भागों तथा ग्रीवा के कुछ भागों से रुधिर लाती है।

3. **अधोक्षक शिरा (Subclavian vein)** : यह कन्धे में शिरस्थ शिरा (cephalic vein) तथा कक्षीय शिरा (axillary vein) के सम्मिलन से बनती है। शिरस्य एवं कक्षीय शिराएँ अपनी–अपनी ओर के कन्धों के विविध भागों से तथा भुजाओं से रुधिर लाती हैं। अन्तःगल शिरा से मिलने से कुछ ही पहले अधीक्षक शिरा में एक बाह्य गल शिरा (external jugular vein) खुलती हैं। यह शिरा खोपड़ी के कुछ भागों, चेहरे की पेशियों तथा पैरोटिड ग्रन्थियों से रुधिर लाती है।

4. **अयुग्मी तथा अर्धअयुग्मी शिराएँ (Azygous and Hemiazygous veins)**: अयुग्मी शिरा एक लम्बी शिरा होती है जो कटि (lumbar) भाग से प्रारम्भ होकर मध्य रेखा के दाहिनी ओर ऊपर बढ़ती है और कशेरुकदण्ड, मध्यावकाश (mediastinum), ग्रासनली, हृदयावरण आदि से रुधिर एकत्रित करती हुई उच्च महाशिरा के अलिन्द में खुलने से पहले ही इससे जुड़ जाती है। मध्य रेखा के बाई ओर अयुग्मी शिरा नहीं होती, परन्तु दो छोटी अर्धयुग्मी शिराएँ होती है जो अयुग्मी शिरा में ही खुलती हैं।

(C) निम्न महाशिरा (Inferior Vena Cava)

यह काफी लम्बी और लगभग 2.5 सेमी मोटी महाशिरा होती है जो शरीर के उदरीय भाग एवं टाँगों से रुधिर एकत्रित करके दाएँ अलिन्द में लाती है। यह कटि भाग में दाई व बाई सहनितम्ब शिराओं (common iliac veins) के सम्मिलन से बनती है।

सहनितम्ब शिराऐं (Common Iliac Veins) : प्रत्येक टांग से अशुद्ध रुधिर कई प्रमुख शिराओं में एकत्रित होता है ये शिराएँ नीचे से ऊपर की ओर होती हैं – अग्र टिबियल सहनितम्ब शिराओं (anterior tibial), पश्च टिबियल (posterior tibial), सैफिनस (great saphenous), जानुपृष्ठ (popliteal) तथा उरु (femoral) शिराएं। अन्त में प्रत्येक टाँग का रुधिर एक छोटी(internal iliac) तथा एक लम्बी (external iliac) शिराओं में एकत्रित होता है। प्रत्येक ओर की इन्हीं दोनों के शिराओं के सम्मिलन से इस ओर की सहनितम्ब शिरा (common iliac vein) बनती है। वाह्य नितम्ब शिरा से मिलने से पहले अन्तःनितम्ब शिरा जननांगों, मूत्राशय तथा श्रोणि (pelvic) क्षेत्र के अन्य भागों से भी रुधिर एकत्रित करती है।

सहनितम्ब शिराओं के सम्मिलन से बनने के बाद निम्न महाशिरा मध्य रेखा में ऊपर की ओर बढ़ती

है। ऊपर की ओर बढ़ते हुए इसमें क्रमशः निम्नलिखित शिराएँ खुलती हैं –

1. कटि शिराएँ (Lumber Veins): इनकी चार–पाँच जोड़ियाँ होती हैं। ये कटि प्रेदश की त्वचा, पेशियों कशेरुकाओं आदि से रुधिर लाती हैं।

2. जनद शिराएँ (Gonadial Veins) : ये जनदों तथा अन्य निकटवर्ती जननांगों से आने वाली एक जोड़ी शिराएँ होती हैं। पुरुषों में इन्हें वृषणीय तथा स्त्रियों में अण्डाशयी शिराएँ कहते हैं। प्रायः बाई जनद शिरा सीधे निम्न महाशिरा में खुलने के बजाय ऊपर बढ़कर बाई वृक्क शिरा में खुलती है।

3. वृक्क शिराएँ (Renal Veins): ये वृक्कों से रुधिर लाने वाली एक जोड़ी शिराएँ होती है। बाई वृक्क शिरा दाहिनी से लगभग तीन गुना अधिक लम्बी होती है।

4. अधिवृक्क शिराएँ (Suprarenal Veins): ये अधिवृक्क ग्रन्थियों से रुधिर लाती हैं। दाहिनी अधिवृक्त शिरा छोटी होती है और निम्न महाशिरा में खुलती है, परन्तु बाई अधिवृक्क शिरा लम्बी होती है और नीचे की ओर बढ़कर बाई वृक्क शिरा में खुलती है।

5. निम्न फ्रीनिक शिराएँ (Inferior Phrenic Veins): ये एक जोड़ी शिराएँ तन्तुपट अर्थात डायफ्राम की निचली सतह से रुधिर लाती हैं। दाई फ्रीनिक तो निम्न महाशिरा में खुलती है, परन्तु बाई फ्रीनिक प्रायः द्विशाखित होती है और इसकी एक शाखा निम्न महाशिरा में तथा दूसरी बाई अधिवृक्क या वृक्क शिरा में खुलती है।

6. यकृत शिराएँ (Hepatic Veins): ये यकृत से रुधिर लाने वाली दो छोटी व मोटी शिराएँ होती हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पी प्रश्न के उत्तर दीजिए –

1. एक स्वस्थ मनुष्य में हृदय स्पन्दन निम्न में से कितनी बार होता है ?

(अ) 80 से 85 (ब) 72 से 75 (स) 70 से 78 (द) इनमें से कोई नहीं

2. हृदय से शरीर के विभिन्न भागों में रक्त पहुँचाने वाली वाहिनियों को कहते हैं :

(अ) शिराएं (ब) धमनियाँ (स) जालिका (द) उपर्युक्त

सभी 3. एक हृदय चक्र में समय लगता है :

(अ) 0.4 सेकण्ड (ब) 0.5 सेकण्ड (स) 0.6 सेकण्ड (द) 0.8

सेकण्ड 4. निम्न में से कौन कौन–सा जोड़ा सही है ?

(अ) हृदपेशियों के प्रकुंचन – सिस्टोल

(ब) हृदपेशियों के अनुशिथिलन – डायस्टोल

(स) सिस्टोल एवं डायस्टोल का समय 0.4 सेकण्ड तक रहता है।

(द) उपर्युक्त सभी

5. अलिन्द प्रकुंचन की समयावधि निम्न में से कौन–सी है ?

(अ) 0.5 सेकण्ड (ब) 0.6 सेकण्ड (स) 0.1 सेकण्ड (द) 0.3

सेकण्ड 6. अलिन्द अनुशिथिलन की समयावधि है :

(अ) 0.5 सेकण्ड (ब) 0.6 सेकण्ड (स) 0.7 सेकण्ड (द) 0.3 सेकण्ड

8.10 सारांश

उपरोक्त इकाई में आपने जाना कि परिसंचरण प्रणाली एक पंप, पाइप, वाल्व, द्रव की आवाजाही और एक ऊर्जा स्रोत के साथ घर के हीटिंग सिस्टम की कई विशेषताओं को साझा करती है। दोहरे परिसंचरण प्रणाली होने की वजह से ये प्रणाली दूसरी प्रणालियों से भिन्न है, इसमें एक चार–कक्षीय हृदय फेफड़ों और शरीर के अंगों को एक क्रम में रक्त पंप करता है जो दोनों फेफड़ों मे जाने वाले रक्त में दबाव बनाए रखने की अनुमति देता है और अंगों को।

शरीर के माध्यम से रक्त की गति धमनियों, केशिकाओं और नसों के माध्यम से होती है। फेफड़ो द्वारा लिया गया ऑक्सीजन युक्त रक्त पल्मोनरी शिराओं द्वारा हृदय में बाएं अलिन्द में आता है और यहां से बाएं निलय में पहुँचता है बाएं निलय से रक्त महाधमनी और धमनियों में से होता हुआ शरीर के समस्त अंगों एवं ऊतकों में पहुँचता है। शरीर के सभी अंगों एवं ऊतको द्वारा लिया गया अशुद्ध रक्त शिराओं के माध्यम से हृदय के दाएं निलयय में से होकर पल्मोनरी महाधमनी के माध्यम से फेफड़ों में पहुँचा दिया जाता है। इस प्रकार मनुष्य का रूधिर परिसंचरण लगातार बिना रूके एक नियंत्रित क्रम में जीवन–पर्यन्त चलता रहता है।

8.11 शब्दावली

रूधिर – रक्त / खून

कक्ष – कमरा

प्रकुंचन – संकुचन / सिकुड़ना अनुशिथिलन –

प्रसारण / सामान्य स्थिति अशुद्ध रक्त – ऑक्सीजन

रहित रक्त शुद्ध रक्त – ऑक्सीजन युक्त रक्त

8.12 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. (ब) 72–75 2. (ब) धमनियाँ

3. (द) 0.8 सेकण्ड 4. (द) उपर्युक्त सभी

5. (स) 0.1 सेकण्ड 6. (स) 0.7 सेकण्ड

8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रस्तोगी, डॉ. वीरबाला (2016), जैव रसायन तथा कार्यकी, केदारनाथ रामनाथ
2. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश (2008), मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन, आगरा
3. दीक्षित राजेश (2002), शरीर रचना क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
4. शर्मा, डॉ. ताराचन्द्र (1999), आयुर्वेदिक शरीर रचना विज्ञान, नाडा पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक
5. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009), एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, भाषा भवन, मथुरा

8.14 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– हृदय चक्र की विभिन्न घटनाओं का वर्णन कीजिए। ''दोहरा परिसंचरण'' की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2– मनुष्य के हृदय की संरचना एवं क्रिया–विधि का सचित्र वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 3– मानव हृदय की आन्तरिक संरचना का सचित्र वर्णन कीजिए तथा हृदय के चालन एवं नियमन को समझाइए ?

इकाई 9 – रुधिर एवं लसीका परिसंचरण तंत्र

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 **रुधिर**

9.4 **प्लाज्मा**

9.5 **रुधिर कणिकाएं**

9.5.1 लाल रुधिर कणिकाएँ

9.5.2 श्वेत रुधिर कणिकाएँ

9.6 **रुधिर प्लेटलेट्स**

9.7 **रुधिर समूह**

9.8 लसीका

9.9 सारांश

9.10 शब्दावली

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने परिसंचरण तंत्र की संरचना एवं कार्य का अध्ययन किया और जाना कि शरीर में विभिन्न पोषक पदार्थों, गैसों, एवं उत्सर्जी पदार्थों के परिवहन हेतु एक सुविकसित अंग समूह पाया जाता है। मनुष्य के परिसंचरण तंत्र में दो प्रकार के तरल होते हैं– रुधिर एवं लसिका। ये दोनों तरल एक दूसरे से पृथक अनेक छोटी छोटी वाहिनियों द्वारा शरीर के सभी भागों में पहुंचते हैं। अतः परिसंचरण तंत्र को दो तंत्रों में बांटा जाता हैं – रुधिर परिसंचरण या संवहन तंत्र तथा लसिका तंत्र। प्रस्तुत इकाई में आप रुधिर तथा लसिका तंत्र तथा उनके कार्यों का अध्यन करेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद छात्र –

- रुधिर क्या होता है, रुधिर का शरीर के लिए क्या महत्त्व है की चर्चा कर सकेंगे।
- रुधिर के कार्यों की चर्चा कर सकेंगे।
- रुधिर समूह क्या होते हैं, की चर्चा कर सकेंगे।
- लसिका क्या है की चर्चा कर सकेंगे।

9.3 रुधिर

रुधिर एक लाल, वाहक संयोजी ऊतक (vascular connective tissue) है जो एक चिपचिपा अपारदर्शी द्रव है। इसकी सामान्य श्यानता 3.5–5.5 cp के मध्य होती है। (viscosity) 4.7 तथा क्षारीय प्रकृति (pH 7.54) होती है। ऑक्सीकृत रुधिर चमकीले लाल रंग का होता है, जबकि अनॉक्सीकृत रुधिर गुलाबी नीले रंग का होता है। रूधिर में प्लाज्मा एवं रुधिर कोशिकाएँ होती है। रक्त का सामान्य pH स्तर 7ण्35–7ण्45 के बीच होता है थोड़ा क्षारीय होता है।

यह सम्पूर्ण शरीर का लगभग 6.:10 भाग बनाता है। एक वयस्क मनुष्य में लगभग 8.5 लीटर रुधिर पाया जाता है। ऊँचे स्थानों पर रहने वाले लोगों में नीचे स्थानों पर रहने वाले लोगों की तुलना में अधिक रुधिर पाया जाता है। रुधिर दो भागों यथा प्लाज्मा और रुधिर कणिकाओं का बना होता है।

रुधिर के दो भाग है : (1) द्रव भाग, जिसे **प्लाज्मा** कहते हैं और (2) ठोस भाग, जो कोशिकाओं का बना होता है। रुधिर कोशिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं : (1) लाल रुधिर कोशिकाएँ (2) श्वेत रुधिर कोशिकाएँ और (3) विंबाणु, या प्लेटलेट्। प्लाज्मा में 91 से 92 प्रति शत जल और शेष में (क) सोडियम, पोटैशियम और कैल्सियम, (ख) वसा, (ग) शर्करा, (घ) प्रोटीन आदि होते हैं।

9.4 प्लाज्मा)Plasma)

प्लाज्मा पीले रंग का निर्जीव द्रव है, जो हल्का क्षारीय होता है। यह रुधिर के सम्पूर्ण आयतन का लगभग 55-60% भाग होता है।

प्लाज्मा के संघटक

जल – 90-62%

अकार्बनिक लवण – 1-2%

प्लाज्मा प्रोटीन – 6-7%

अन्य अकार्बनिक यौगिक – 1-2%

अवयव		मात्रा	प्रमुख कार्य
1-	जल	90%	रुधिर दाब व आयतन बनाए रखना
2-	कार्बनिक पदार्थ		
(a)	एल्बुमिन	45%	परासरण दाब उत्पन्न करना
(b)	ग्लोबुलिन	2-5%	परिवहन व प्रतिरक्षी उत्पन्न करना
(c)	फाइब्रिनोजन	0-3%	रुधिर स्कंदन
(d)	प्रोथम्बिन	–	रुधिर स्कंदन
(e)	ग्लूकोज	0-1%	पोषक पदार्थ , कोशिकीय इंधन
(f)	एमीनो अम्ल	0-4%	पोषक पदार्थ
(g)	वसा अम्ल	0-5%	पोषक पदार्थ
(h)	हार्मोन एंजाइम	–	नियामक पदार्थ
(i)	यूरिया , यूरिक अम्ल	0-4%	अपशिष्ट पदार्थ
(j)	अकार्बनिक पदार्थ	0-9%	विलेय विभव एवं pH का नियमन करना

प्लाज्मा के कार्य)Function of Plasma)

- सरल भोज्य पदार्थों (ग्लूकोज, अमीनो अम्ल आदि) का आँत्र एवं यकृत से शरीर के अन्य भागों से में परिवहन करता है।
- यह उपापचयी वर्ज्य पदार्थोंय जैसे– यूरिया, यूरिक अम्ल आदि का ऊतकों से वृक्कों (kidney) तक उत्सर्जन हेतु परिवहन करता है।
- यह अन्तःस्रावी ग्रन्थि से लक्ष्य अंगों तक हॉर्मोनों का परिवहन करता है।
- यह रुधिर का pH स्थिर रखने में सहायक होता है।
- प्लाज्मा में उपस्थित रुधिर प्रोटीन एवं फाइब्रिनोजन रुधिर का थक्का जमाने में सहायक होते हैं ।

9.5 रुधिर कणिकाए)Blood Corpuscles or Blood Cells)

ये कोशिकाएँ प्लाज्मा में पाई जाती हैं, जो रुधिर प्लाज्मा का 40–45% भाग होती है। रुधिर कणिकाओं का प्रतिशत हीमेटोक्रिट मूल्य (भ्मउंजवबतपज टंसनम) या पैक्ड सैल वॉल्यूम) (च्बामक ब्मसस टवसनउम) कहलाता है। इसमें तीन कणिकाएँ – लाल रुधिर कणिकाएँ, श्वेत रुधिर कणिकाएँ तथा रुधिर प्लेटलेट्स होती हैं।

9.5.1 लाल रुधिर कणिकाएँ)Red Blood Corpuscles-RBCs)

ये स्तनधारियों के अतिरिक्त सभी कशेरुकियों में अण्डाकार, द्विउत्तल एवं केन्द्रकीय होती हैं। स्तनियों में (ऊँट एवं लामास को छोड़कर) RBCs गोलाकार, द्विअवतल और केन्द्रक विहीन होती हैं। लाल रुधिर कोशिकाएँ लाल रंग की होती हैं। हीमोग्लोबिन के कारण इनका रंग लाल होता है। ये 7-2 म्यू व्यास की गोल परिधि की और दोनों ओर से पैसे या रुपए के समान चिपटी होती हैं। इनमें केंद्रक नहीं होता। वयस्क पुरुषों के रुधिर के प्रति घन मिलीमीटर में लगभग 50 लाख और स्त्रियों के रुधिर के प्रति घन मिलिमीटर में 45 लाख लाल रुधिर कोशिकाएँ होती हैं। इनकी कमी से रक्तक्षीणता तथा रक्त श्वेताणुमयता (Leukaemia) रोग होते हैं। इन्हें इरिथ्रोसाइट्स भी कहते है |

RBCs की अतिरिक्त मात्रा प्लीहा (spleen) में संग्रहित होती है, जो रुधिर बैंक (Blood Bank) की भाँति कार्य करती है। गर्भस्थ शिशु में RBCs का निर्माण यकृत एवं प्लीहा में, जबकि शिशु के जन्म के उपरान्त इसका निर्माण मुख्यतया अस्थि मज्जा (bone-marrow) में होता है। मनुष्य का RBCs का औसत जीवनकाल 120 दिन का, जबकि मेंढक एवं खरगोश के RBCs का औसत जीवनकाल क्रमशः 100 तथा 50–70 दिन होता है।

लाल रुधिर कोशिका का विकास

आधुनिक मत के अनुसार लाल रुधिर कोशिकाओं का निर्माण रक्त परिसंचरण तंत्र के बाहर होता है। सबसे पहले बनी कोशिका हीमोसाइटोब्लास्ट (Haemocytoblast) कहलाती है। पीछे यह कोशिका लाल रुधिर कोशिका में बदल जाती है। भ्रूण में लाल रुधिर कोशिका रुधिर परिसंचरण क्षेत्र में बनती है। पहले इसके मध्य में केंद्रक होता है, जो पीछे विलीन हो जाता है। शिशुओं के मध्यभ्रूण जीवन से लेकर जन्म के एक मास पूर्व तक लाल रुधिर कोशिकाओं का निर्माण यकृत एवं प्लीहा में होता है। शिशु जन्म के बाद लाल रुधिर कोशिकाएँ अस्थिमज्जा में बनती हैं।

हीमोग्लोबिन)Haemoglobin)

RBCs में एक लाल प्रोटीन रंजक हीमोग्लोबिन पाया जाता है, जो एक प्रोटीन ग्लोबिन (96%) तथा रंजक हीम (4-5%) से बना होता है। हीम अणु के केन्द्र में 'लौह' होता है। हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन के परिवहन का कार्य करता है । RBCs का रंग वैसे तो पीला होता है, परन्तु हीमोग्लोबिन के कारण लाल दिखाई देता है। हीमोग्लोबिन ही ऑक्सीजन का अवशोषण करता है और इसको रक्त द्वारा सारे शरीर में पहुँचता है। रुधिर में हीमोग्लोबिन की मात्रा 14-5 ग्राम प्रतिशत है। अनेक रोगों में इसकी मात्रा कम हो जाती है। हीम (Haem) का सूत्र (C34 H30 N4 O4 FcOH) है। इसमें लोहा रहता है। इसमें चार पिरोल समूह रहते हैं, जो क्लोरोफिल से समानता रखते हैं। इसका अपचयन और उपचयन सरलता से हो जाता है। अल्प मात्रा में यह सब प्राणियों और पादपों में पाया जाता है। हीमोग्लोबिन क्रिस्टलीय रूप से सरलता से प्राप्त हो सकता है।

रुधिर परीक्षा के लिए वयस्क व्यक्ति की अंगुली से या शिरा से रुधिर निकाला जाता है। रुधिर को जमने से बचाने के लिए स्कंदन प्रतिरोधी पदार्थ डालते हैं। इसके लिए प्रायरू अमोनियम और पोटैशियम ऑक्सेलेट प्रयुक्त किए जाते हैं। डबल ऑक्सेलेटेड रुधिर को लेकर, अपकेंद्रित में रखकर, आधे घंटे तक घुमाते हैं। रुधिर का कोशिकायुक्त अंश तल में बैठ जाता है और तरल अंश ऊपर रहता है। यही तरल अंश प्लैज्मा है।

RBCs की संख्या का निर्धारण हीमोसाइटोमीटर द्वारा किया जाता है। इसकी संख्या WBCs (White Blood Corpuscles) से अधिक होती है।

हेमरेज (Haemorrhage) एवं होमोलाइसिस (Haemolysis) से RBCs की संख्या घट जाती है, जिसे एनिमिया (Anaemia) कहा जाता है। RBCs की संख्या में सामान्य स्तर से अधिक वृद्धि पॉलीसाइमिया (polycythemia) कहलाती है।

9.5.2 श्वेत रुधिर कणिकाएँ (White Blood Corpuscles-WBCs)

इन्हें ल्यूकोसाइट्स भी कहते है | ये आकार में गोल अथवा अमीबाकार, केन्द्रकयुक्त तथा वर्णकविहीन कणिकाएँ होती हैं। WBCs का आकार RBCs से बड़ा, जबकि संख्या में RBCs से कम होती है। ल्यूकीमिया (रुधिर कैंसर) में WBCs की संख्या बढ़ जाती है। इनका निर्माण श्वेत अस्थि मज्जा में होता है , इनमें हिमोग्लोबिन का अभाव होता है परन्तु केन्द्रक उपस्थित होता है , इनकी संख्या 6000 -8000 प्रतिघन मि.मी होती है | WBC की औसत आयु 45 दिन की होती है | ये लाल रुधिर कोशिकाओं से पूर्णतया भिन्न होती हैं। कुछ श्वेत रुधिर कोशिकाओं में कणिकाएँ होती हैं।

श्वेत रुधिर कोशिकाओं में जीवाणुओं के भक्षण करने की शक्ति होती है। संक्रामक रोगों के हो जाने पर इनकी संख्या बढ़ जाती है, पर मियादी बुखार, या तपेदिक हो जाने पर इनकी संख्या घट जाती है। श्वेत रुधिर कोशिकाएँ दो प्रकार की होती हैं, एक में कणिकाएँ नहीं होतीं और दूसरी में कणिकाएँ होती हैं। पहले प्रकार को एग्रैन्यूलोसाइट्स (Agranulocytes) और दूसरे प्रकार को ग्रैन्यूलोसाइट्स (Granulocytes) कहते हैं।

एग्रैन्यूलोसाइट्स कोशिकाएँ दो प्रकार की होती हैं : (1) लसीकाणु (Lymphocyte) कोशिका और (2) मोनोसाइट (Monocyte) कोशिका। लसीका कोशिकाएँ लघु और विशाल दो प्रकार की होती है। मोनोसाइट कुल श्वेत रुधिर कोशिकाओं की 5 से 10 प्रतिशत तक होती हैं।

ग्रैन्यूलोसाइट कोशिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं रू (1) न्यूट्रोफिल्स (Neutrophiles, 60 से 70 प्रतिशत), (2) ईओसिनोफिल्स (Eosinophilesm, 1 से 4 प्रतिशत) और (3) बेसोफिल्स (Basophiles 0-5 से 1 प्रतिशत)।

ग्रेन्यूलोसाइट्स (Granulocytes)

ये कोशिकाएँ लाल अस्थि मज्जा में बनती हैं।

ये कुल ल्यूकोसाइट्स की लगभग 65% होती हैं।

ये केन्द्रक के आकार एवं उनके कणों की अभिरंजक क्रियाओं के आधार पर पुनः निम्न प्रकार विभाजित की जा सकती हैं :

न्यूट्रोफिल्स (Neutrophils)

ये WBCs की कुल संख्या का लगभग 62% होती है।

इनके कोशिकाद्रव्य में महीन कण पाए जाते हैं, जो अम्लीय एवं क्षारीय अभिरंजकों द्वारा अभिरंजित होते हैं तथा बैंगनी रंग के दिखाई देते हैं।

ये शरीर के रक्षक की भाँति कार्य करती हैं

न्यूट्रोफिल्स शरीर की रक्षा, एसिडोफिल्स घावों को भरने, बेसोफिल्स रुधिर का थक्का जमाने, लिम्फोसाइट प्रतिरक्षियों का संश्लेषण तथा मोनोसाइट जीवाणुओं का भक्षण का कार्य करती है।

बेसोफिल्स (Basophils)

ये सायनोफिल्स भी कहलाती हैं।

कोशिकाद्रव्यी कण बड़े होते हैं, जो नीले रंग के दिखाई पड़ते हैं।

ये हिपेरिन एवं हिस्टेमिइन (histamine) को स्रावित कर कोशिकाओं में रुधिर का थक्का जमने से रोकती हैं।

एसिडोफिल्स (Acidophils)

इनका केन्द्रक द्विपालीयुक्त (bilobed) होता है।

एलर्जी में इनकी संख्या बढ़ जाती हैं।

ये घावों को भरने में सहायक होती हैं।

एग्रेन्यूलोसाइट्स (Agranulocytes)

ये कुल WBCs का लगभग 35% भाग होती है।

एग्रेन्यूलोसाइट्स को मोनोसाइट्स (Monocytes) व लिम्फोसाइट्स में विभाजित किया जा सकता है

मोनोसाइट्स (Monocytes)

ये सबसे बड़ी ल्यूकोसाइट्स (WBCs) है।

इनका केन्द्रक अण्डाकार, वृक्क अथवा घोड़े की नाल के आकार का और बाह्य केन्द्रीय होता है।

इनका निर्माण लिम्फनोड एवं प्लीहा में होता है।

ये अत्यधिक चल होती हैं तथा जीवाणु एवं अन्य रोगकारक जीवों का भक्षण करने का कार्य करती हैं।

लिम्फोसाइट्स (Lymphocytes)

ये ल्यूकोसाइट्स (WBCs) का लगभग 30% भाग बनाती हैं।

इनका केन्द्रक बड़ा और गोल होता है तथा कोशिकाद्रव्य पतली परिधीय परत बनाता है।

ये प्रतिरक्षियों का निर्माण कर शरीर के प्रतिरक्षा तन्त्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

श्वेत रुधिर कोशिकाएँ निम्नलिखित कार्य करती हैं :

(1) आगंतुक जीवाणुओं का भक्षण करती हैं,

(2) ये प्रतिपिंडों की रचना करती हैं,

(3) हिपेरिन उत्पन्न कर रुधिरवाहिकाओं में ये रुधिर को जमने से रोकती हैं,

(4) ये प्लाज्मा प्रोटीन और कुछ कोशिका प्रोटीन की भी रचना करती हैं तथा

(5) हिस्टामिनरोधी कार्य कर शरीर को एलर्जी से बचाने में सहायक होती हैं।

9.6 रुधिर प्लेटलेट्स (Blood Platelets)

स्तनधारियों में रुधिर प्लेटलेट्स सूक्ष्म, रंगहीन, केन्द्रकविहीन गोलाकार तथा चक्रिक (discoidal) होती है। मेंढ़क के शरीर के रुधिर में छोटी–छोटी तर्क के आकार की केन्द्रक युक्त कोशिका थ्रोम्बोसाइट होती है। ये मेगाफेरियोसाइट कोशिकाओं की कोशिका द्रव्य टुकड़े होते है, ये अनियमित आकृति की होती है | इनमें केंद्रक का अभाव होता है , इनका निर्माण अस्थि मज्जा में होता है | इनका विनाश यकृत प्लीहा में होता है |

ये प्रति घन मिलीमीटर रुधिर में 2-5 लाख से 5 लाख तक होते हें। इनका आकर 2-5 म्यू होता है। इनका जीवन काल 7–10 दिन का होता है। इनके कार्य निम्नलिखित हैं :

(1) ये रुधिर के जमने (स्क्रंदन) में सहायक होते हैं तथा

(2) रुधिरवाहिका के किसी कारणवश टूट जाने पर ये टूटे स्थान पर एकत्र होकर कोशिकाओं को स्थिर करते हैं।

रुधिर का थक्का बनना, या जमना (रुधिर का स्कन्दन) (Blood Coagution)

रुधिर का रुधिर वाहिकाओं से बाहर आते ही रुधिर के अवयव एक जैल समान संरचना में परिवर्तित हो जाते है , जिसे रक्त स्कंदन कहते है यह एक सुरक्षात्मक प्रणाली है जो घाव में रोगाणुओं के प्रवेश को रोकती है तथा रुधिर क्षति को रोकती है सरल शब्दों में रुधिर द्रव होता है, पर शरीर से बाहर निकलने पर वह कुछ मिनटों में जम जाता है, जिसे थक्का या रक्त स्कंदनकहते हैं। थक्का बनने के समय का निर्धारण (Coagulationting) कई विधियों से किया जा सकता है।

रुधिर का थक्का बनने की विधियाँ या प्रक्रिया

रुधिर के जमने में (1) प्रथ्रोम्बिन, (2) कैल्सियम परमाणु, (3) फाइब्रिनोजिन और (4) थ्रांबोप्लास्टिन की आवश्यकता होती है। पहले तीन पदार्थ रक्त में रहते हैं और चौथा प्लेटलेट के टूटने से निकलता है। इनके अतिरिक्त ऐंट्थ्राम्बिन और हिपेरिन भी रहते हैं। ताप के नीचा होने और कैल्सियम को निकाल लेने से तथा जल मिलाकर रुधिर के पतला कर देने से रुधिर का जमना रुक जाता है। मैग्नीशियम तथा सोडियम सल्फेट को मिलाने से तथा हिपेरिन, जोंकसत और डिकूमेरिन आदि रुधिर के जमने में बाधक होते हैं। रुधिर के शीघ्र जमने में ऊष्मा, थ्रांबीन, ऐड्रीनलीन, कैल्सियम क्लोराड तथा विटामिन के (k) से सहायता मिलती है।

जब किसी कटे हुए भाग से रुधिर बाहर निकलता है, तब यह जैली के रूप में कुछ ही मिनटों में जम जाता है। इसे स्कन्दन कहते हैं। रुधिर के थक्का बनने की क्रिया एक जटिल क्रिया है। जब किसी स्थान से रुधिर बढ़ने लगता है और यह वायु के आता है, तो रुधिर में उपस्थित थ्रॉम्बोसाइट्स टूट जाती है तथा इससे एक विशिष्ट रासायनिक पदार्थ मुक्त होकर रुधिर के प्रोटीन से क्रिया करता है तथा प्रोथॉम्बोप्लास्टीन नामक पदार्थ में बदल जाता है। यह प्रोथॉम्बोप्लास्टीन रुधिर के कैल्शियम आयन से क्रिया करके थ्रॉम्बोप्लस्टीन बनाती है। थॉम्बोप्लास्टीन, कैल्शियम आयन (Ca+) तथा ट्रिपटेज नामक एन्जाइस के साथ क्रिया करके निष्क्रिय प्रोथॉम्बिन को सक्रिय थ्रॉम्बीन नामक पदार्थ में परिवर्तित कर देती है।

यह सक्रिय थ्रॉम्बिन रुधिर के प्रोटीन फाइब्रिनोजेन पर क्रिया करता है और उसे फाइब्रिन में परिवर्तित कर देता है। फॉइब्रिन बारीक एवं कोमल तन्तुओं का जाल होता है। यह जाल इतना बारीक एवं सूक्ष्म होता है कि इसमें रुधिर के कण, विशेषकर RBC, फँस जाते हैं और एक लाल ठोस पिण्ड–सा बन जाता है। इसे रुधिर थक्का कहते हैं। थक्का बहने वाले रुधिर को बन्द कर देता है। रुधिर स्कन्दन के बाद कुछ पीला–सा पदार्थ रह जाता है जिसे सीरम कहते हैं। सीरम का थक्का नहीं बन सकता क्योंकि इसमें फाइब्रिनोजन नहीं होता हैं। रुधिर में प्रायः एक प्रति स्कन्दन होता है जिसे हिपेरिन कहते हैं। यह प्रोथॉम्बिन के उत्प्ररेण को रोकता है। इसी कारण शरीर में बहते समय रुधिर नहीं जमता।

रुधिर के थक्का बनने के दौरान होने वाली महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया; थ्रॉम्बोप्लास्टिन + प्रोथॉम्बिन + कैल्शियम = थ्रॉम्बिन;

थ्रॉम्बिन + फाइब्रिनोजन = फाइब्रिन; फाइब्रिन + रुधिर रुधिराणु = रुधिर का थक्का

रुधिर वाहिका से निकाले गए रुधिर को जमने से बचाने के लिए उसमें थोड़ा–सा ऑक्जेलेट (सोडियम अयदा पोटैशियम ऑक्जेलेट) मिलाया जाता है।

	Group A	Group B	Group AB	Group O
Red blood cell type	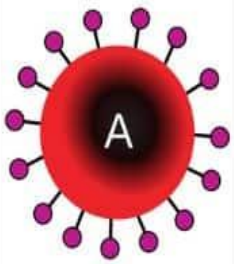	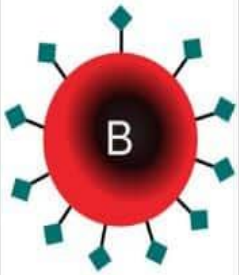	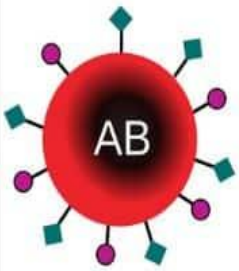	
Antibodies in plasma	Anti-B	Anti-A	None	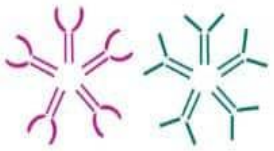 Anti-A and Anti-B
Antigens in red blood cell	A antigen	B antigen	A and B antigens	None

9.7 रुधिर समूह (Blood Groups)

रुधिर समूह के खोजकर्ता कार्ल लैण्डस्टीनर थे, जिन्होंने 1902 में इसकी खोज की थी। रुधिर को चार समूहों में बाँटा गया है (i) समूह–A (ii) समूह–B (iii) समूह– AB एवं (iv) समूह – O

रुधिर समूह–A (Blood Group-A) – इसमें प्रतिजन – A तथा प्रतिरक्षी – b पाए जाते हैं।

रुधिर समूह–B (Blood Group-B) – इसमें प्रतिजन – B तथा प्रतिरक्षी – a पाए जाते हैं। रुधिर समूह – AB (Blood Group-AB) इसमें प्रतिरक्षी अनुपस्थित रहता है तथा एन्टीजन– AB रहता है। इस समूह के व्यक्ति किसी भी समूह का रुधिर प्राप्त कर सकता है। इसलिए, इसे सर्वग्राही रुधिर समूह (Universal Blood Recipient) कहते हैं।

रुधिर समूह–O (Blood Group-O) – इसके खोजकर्ता डी कास्टलो तथा स्टल थे। इसमें प्रतिरक्षी–ab उपस्थित रहता है। लेकिन प्रतिजन अनुपस्थित रहता है। इस समूह का व्यक्ति किसी भी समूह को रुधिर प्रदान कर सकता है। इसलिए, इसे सर्वदाता समूह (Universal Blood Donor) कहते हैं।

एक रुधिर वर्ग के व्यक्ति को उसी वर्ग का रक्त दिया जा सकता है। दूसरे वर्ग का रक्त देने से उस व्यक्ति की लाल रुधिर कोशिकाएँ अवक्षिप्त हो सकती हैं। पर समान वर्ग का रक्त देने से अवक्षेपण नहीं होता। दूसरे वर्ग का रक्त देने से व्यक्ति की मृत्यु तक हो सकती है। दुर्घटना में कही कट जाने से, या शल्य कर्म में कभी कभी इतना रक्तस्राव होता है कि शरीर में रक्त की मात्रा बहुत कम हो जाती है और व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है। ऐसी दशा में रोगी के शरीर में रुधिर पहुँचाने से उसकी प्राणरक्षा संभव होती है। उस समय रुधिरपरीक्षा द्वारा रोगी का रुधिर वर्ग मालूम कर, उसी वर्ग के रुधिरवाले मनुष्य का रुधिर लेकर, रोगी को दिया किंतु ओ (O) वर्ग का रुधिर ऐसा होता है कि उसको अन्य वर्गों के व्यक्ति ग्रहण कर सकते हैं। इस कारण ओ (O) वर्ग के रुधिर वाले व्यक्ति सर्वदाता (Universal Donors) कहे जाते हैं। एबी (AB) वर्ग के रुधिरवाले व्यक्ति अन्य सब वर्गों का रुधिर ग्रहण कर सकते हैं। इसलिए ये व्यक्ति सर्वग्रहणकर्ता (Universal Receipients) कहे जाते हैं। रक्त में आर, एच (Rh) तत्व भी होता है, जिसकी परीक्षा भी आवश्यक है।

रुधिर समूह	लाल रुधिर कणिका में प्रतिजन	प्लाज्मा में उपस्थित प्रतिरक्षी	रक्तदान की संभावना
A	A	B	A तथा AB वर्ग के रक्तदान कर सकता है।

B	B	A	B तथा AB वर्ग को रक्तदान कर सकता है।
AB	A तथा B	कोई नही	किसी भी वर्ग का रुधिर प्राप्त (सर्वग्राही) कर सकता है, परन्तु केवल AB वर्ग के व्यक्ति को ही रक्तदान कर सकता है।
O	कोई नही	तथा	किसी भी वर्ग को रक्तदान (सर्वदाता) कर सकता है, परन्तु O से ही रुधिर प्राप्त कर सकता है।

मानव में रुधिर आधान (Blood Transfusion in Human Being)

मनुष्य के रुधिर समूहों में सामान्यतया कोई भी रुधिर – अभिश्लेषण (agglutination) नहीं होता। इसका कारण यह है कि किसी भी रुधिर समूह में अनुरूप (corresponding) प्रतिरक्षी एवं प्रतिजन उपस्थित नहीं होते अर्थात् प्रतिजन A के साथ प्रतिरक्षी–a, एन्टीजन–B के साथ प्रतिरक्षी – b उपस्थित नहीं होते।

यदि किसी रुधिर समूह के रुधिर को किसी ऐसे रुधिर वर्ग के रुधिर में मिश्रित कर दिया जाए जिसमें अनुरूप प्रतिजन एंव प्रतिरक्षी उपस्थित हैं, तब रुधिर की लाल कोशिकाओं का अभिश्लेषण हो जाएगा।

उदाहरण, A रुधिर समूह के रुधिर का, B रुधिर समूह के रुधिर में मिश्रण कर दें, तो रुधिर कोशिकाओं का अभिश्लेषण हो जाएगा। इसमें लाल रुधिर कोशिकाएँ एक–दूसरे से चिपक जाती हैं।

इस प्रकार के चिपकाव के फलस्वरूप रुधिर वाहिनियों में अवरोध उत्पन्न हो जाता है एवं प्राणी की मृत्यु हो जाती है। अतः रुधिर आधान में एन्टीजन एवं प्रतिरक्षी का ऐसा ताल–मेल करना चाहिए, जिससे रुधिर का अभिश्लेषण न हो सके।

हीमोग्लोबिन की मात्रा पुरुषों में 2.5-17.5 ग्राम / 100 घन सेमी तथा स्त्रियों में 11.5-16.6 ग्राम / 100 घन सेमी होती है। रुधिर में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है परन्तु लसीका में कम होती है। ब्लड बैंक में रुधिर 10°C पर सुरक्षित रहता है।

Rh कारक (Rh-factor)

1940 में लैण्डस्टीनर और वीनर ने रुधिर में एक अन्य प्रकार के प्रतिजन का पता लगाया। इन्होंने इस प्रतिजन की खोज रीसस नामक बन्दर में की थी। इसलिए, इस प्रतिजन का नामकरण Rh कारक (Rh-factor) किया गया।

जिन व्यक्तियों के रुधिर में यह तत्व पाया जाता है, उनका रुधिर Rh सहित (Rh+) कहलाता है तथा जिनके

रुधिर में नहीं पाया जाता, उनका रुधिर Rh रहित (Rh–) कहलाता है। रुधिर आधान के समय Rh-कारक की भी जाँच की जाती है। Rh+ को Rh+ का रुधिर ही दिया जाता है। यदि Rh+ रुधिर वर्ग का रुधिर Rh– रुधिर वर्ग वाले व्यक्ति को दिया जाए, तो प्रथम बार कम मात्रा होने के कारण कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। किन्तु, जब दूसरी बार यदि इसी प्रकार रक्ताधान किया जाएगा तो रुधिर अभिश्लेषण के कारण Rh– रुधिर वर्ग वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाएगी।

यदि पिता का रुधिर Rh+ हो तथा माता का रुधिर Rh– हो तो जन्म लेने वाले शिशु की जन्म से पहले गर्भावस्था में अथवा जन्म के तुरन्त बाद मृत्यु हो जाती है। ऐसा प्रथम सन्तान के जन्म के समय होता है। इस बीमारी को इरिथ्रोब्लास्टोसिस फीटेलिस (Erythroblastosis Foetalis) कहते हैं।

विभिन्न समूह वाले माता–पिता से उत्पन्न होने वाले बच्चों के सम्भावित रुधिर समूह

माता–पिता के रुधिर समूह	बच्चों में सम्भावित रुधिर समूह	बच्चों में असम्भावित रुधिर समूह
A x A	A या O	B या AB
A x B	O, A, B, AB	
A x AB	A, B, AB	O
A x O	O या A	B या AB
B x B	B या O	A, AB
B x AB	A, B, AB	O
B x O	O या B	A, AB
AB x AB	A, B, AB	O
AB x O	A, B	O, AB
O x O	O	A, B, AB

9.8 लसीका (Lymph)

रूधिर वाहिनियों (Blood Vessels) एवं ऊतकों के बीच के खाली स्थान पर एक रंगहीन स्वच्छ तरल पदार्थ पाया जाता है जिसे लसीका (Lymph) कहते हैं। रूधिर प्लाज्मा रूधिर कोशिकाओं की पतली दीवार से छनकर ऊतक कोशिकाओं में मिल जाता है। इस छने हुए द्रव को ऊतक द्रव (Tissue Fluid) कहते हैं।

लसीका में लाल रक्त कणिकाएं (RBC) एवं हीमोग्लोबिन अनुपस्थित होता है। जबकि श्वेत रक्त कणिकाएं अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। इसमें ऑक्सीजन तथा पोषक पदार्थों की मात्रा रक्त की अपेक्षा कम होती है तथा CO_2 एवं उत्सर्जी पदार्थों की मात्रा अधिक होती है। जल ऊतकी द्रव वाहिकाओं (vessels) में एकत्रित हो जाता है। तब इन वाहिकाओं को लसीका वाहिका (Lymph vessel) कहते हैं। लसीका कोशिकाएँ, लसीका तथा रूधिर के मध्य भोज्य पदार्थ गैस, हार्मोन्स आदि को भेजने का कार्य करती है।

अन्त में लसीका वाहिकाएँ मिलकर वक्षीय वाहिनी (Thoracic Duct) तथा दाहिनी लसीका वाहिनी (Right Lymphatic Duct) का निर्माण करती हैं, जो शिरातंत्र (Venaus System) से जुड़ जाती है।

लसीका गाँठें (Lymph nodes)

लसीका परिसंचरण तंत्र में लसीका वाहिकाएँ बीच–बीच में मिल कर गाँठों के समान संरचनाएँ बनाती हैं, जिन्हें लसीका गाँठें (Lymph nodes) कहते हैं। मानव शरीर में गर्दन तथा कंधों के नीचे के स्थान अर्थात् बहुकक्ष (Armpits) में सबसे ज्यादा लसीका गांठें पायी जाती हैं।

लसीका वाहिनियों (Lymph Vessels) से सम्बन्धित अंगों को लसीका अंग कहते हैं। इनमें लिम्फोसाइट (WBC) का निर्माण होता है जो शरीर को रोगों से लड़ने के लिये प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करता है। लसीका गाँठें, प्लीहा, थाइमस, टॉन्सिल्स आदि लिम्फोसाट्स का निर्माण करती हैं, जो बाहरी पदार्थों जीवाणुओं आदि से शरीर की सुरक्षा हेतु कार्य करती हैं।

लसीका के कार्य (Function of Lymph)

1. जल का अस्थायी संचय (Temporary Storage of Water) शरीर में प्रवेश करने वाले जल के लिए लसीका वाहिनियाँ अस्थायी जलाशय (Reservoir) का कार्य करती है।
2. अतिरिक्त जल का अवशोषण (Absorption of Excess Water) : ऊतक द्रव से जल की बची हुयी मात्रा को हटाकर लसीका उसे रूधिर परिसंचरण में डालती है।
3. दीर्घाणुओं का परिवहन (Transportation Macromolecules) : लसीका द्वारा बड़े–बड़े अणुओं जैसे– प्रोटीन, हार्मोन आदि को रूधिर परिसंचरण में ले जाकर डाला जाता है। क्योंकि ये अणु रूधिर केशिकाओं की भित्तियों को नहीं भेद पाते। अतः ये अणु सीधे रूधिर परिसंचरण में नहीं पहुँच पाते हैं।
4. वसा का परिवहन (Transportation of Fat) : वसा का परिवहन लसीका के द्वारा ही होता है। आहारनाल मे वसा के पाचन के पश्चात् वसा अम्ल एवं ग्लिसरॉल ये रूधिर वाहिनियों में न जाकर लैक्ट्रीयल में

आते हैं और यहाँ से लसीका तंत्र में पहुँचते हैं।

5. संक्रमण से सुरक्षा (Protection from Infection) : लसीका में मौजूद लिम्फोसाइट्स रोगाणुओं को नष्ट कर संक्रमण से मनुष्य की सुरक्षा करते हैं।

लसीका एवं रुधिर में अन्तर

लसिका	रुधिर
लसीका में श्वेत रुधिर कणिकाएँ अधिक संख्या में होती हैं।	रुधिर में श्वेत रुधिर कणिकाएँ लसीका के अनुपात में कम संख्या में होती हैं।
लसीका में फाइब्रिनोजन की मात्रा कम होती है, फिर भी थक्का जमने की शक्ति इसमें निहित होती है।	रुधिर में फाइबिनोजन की मात्रा अधिक होती है, जिससे यह आसानी के साथ थक्का बन जाता है।
लसीका द्रव रंगहीन होता है।	रुधिर का रंग लाल होता है।
लसीका में लाल रुधिर कणिकाएँ कम संख्या में होती हैं।	रुधिर में लाल रुधिर कणिकाएँ अधिक संख्या में होती हैं।

परिसंचरण तंत्र पर योग का प्रभाव

एक स्वस्थ जीवन के लिए एक स्वस्थ संचार प्रणाली महत्वपूर्ण है। योग संचार सम्बन्धी बीमारियों और उच्चरक्तचाप, उथली श्वास, तनाव और कोरोनरी हृदय रोग आदि को ठीक करता है। मानव शरीर की हृदय प्रणाली में हृदय और उसकी धमनियाँ शामिल हैं।

1. परिसंचरण तंत्र पर आसन का प्रभाव – सूर्य नमस्कार के माध्यम से एक अच्छी कार्डियो कसरत हासिल की जा सकती है जिससे हमारा हृदय लचीला और टोंन होता है। आसन हृदय की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है, इस प्रकार बेहतर परिसंचरण और हृदय रोग की संभावना कम होती है। योग रक्त के प्रवाह को बढ़ाता है और हीमोग्लोबिन और लाल रक्त कोशिकाओं के स्तर को बढ़ाता है, जो अधिक ऑक्सीजन को शरीर की कोशिकाओं तक पहुँचने की अनुमति देता है और उनके कार्य को बढ़ाता है। जो दिल के दौरे और स्ट्रोक को कम कर सकता है, क्योंकि वे अक्सर रक्त के थक्कों के कारण होता है। शीर्षासन, सर्वांगासन, हलासन आदि रक्त के प्रवाह को हृदय की ओर कर देते हैं जिससे हृदय की कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होती है।

2. परिसंचरण तंत्र पर प्राणायाम का प्रभाव – प्राणायाम मूड विकारों और तनाव में कमी लाता है जिसके फलस्वरूप सिस्टोलिक रक्तचाप, डायस्टोलिक रक्तचाप, धमनी दबाव और ऑर्थोस्टैटिक सहिष्णुता में भी काफी

कमी आती है। अनुलोम–विलोम, भ्रामरी, भस्त्रिका, शीतली, सीतकारी, उज्जायी और ऊँ का उच्चारण हृदय सम्बन्धी विकारों को कम करते हैं। हृदय सम्बन्धी रोग के गम्भीर होने पर प्राणायाम में कुम्भक का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

3. परिसंचरण तंत्र पर मुद्रा एवं बंध का प्रभाव – परिसंचरण तंत्र पर मुद्रा एवं बंध का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। गम्भीर हृदय सम्बन्धी रोगों में बंध का प्रयोग नहीं करना चाहिए। बंध अनिवार्य रूप से एक स्थिर मुद्रा है जो शरीर के एक निश्चित भाग को संकुचित करता है जिससे रक्त और लसीका के प्रवाह को अन्य भागों में फिर से निर्देशित किया जाता है। जलंधर बंध संचार और श्वसन प्रणालियों को उत्तेजित करने में मदद करता है। अनाहत चक्र छाती के केन्द्र में स्थित है, हृदय के करीब है। यह मुद्रा हृदय को मजबूत बनाता है।

4. परिसंचरण तंत्र पर ध्यान का प्रभाव – ध्यान मस्तिष्क के विशिष्ट भागों को लक्षित करके शरीर के शारीरिक कार्यों को बदलने की अनुमति देता है जो गहरी शिथिलता और शांति की स्थिति प्राप्त करने की अनुमति देता है, जिससे हृदय पंप धीरे–धीरे और लगातार होता है। ध्यान का प्रभाव इसके खत्म होने के काफी समय बाद तक रहता है। जब मस्तिष्क और संपूर्ण संचार प्रणाली अच्छी स्थिति में होती है, तो आपका शरीर आसानी से जीवन के दैनिक तनावों का सामना करता है। ध्यान हृदय में ऑक्सीजन और पोषक तत्व की कमी को पूरा करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. एंटीबाडीज का निर्माण किस्से होता है

(a) प्लेटलेट्स से

(b) लाल रुधिरिराणु से

(c) लिम्फोसिट्स

(d) इस्नोफिल्स

2. शरीर में अंदर रक्त का स्कंदन किसकी उपस्थिति के कारण नहीं होता है?

(a) हीमोग्लोबिन

(b) हिपेरिन

(c) थ्रोम्बिन

(d) ग्लोबिन

3. यदि दोनों जनकों का रुधिर वर्ग AB हो, तो उनके बच्चों का संभावित रुधिर वर्ग होगा –

(a) A B AB और O

(b) A , B और AB

(c) A और B

(d) A, B और O

4. मानव रक्तधान के लिए कौन सा रक्त समूह सार्वभौमिक दाता होता है ?

(a) B पॉजिटिव समूह

(b) O समूह

(c) AB समूह

(d) A पॉजिटिव समूह

9.9 सारांश

उपरोक्त इकाई में आपने जाना कि रुधिर एक तरल संयोजी उत्तक है,रूधिर में प्लाज्मा एवं रुधिर कोशिकाएँ होती है । मनुष्य में सामान्यत: रुधिर का आयतन 5 लीटर होता है । जिसके दो भाग है द्रव भाग, जिसे प्लाज्मा कहते हैं और ठोस भाग, जो कोशिकाओं का बना होता है। रुधिर कोशिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं : लाल रुधिर कोशिकाएँ, श्वेत रुधिर कोशिकाएँ और विंबाणु। प्लाज्मा में 91 से 92 प्रतिशत जल और शेष में सोडियम, पोटैशियम और कैल्सियम, वसा, शर्करा, प्रोटीन आदि होते हैं।

जब रुधिर केशिकाओं से होकर की ओर बहता है तब उसका द्रव भाग (रुधिर रस) कुछ भौतिक क्रिया, रासायनिक प्रतिक्रिया या शारीरिक प्रतिक्रिया के कारण केशिकाओं की पतली दीवारों के माध्यम से छनकर बाहर आ जाता है। बाहर निकला हुआ यही रुधिर रस लसीका (Lymph) कहलाता है। यह वास्तव में रुधिर ही है, जिसमें केवल रुधिरकणों का अभाव रहता है। लसीका रक्त में से ऑक्सीजन लेकर शरीर के तन्तुओं को पहुँचाता है और उनमें उपस्थित कार्बन–डाई–ऑक्साइड को बाहर निकालने में मदद करता है। इस प्रकार लसीका–वाहिनियों द्वारा शरीर के तन्तुओं का पोषण होता है।

9.10 शब्दावली

रुधिर – रक्त / खून

हीम – लौह युक्त पदार्थ

ग्लोबिन – एक प्रोटीन

अशुद्ध रक्त – ऑक्सीजन रहित रक्त

शुद्ध रक्त – ऑक्सीजन युक्त रक्त

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (c) लिम्फोसाइट्स
2. (b) हिपेरिन
3. (b) A , B और AB
4. (b) O समूह

9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रस्तोगी, डॉ. वीरबाला (2016), जैव रसायन तथा कार्यकी, केदारनाथ रामनाथ
2. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश (2008), मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन, आगरा
3. दीक्षित राजेश (2002), शरीर रचना क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा
4. शर्मा, डॉ. ताराचन्द्र (1999), आयुर्वेदिक शरीर रचना विज्ञान, नाडा पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक
5. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009), एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, भाषा भवन, मथुरा

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 मानव रुधिर वर्ग से आप क्या समझते हैं ?

प्रश्न 2 रुधिर तथा लसिका में अंतर बताइये। लसिका की संरचना एवं कार्यों की विवेचना कीजिये ?

इकाई 10 – अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ – संरचना व कार्य

इकाई की रूपरेखा

प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 हार्मोन्स

10.3 अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ

10.3.1 थाइरॉयड ग्रन्थि

10.3.2 पैराथाइरॉयड ग्रन्थि

10.3.3 पीनियल ग्रन्थि

10.3.4 थाइमस ग्रन्थि

10.3.5 एड्रीनल या सुप्ररीनल ग्रन्थि

10.4.6 पीयूष या पिट्यूटरी ग्रन्थि

10.4.7 अग्न्याशयिक द्विपिकाएँ

10.4.8 जनन ग्रन्थि

10.4 सारांश

10.5 शब्दावली

10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 : प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने जाना कि प्रत्येक जीव जीवित रहने के लिए पोषण, श्वसन, उत्सर्जन आदि कई प्रकार की जैव क्रियाएँ (vital activities) करता रहता है तथा पृथ्वी पर अपनी जाति के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए प्रजनन (reproduction) द्वारा सन्तानोत्पत्ति भी करता है। इसके अतिरिक्त, अपनी क्रियाओ में आवश्यक फेर–बदल करके अर्थात उपयुक्त प्रतिक्रियाएँ (reactions) करके, प्रत्येक जीवधारी वातावरण की सदैव बदलती रहने वाली उन प्रतिकूल भौतिक–रासायनिक दशाओं (physico-chemical conditions) का सामना करता रहता है जो इसके शरीर की संरचनात्मक अखण्डता तथा क्रियात्मक सन्तुलन को चुनौती देती रहती है।

जैव उद्विकास (Organic Evolution) क्रम में शरीर संघठन में जटिलता बढ़ने के साथ–साथ विभिन्न जैव क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को सम्पन्न करने हेतु पृथक ऊतकों, अंगों एवं अंग तन्त्रों का विकास हुआ। जन्तुओं में इसके साथ–साथ शरीर के विभिन्न भागों के कार्यो में ताल–मेल अर्थात सामन्जस्य (co-ordination) बनाए रखने के लिए दो सूचना प्रसारण (information transmission) तन्त्रों का क्रमिक विकास हुआ– तन्त्रिका तंत्र (nervous system) तथा अन्तःस्रावी तन्त्र (endocrine system), क्योंकि मानव सर्वश्रेष्ठ जन्तु है, ये दोनों तन्त्र मानव में ही अधिकतम विकसित होते हैं। प्रस्तुत इकाई में अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ एवं उनके कार्यो का वर्णन किया गया है।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई अध्ययन करने के बाद विद्यार्थी

- अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की चर्चा कर सकेंगे।
- पीयूष ग्रन्थि की विवेचना कर सकेंगे।
- थॉइरॉइड ग्रथि तथा पैराथाइरॉयड ग्रंथि को समझा सकेंगे।
- एड्रीनल ग्रंथि की विस्तार से व्याख्या कर सकेंगे।
- अग्न्याशयिक ग्रन्थि की चर्चा कर सकेंगे।
- पिनियल व थाइमस ग्रन्थि को समझा सकेंगे।
- जनन ग्रन्थि की चर्चा कर सकेंगे।

10.3 हॉर्मोन्स

हमारे शरीर की कुछ विशिष्ट प्रकार की ग्रन्थियां पायी जाती हैं जो विशेष प्रकार के पदार्थों का स्रावण करती हैं

HORMONES

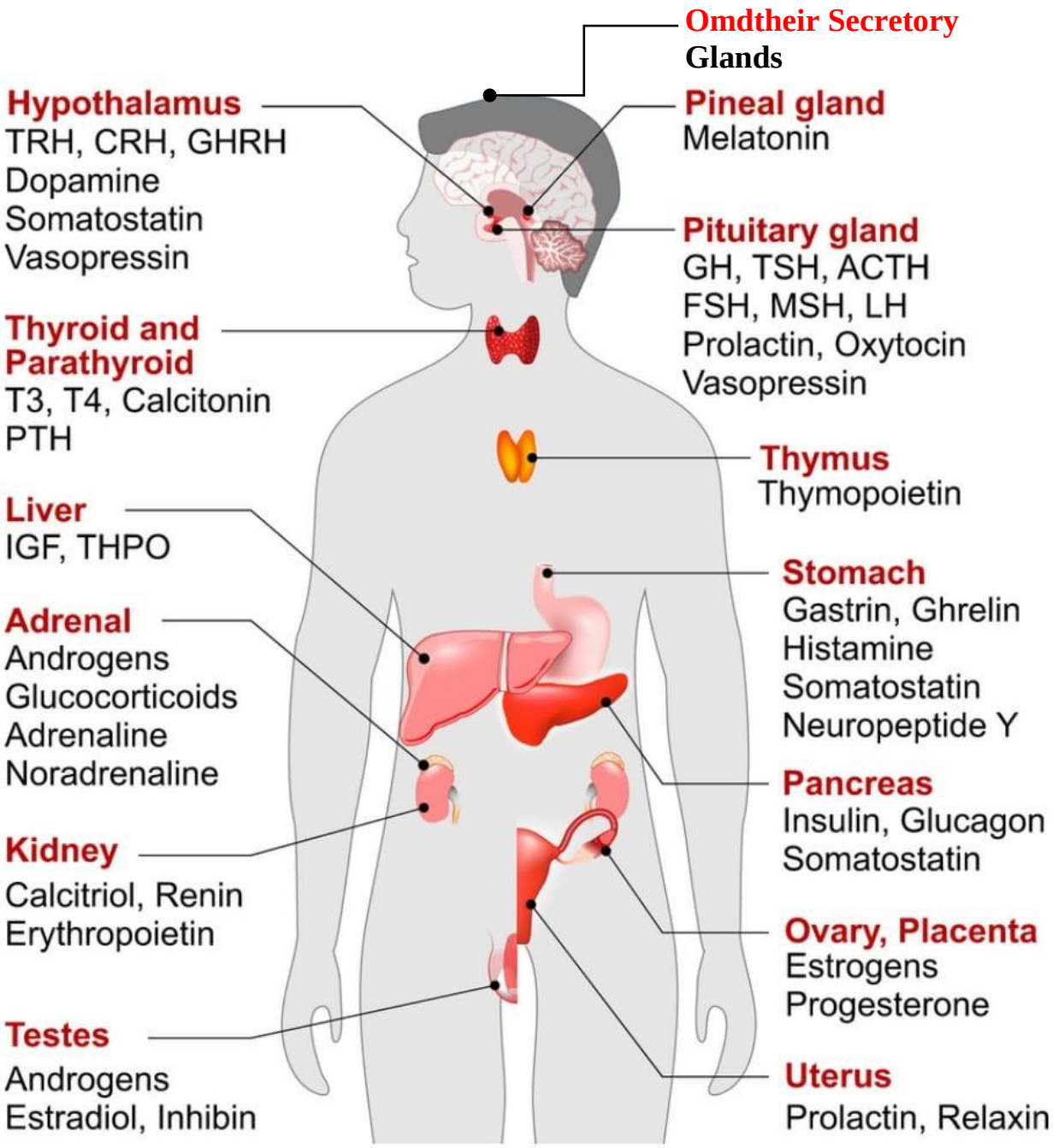
Omdtheir Secretory Glands
Hypothalamus
TRH, CRH, GHRH
Dopamine
Somatostatin
Vasopressin
Pineal gland
Melatonin
Pituitary gland
GH, TSH, ACTH
FSH, MSH, LH
Prolactin, Oxytocin
Vasopressin
Thyroid and Parathyroid
T3, T4, Calcitonin
PTH
Thymus
Thymopoietin
Liver
IGF, THPO
Stomach
Gastrin, Ghrelin
Histamine
Somatostatin
Neuropeptide Y
Adrenal
Androgens
Glucocorticoids
Adrenaline
Noradrenaline
Pancreas
Insulin, Glucagon
Somatostatin
Kidney
Calcitriol, Renin
Erythropoietin
Ovary, Placenta
Estrogens
Progesterone
Testes
Androgens
Estradiol, Inhibin
Uterus
Prolactin, Relaxin

इन पदार्थों को हार्मोन कहते है। ये ग्रन्थियां पदार्थो के स्रावण के दौरान संकेत और सूचनाओं का भी वहन करती है। यह पदार्थ शरीर के ऊतक द्रव्य में स्रावित होने के बाद रूधिर में स्थानान्तरित हो जाते हैं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से यह स्रावित पदार्थ हार्मोन के नाम से जाने जाते हैं। कशेरूकी जन्तुओं में कुल तीन प्रकार की ग्रन्थियां पायी जाती हैं–

1. बहिस्रावी ग्रन्थि
2. अन्तःस्रावी ग्रन्थि
3. मिश्रित ग्रन्थि

1. बहिस्रावी ग्रन्थि – इन ग्रन्थियों से स्रावित पदार्थ को एन्जाइम कहते हैं शरीर के विभिन्न अंगों तक यह एन्जाइम वाहिकाओं के माध्यम से जाता है। इसलिये इन ग्रन्थियों को वाहिनीयुक्त (Ductal glands) भी कहते हैं। यह उदाहरण के लिये लार ग्रन्थि, आहार नाल की पाचन ग्रन्थि, श्लेष्म ग्रन्थि, पसीने की ग्रन्थि, तेल ग्रन्थि, दुग्ध ग्रन्थि, आसू ग्रन्थि। चूंकि इन ग्रन्थियों से निकलने वाले एन्जाइम को हम देख सकते हैं। इसलिये इन्हें बहिस्रावी ग्रन्थि कहते हैं।

2. अन्तःस्रावी ग्रन्थि – यह गन्थियां अपने उत्पाद को रक्त के प्लाज्मा के द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुंचाती हैं। इनमें वाहिकायें नहीं पायी जाती। इसलिये इन्हें नलिका विहीन ग्रन्थि (Ductiersofands) कहते हैं। उदाहरण के लिये थायरॉइड ग्रन्थि, पीयूष ग्रन्थि, पैराथायराइड ग्रन्थि, एड्रीनल ग्रन्थि, पीनियल ग्रन्थि तथा थाइमस ग्रन्थि आदि। इसमें वाहिकायें नहीं पायी जाती । और यह हार्मोन का स्रावण करती हैं।

3. मिश्रित ग्रन्थि – यह ग्रन्थियां एन्जाइम और हार्मोन दोनों का स्रावण करती हैं। इसमें बहिस्रावी तथा अन्तःस्रावी दोनों ग्रन्थि के गुण होते हैं ये वाहिका युक्त होती है। जरूरत होने पर वाहिका का इस्तेमाल होता है अन्यथा नहीं। ये ग्रन्थियां बहिस्रावी और अन्तःस्रावी दोनों का कार्य करती है। उदाहरण अग्न्याशय और जनन ग्रन्थि।

नोट :– हमारे शरीर में ग्रन्थियों के अलावा बहुत से ऐसे अंग हैं जो हार्मोन का स्रावण करते हैं जैसे हाइपोथैलेमस, त्वचा, ह्रदय, यकृत, किडनी, अण्डाशय, वृषण ये ऐसे अंग हैं जो हार्मोन का स्रावण करते हैं।

हार्मोन एवं एन्जाइम – ऊपर की चर्चा में हम कई बार पढ़ते जा रहे हैं कि हार्मोन एवं एन्जाइम शब्द को लेकिन ये होते क्या है यह जानना भी आवश्यक है हार्मोन की बात करें तो यह अन्तःस्रावी ग्रन्थि से निकलता है। यह जल में अघुलनशील होता है। अर्थात ये जल में घुलता ही नहीं लेकिन वसा में घुलनशील होता है। हार्मोन रक्त के द्वारा शरीर के अंगों में संचारित होते हैं। इसके अणु छोटे तथा कम भार के होते है। हार्मोन कोशिकाओं के बाहर क्रियाशील नहीं होते हैं।

एन्जाइम बहिस्रावी ग्रन्थि से निकलता है। यह जल में घुलनशील होते हैं। एन्जाइम रक्त में संचारित नहीं होता इसके लिये वाहिकायें बनी होती हैं। एन्जाइम के अणु बड़े तथा उच्च भार के होते हैं। ये कोशिकाओं के

बाहर भी क्रियाशील होते हैं।

नोट :– थामस एडीसन को अन्तःस्रावी ग्रन्थि को विज्ञान का जनक कहा जाता है। ग्रन्थियों के अध्ययन को एन्डोक्राइनोलॉजी कहते हैं। अन्तःस्रावण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग क्लाइडी बर्नाड ने 1855 में किया था।

10.4 अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine glands)

शरीर में अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ निम्नलिखित होती हैं–

1. पीयूष ग्रन्थि
2. थायराइड ग्रन्थि,
3. पैराथायराइड ग्रन्थि
4. अधिवृक्क ग्रन्थि
5. अग्न्याशयिक ग्रन्थि
6. पीनियल ग्रन्थि
7. थाइमस ग्रन्थि
8. जनन ग्रन्थि

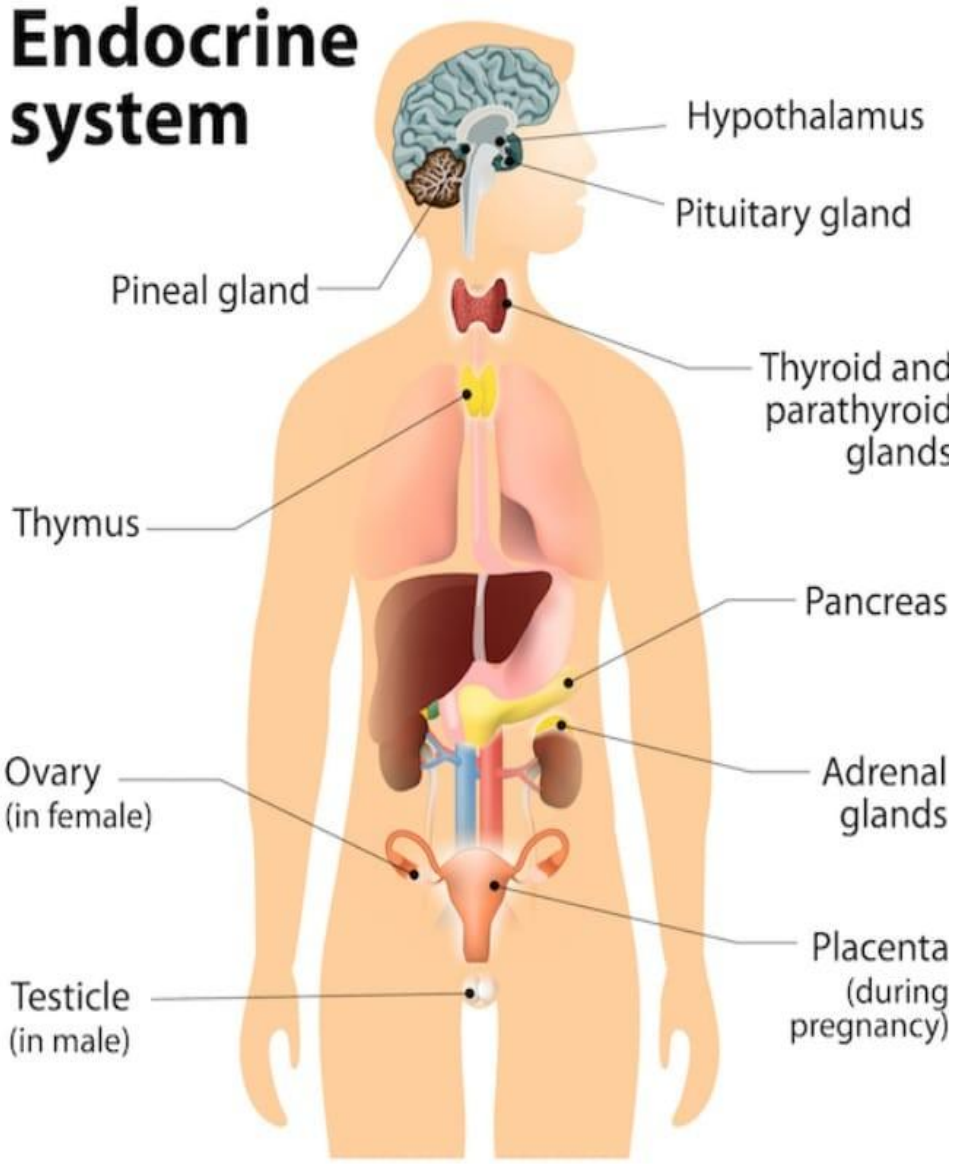

10.4.1 थायराइड ग्रन्थि (Thyroid gland)

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में यह सबसे बड़ी ग्रन्थि है।यह गले में पायी जाती है। स्त्रियों में यह पुरूषों की अपेक्षा कुछ बड़ी होती हैं।

थाइरॉइड ग्रन्थि के हॉरमोन्स (Hormones of Thyroid Gland)

थाइरॉइड ग्रन्थि निम्नलिखित दो आयोडीनयुक्त तथा एक आयोडीनरहित हॉरमोन्स का स्रावण करती है –

आयोडीनयुक्त हॉरमोन्स – 1. टेट्रा–आयोडोथाइरोनीन(Tetra-iodothyronine)

2. ट्राइ–आयडोथाइरोनीन(Tri-iodothyronine)

आयोडीनरहित हॉरमोन – थाइरोकैल्सिटोनिन(Thyrocalcitonin)

आयोडीनयुक्त हॉरमोन्स का संश्लेषण और स्रावण (Synthesis and Secretion of Iodinated Hormones)

आयोडाइड्स आयोडिन (Iodides and iodine): वयस्क मानव के शरीर में लगभग 5 से 6 मिलीग्राम आयोडीन होती है। और इसकी अधिकांश मात्रा थाइरॉइड ग्रन्थि में रहती है। इस प्रकार थाइरॉइड ग्रन्थि आयोडीन के भण्डारण (storage) का काम करती है। आयोडीनयुक्त हॉरमोन्स का सामान्य मात्राओं से स्रावण करते रहने के लिए थाइरॉइड ग्रन्थि लगभग 150 माइक्रोग्राम अर्थात 0.15 मिलीग्राम आयोडीन का प्रतिदिन उपयोग करती है। अतः स्पष्ट है लगभग 150 आयोडीन भोजन से प्रतिदिन प्राप्त करना हमारे लिए आवश्यक होता है। यह हमें हरी सब्जियों, दुग्धउत्पादी पदार्थो (dairy products), पेय जल, समुद्री भोजन (Sea food) आदि से प्राप्त होती है। इससे अधिक मात्रा में ग्रहण की गई आयोडिन का हम लोग मूत्र के साथ उत्सर्जन (Excretion) कर देते हैं।

भोजन की आयोडिन का रुधिर में अवशोषण (Absorption) तथा संचरण आयोडाइड (Circulation) आयनों (I) के रूप में होता है। थाइरॉइ की पुटिका कोशिकाओं में रुधिर से इन आयनों को चेष्ट परिवहन (Active transport) द्वारा ग्रहण कर लेने की इतनी अधिक क्षमता होती है कि सामान्यतः इनमें आयोडाइड आयनों का सान्द्रण (Concentration) रुधिर के प्लाजमा की तुलना में लगभग 50 से 250 गुना अधिक रहता है। इन कोशिकाओं में परऑक्सीडेज (Peroxidase) नामक एन्जाइम की काफी मात्रा होती है। यह एन्जाइम आयोडाइड आयनों का ऑक्सीकरण (Oxidation) करके इन्हें आण्विक आयोडिन में बदलता रहता है इस आयोडिन को यह कोशिकाएँ पुटिकागुहा (Follicular cavity) में मुक्त करती रहती है।

आयडोथाइरोग्लोबुलिन का संश्लेषण एवं भण्डारण (Synthesis and Storage of Iodothyroglobulin): पुटिका कोशिकाओं में, जीन्स (Genes) के नियंत्रण में, थाइरोग्लोबुलिन (Thyroglobulin=TGB) नामक एक विशेष प्रकार की ग्लाइकोप्रोटीन का लगातार संश्लेषण होता रहता है। थाइरोग्लोबुलिन को भी ये कोशिकाएँ बहिः कोशिकाक्षेपण (exocytosis) द्वारा पुटिका गुहा (follicular cavity) में मुक्त करती रहती हैं। इसका प्रत्येक अणु लगभग 5000 ऐमीनो अम्ल इकाइयों अर्थात एकलकों या मोनोमर्स (monomers) का बना होता है और इनमें से निर्दिष्ट स्थानों पर स्थित 123 मोनोमर्स टाइरोसीन (tyrosine) नामक ऐमीनो अम्ल के होते हैं। पुटिका कोशिकाओं से बाहर निकलते ही आयोडीन और थाइरोग्लोबुलिन के अणुओं में परस्पर अभिक्रिया होती है जिसके फलस्वरूप थाइरोग्लोबुलिन के प्रत्येक अणु में निर्दिष्ट स्थानों पर स्थित टाइरोसीन के 15 अणु आयोडीनयुक्त (Iodinated) हो जाते हैं। इस प्रकार बनी आयडोथाइरोग्लोबुलिन के अणु ही पुटिका गुहा में उपस्थित जेली–समान कोलॉइड (colloid) बनाते हैं। कोलॉइड में इन अणुओं की आकृतियों में ऐसे परिवर्तन होते हैं जिनके फलस्वरूप एक ही, या विभिन्न अणुओं के अधिकांश आयोडीनयुक्त टाइरोसीन मोनोमर्स का दो–दो की जोड़ियों में संयुग्मन (coupling) हो जाता है। अतः कोलॉइड में अनेक समूह या सम्मिश्र (groups or complexes) टेट्राआयडोथाइरोनीन या थाइरॉक्सिन (tetra-iodothyronine or thyroxine) के और कुछ ट्राइआयडोथाइरोनीन (tri-iodothyronine=T_3) के बन जाते हैं। स्पष्ट है कि प्रत्येक T_4 समूह में दो ट्राइआयडोथाइरोनीन के बन जाते हैं। स्पष्ट है कि प्रत्येक समूह में दो टाइरोसीन के अणु और चार आयोडीन के परमाणु होते हैं परन्तु प्रत्येक समूह में दो टाइरोसीन के अणु और तीन आयोडीन के परमाणु होते हैं T_4 तथा T_3 ही थाइरॉइड ग्रन्थि में बनने वाले आयोडीनयुक्त हॉरमोन होते हैं। स्पष्ट है कि ग्रन्थि की पुटिका गुहाओं में भरा कोलॉइड इन हॉरमोन्स के भण्डारण (storage) का काम करता है।

T_4 तथा T_3 हॉरमोन्स की विमुक्ति स्रावण एवं रुधिर में परिसंचरण: पुटिका कोशिकाएँ पुटिका गुहा में भरे कोलॉइड के छोटे–छोटे पिण्डों का एण्डोसाइटोसिस (endocytosis) या भक्षकाणु क्रिया अर्थात फैगोसाइटोसिस (Phagocytosis) द्वारा अन्तर्ग्रहण करके, लाइसोसोम्स (Lysosomes) के एन्जाइमों की सहायता से, आयडोथाइरोग्लोबुलिन के अणुओं का जल–अपघटन (Hydrolysis) करती रहती है। इससे तथा हॉरमोन्स मुक्त हो जाते हैं। लिपिड में घुलनशील होने के कारण इन हॉरमोन्स के अणु पुटिका कोशिकाओं की कोशिका कला में से सामान्य प्रसरण (Diffusion) द्वारा रिसकर ऊतक द्रव्य के माध्यम से रूधिर में पहुँच जाते हैं।

थाइरॉइड ग्रन्थि प्रतिदिन लगभग 80ug (0.08 मिग्रा) T_4 का तथा लगभग 4μg T_3 का स्रावण करती है, परन्तु T_3 हॉरमोन T_4 से कई गुना अधिक प्रभावशाली होता है। अतः रुधिर से ऊतक द्रव्य

में जाते समय T_4 के अधिकांश अणुओं से आयोडिन का एक–एक अणु हट जाता है जिससे कि ये T_3 के अणुओं में बदल जाते हैं। T_4 का यह आयोडीनहरण (deiodination) यकृत में सबसे अधिक होता है।

थाइरॉइड ग्रन्थि से हॉरमोन्स के स्रावण की दर का नियन्त्रण पीयूष अर्थात पिट्यूटरी ग्रन्थि तथा मस्तिष्क के हाइपोथैलैमस द्वारा क्रमशः प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष ऋणात्मक पुनर्निवेशन (direct and indirect negative feedback) द्वारा होता है। शीतकाल में तथा गर्भवती स्त्रियों में इन हॉरमोन्स का स्रावण बढ़ जाता है।

थाइरॉइड के आयोडीनयुक्त हॉरमोन्स के कार्य :

(Functions of iodinated hormones of thyroid)

थाइरॉइड के ये हॉरमोन्स, सम्भवतः केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र, दृष्टिपटल (Retina) प्लीहा (spleen), जननांगों एवं फेफड़ों को छोड़कर, शेष शरीर की सारी कोशिकाओं में ऑक्सीकर उपापचय (oxidative metabolism) के प्रेरक होते हैं। अतः इनके प्रभाव से इन लक्ष्य कोशिकाओं में माइटोकॉण्ड्रिया की संख्या और इनका माप बढ़ जाता है तथा ग्लूकोस एवं O_2 की अधिक खपत होने लगती है। इससे ऊर्जा–उत्पादन की दर तथ आधार उपापचयी दर (Basal metabolic Rate = BMR) बढ़ जाती है। इस प्रकार ये हॉरमोन्स ''जीवन की गति (Tempo of life)'' को बढ़ाते हैं। अधिक ATP बनने के साथ–साथ शरीर ताप भी बढ़ता है। यह इन हॉरमोन्स का कैलोरीजनक (calorigenic) प्रभाव होता है।

इन हॉरमोन्स के उपापचयी प्रभाव के कारण आँत में पाचन–उत्पादों का अवशोषण, हृद–स्पंदन की दर, कोशिकाओं में एन्जाइम्स एवं अन्य प्रोटीन्स का संश्लेषण, यकृत कोशिकाओं में ग्लाइकोजन तथा प्रोटीन्स से ग्लूकोस एवं कैरोटीन्स (carotenes) से विटामिन A (vitamin A)। का संश्लेषण बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त इन हॉरमोन्स के प्रभाव से उत्तेजनशीलता बढ़ती है तथा कई अन्य हॉरमोन्स का प्रभाव भी बढ़ता है। ये कोलेस्ट्रॉल की मात्रा का भी नियमन करते हैं। इन्हीं सब प्रभावों के कारण, ये हॉरमोन्स शरीर के स्वस्थ जीवन तथा शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक होते हैं।

आयोडीन की कमी से होने वाले रोग हैं–

1. जड़ मानवता (Cretinism)- थायराइड के अल्प स्रावण से यह रोग होता है। यह ज्यादातर बच्चों या भ्रूण में देखने को मिलता है। बच्चों में मानसिक और शारीरिक विकास रूक जाता है। बच्चों में लक्षण के रूप में सिर बड़ा, त्वचा मोटी, तोंद निकल आती है। भ्रूण में आयोडीन की कमी होने से ऐसे बच्चें प्रजनन के योग्य नहीं होते हैं इनकी मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है।

2. मिक्सीडीमा (Myxoedema)- यह वयस्कों में थायराइड के अल्प स्रावण के कारण होता है। इसमें व्यक्ति

कमजोर तथा सुंस्त हो जाता है। व्यक्ति यौवन अवस्था में ही बूढ़ा नजर आता है। बाल झड़ना, बालों का सफेद होना इत्यादि इसी के लक्षण हैं। रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा भी बढ़ जाती है।

3. हॉशीमोटो (Hashimotos)- वृद्धावस्था में थायराइड ग्रन्थि के अत्यधिक अल्प स्रावण से रूधिर में इसके हार्मोन की मात्रा कम हो जाती है। यह एक स्व प्रतिरक्षित रोग है। इसे थायराइड की आत्महत्या भी कहते हैं।

यदि आयोडीन का अति स्रावण होता है तब हाइपरथायारोडिस्म हो जाता है यह बीमारी अत्यधिक भोजन ग्रहण करने से होता है। इस वजह से संक्रामक रोग जैसे खसरा, क्षय रोग, इन्फ्लुयन्जा इत्यादि रोग हो जाते हैं। इसमें भी शरीर में कमजोरी, अनिद्रा, चिड़चिड़ापन, घबराहट, उत्तेजना, पसीना ज्यादा आना आदि जैसे लक्षण देखने को मिलते हैं।

सामान्य घेंघा या गलगंठ रोग इसमें थायराइड ग्रन्थि बड़ी हो जाती है। यह रोग भी आयोडीन की कमी होने के कारण होता है।

थाइरॉइड का आयोडीनरहित हॉरमोन– थाइरोकैल्सिटोनिन : इस हॉरमोन का स्रावण थाइरॉइड ग्रन्थि के पीठिका (stroma) में पाई जाने वाली पैरापुटिका अर्थात C-कोशिकाएँ (parafollicular or C-cells) करती हैं। इसके अणु 32 ऐमीनों अम्ल इकाइयों अर्थात मोनोमर्स के बने छोटे पॉलिपेप्टाइड्स (Polypeptides) होते हैं। यह हॉरमोन हड्डियों के निर्माण को प्रेरित करता, इनके विघटन का अवरोधन करता और मूत्र में कैल्सियम के उत्सर्जन को बढ़ाता है। अतः इसके प्रभाव से ECF में कैल्सियम आयनों (C^{2+})की संख्या घट जाती है।

10.4.2 पैराथाइरॉयड ग्रन्थि (Parathyroid Gland) – यह ग्रन्थि थायराइड ग्रन्थि के चारों कोनो पर अन्दर की ओर धंसी होती है। इसका आकार मटर के दाने के बराबर होता है। इस ग्रन्थि पैराथारामोन नामक हार्मोन निकलता है। यह हार्मोन रक्त में कैल्शियम की मात्रा को निश्चित अनुपात में बनाये रखता है। इसी हार्मोन को कोलिप की हार्मोन (Collips Hormones) कहते है।

रूधिर में कैल्सियम की आदर्श मात्रा को बनाए रखने का काम विटामिन 'D_3', पैराथॉरमोन तथा थाइरोकैल्सिटोनिन मिलकर करते हैं। पैराथॉरमोन आँत में कैल्सियम के अवशोषण को तथा वृक्कों में इसके पुनरवशोषण (reabsorption) और फॉस्फेट के उत्सर्जन को बढ़ाता है। रुधिर में कैल्सियम की इस प्रकार बढ़ी मात्रा का उपयोग, विटामिन 'D_3' (vitamin D_3) के प्रभाव से प्रेरित होकर अस्थि का निर्माण करने वालीकोशिकाएँ, ओस्टियोब्लास्ट्स (osteoblasts) अस्थि–निर्माण करती हैं। फिर पैराथॉरमोन के प्रभाव से प्रेरित होकर अस्थि–विनाशक कोशिकाएँ, ओस्टियाक्लास्ट्स (osteoclasts), अस्थियों के नवनिर्मित भागों में से अनावश्यक भागों का विघटन करके रुधिर में कैल्सियम व फॉस्फेट मुक्त करते हैं। शरीर में हड्डियों का ऐसा

पुननिर्माण (bone remodelling) जीवनभर होता रहता है। इसी से रुधिर में कैल्सिययम की सामान्य मात्रा बनी रहती है। इसमें पैराथॉरमोन एवं विटामिन 'D_3' की सहयोगी (synergestic) भूमिकाएँ होती है। इसके विपरीत, थाइरोकैल्सिटोनिन हॉरमोन हड्डी के निर्माण को प्रेरित करके तथा इसके विघटन को कम करके और मूत्र में Ca^{2+} के उत्सर्जन को बढ़ाकर पैराथॉरमोन से विरोधी (antagonistic) भूमिका निभाता है।

विटामिन 'D' एक स्टीरॉइड हॉरमोन है जो आहारनाल में Ca^{2+}, Mg^{2+} आयनों तथा फॉस्फेट्स के अवशोषण को भी प्रेरित करता है। इसी प्रकार पैराथॉरमोन भी उपरोक्त कार्यो के अतिरिक्त सोडियम, पोटैशियम तथा बाइकार्बोनेट आयनों के उत्सर्जन को बढ़ाने तथा मैग्नीशियम के उत्सर्जन को कम करने का कार्य करता है।

पैराथॉरमोन की क्रिया–विधि (Mechaism of Parathormone) :

पैराथॉरमोन की ग्राही प्रोटीन्स (receptor proteins) इसकी लक्ष्य कोशिकाओं की कोशिका कला में होती हैं। हॉरमोन को धारण करते ही इनमें से कुछ ग्राही प्रोटीन्स तो Ca^{2+} आयनों के लिए कोशिका कला की पारम्गम्यता को बढ़ाकर ऊतक द्रव्य से इन आयनों के कोशिकाओं में अन्तर्वाह (influx) को प्रेरित करती हैं जिससे कोशिकाओं में इन आयनों की संख्या बढ़ जाती है। अन्य ग्राही प्रोटीन्स हॉरमोन से प्रभावित होकर cAMP के संश्लेषण को प्रेरित करती है। cAMP माइटोकॉण्ड्रिया (mitochondria) तथा साइटोसॉल (cytosol के बीच Ca^{2+} आयनों के आवागमन का नियन्त्रण करता है, क्योंकि कोशिकाओं में माइटोकॉण्ड्रिया Ca^{2+} आयनों के भण्डारण का काम करते है।

पैराथाइरॉइड स्रावण का पुरर्निवेशन नियन्त्रण
(Feedback Control of Parathyroid Secretion)

पैराथॉरमोन तथा थाइरोकैल्सिटोनिन के स्रावण की दर का पुनर्निवेशन नियन्त्रण प्रत्यक्ष ऋणात्मक पुनर्निवेशन (direct negative feedback) द्वारा निरन्तर होता रहता है। रुधिर में कैल्सियम की मात्रा कम होने पर पैराथॉरमोन के स्रावण की दर बढ़ती और थाइरोकैल्सिटोनिन के स्रावण की दर घटती है। इसके विपरीत, रुधिर में कैल्सियम की मात्रा बढ़ जाने से पैराथॉरमोन के स्रावण की दर घटती और थाइरोकैल्सिटोनिन की दर बढ़ती है।

पैराथाइरॉइड स्रावण की अनियमितताएँ
(Irregularities of Parathyroid Secretion)

1. **अल्पस्रावण (Hyposecretion of Hypoparathyroidism)** : पैराथॉरमोन की कमी शरीर में प्रायः नहीं होती। कमी होने पर ECF में कैल्सियम की मात्रा कम (हाइपोकैल्सीमिया—hypocalcemia) और फॉस्फेट की मात्रा अधिक (हाइपरफॉस्फेटीमिया—hyperphosphatemia) हो जाती है। इससे पेशियों और तन्त्रिकाओं में अनावश्यक उत्तेजना के कारण पेशियों में ऐंठन और कम्पन होने लगता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं (gooseflesh) पसीना आने लगता है और हाथ–पैर ठण्डे हो जाते हैं। कभी–कभी, शरीर के किसी भाग, प्रायः हाथ–पैरों, की ऐच्छिक पेशियों में लम्बे समय तक के लिए अत्यधिक संकुचन हो जाने से यह भाग अकड़कर तन जाता या ऐंठ जाता है। इसे टिटैनी (tetany) का रोग कहते हैं।
2. अधिकांश रोगी, श्वसन से सम्बन्धित पेशियों में ऐसा संकुचन हो जाने के कारण, साँस नही ले पाते (श्वासावरोध--asphyxia) और मर जाते हैं। बचपन में अल्पस्रावण से शरीर की वृद्धि रुक जाती है तथा दाँतों, हड्डियों, बालों एवं मस्तिष्क का पूरा विकास नहीं हो पाता। दवा के रुप में विटामिन 'डी' खाने से राहत मिलती है।

2. अतिस्रावण (Hypersecretion or Hrperparathyroidism) : यह दशा एक या अधिक पैराथाइरॉइड ग्रन्थियों की अतिवृद्धि (Hypergrowth) से होती है। इसमें ओसीन (osein) प्रोटीन के मैट्रिक्स (matrix) के गल जाने से हड्डियाँ कमजोर व भंगुर (brittle) हो जाती हैं। इसे ओस्टिओपोरोसिस (osteoporosis) का रोग कहते हैं। ECF में कैल्सियम की मात्रा बढ़ जाने (हाइपरकैल्सिमिया—hypercalcemia) और फॉस्फेट्स की मात्रा बहुत कम हो जाने अर्थात् हाइपोफॉस्फेटीमिया (हाइपोफॉस्फेटीमिया—hypophosphatemia) से तन्त्रिकाएँ एवं पेशियाँ क्षीण हो जाती हैं, मूत्र की मात्रा बढ़ जाने से प्यास बढ़ जाती है, भूख मर जाती है, कब्ज हो जाती है, सिर दर्द होने लगता है तथा मूत्र में कैल्सियम की मात्रा के बढ़ जाने से वृक्कों में पथरी (kidney stones) पड़ जाने की सम्भावना हो जाती है। ग्रन्थियों के बढ़े हुए भागों को काटकर हटा देने पर ही इन विकारों से मुक्ति मिलती है।

10.4.3 पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland) –.यह प्रमस्तिष्क के बीच स्थित सफेद तथा चपटी सी ग्रन्थि है। इसे एपीफाइसिस सेरेब्राइ भी कहते हैं। इस ग्रन्थि से मिलाटोनेन (melatonin) नामक हार्मोन का स्रावण होता है।

यह ग्रन्थि प्रकाश पर आधारित जैविक घड़ी का कार्य करती है। जैसे यदि रात का समय है तो प्रकाश कम है उस समय मिलाटोनेन ज्यादा निकलता है। इसी की वजह से रात को हमें चीजें दिखाई देती हैं और तेज प्रकाश में मिलाटोनेन का स्राव कम होता है।

नोट :– जहाँ सूर्य का प्रकाश अधिक होता है तथा जो व्यक्ति जन्म से अंधे होते हैं ऐसी स्थिति में मिलाटोनेन का स्रावण न के बराबर होता है जिस कारण उन व्यक्तियों में यौवनावस्था जल्दी आ जाती है तथा इस अवस्था में पीनियल कॉय में कैल्शियम के लवण जमा होने लगते हैं जिससे कुछ समय बाद इस ग्रन्थि का पतन होने लगता है।

10.4.4 थाइमस ग्रन्थि (Thymus Gland) –.यह ग्रन्थि हृदय के आगे होती है। इस ग्रन्थि का उपयोग जीवन के प्रथम चरण में होता है। जब बच्चे छोटे होते यानि एक, दो साल के उस समय इस ग्रन्थि का आकार सबसे बड़ा होता है और वृद्धावस्था तक पहुंचते–पहुंचते इसका आकार बहुत छोटा हो जाता है। यह ग्रन्थि थाइमोसिन नामक हार्मोन का स्रावण करती है। यह हार्मोन अलग–अलग प्रकार के जीवाणुओं तथा इस जीवाणुओं द्वारा बनाये गये प्रतिजनों को नष्ट करते हैं।

10.4.5 एड्रीनल या सुप्ररीनल ग्रन्थि (Adrenal or Suprarenal Gland) –.यह सामान्यतः स्तनधारियों में ही पायी जाती है। यह दोनों वृक्कों के ऊपर स्थित होती है। बायीं ग्रन्थि अर्द्धचन्द्राकार होती है तथा दायीं ग्रन्थि त्रिभुजाकार होती है। वृक्क के दो भाग होते हैं कॉर्टेक्स और मेडुंला। कॉर्टेक्स वृक्क का बाहरी भाग होता है तथा इससे निकलने वाला हार्मोन उपापचय तथा खनिज लवणों को नियन्त्रित करने का काम करता है तथा मेडुला वृक्क का आन्तरिक भाग होता है। इससे निकलने वाला हार्मोन हृदय स्पंदन, रक्तचाप से सम्बन्धित कार्य करता है तथा पेशीय कार्य को नियन्त्रित करता है।

एड्रीनल कॉरटेक्स – इससे लगभग 20 से अधिक हार्मोन का संश्लेषण होता है। इसके द्वारा स्रावित हार्मोन को तीन वर्गो में बांटा गया है– मिनरैलो कॉर्टिकोइट्स, ग्लूकोकॉटिकोइट्स तथा लिंग हार्मोन। मिनरैला कॉर्टिकोइट्स हार्मोन खनिज लवण और जल का संतुलन करते हैं इसलिये इसको लवण प्रतिधारक (Salt retaining) हार्मोन भी कहा जाता है। ग्लूकोकॉर्टिकोइट्स हार्मोन कार्बो हाइड्रेड, वसाओं, प्रोटीन के पाचन से सम्बन्धित होता है WBC को नियन्त्रित करता है तथा RBC को बढ़ाता है। लिंग हार्मोन दो तरह का होता है एन्ड्रोजेन तथा एस्ट्रोजेन। एन्ड्रोजेन नर में तथा एस्ट्रोजेन हार्मोन मादा में पाया जाता है। यह दोनो हार्मोन जननांगों की वृद्धि में, पेशियों तथा हड्डियों के परिवर्द्धन, यौन आचरण तथा बालों के विकास आदि जैसे लिंग सम्बन्धी जरूरत की चीजें होती हैं। उसका विकास करने में यह हार्मोन सहायक होते हैं।

विपत्ति प्रतिक्रिया में ऐड्रीनल कॉर्टेक्स की भूमिका

(Role of Adrenal Cortex in Stress Reaction)

अधिवृक्क अर्थात् ऐड्रीनल ग्रन्थियाँ शरीर को बाहरी एवं भीतरी संकटावस्थाओं का सामना करने के लिए तैयार करके एक "रासायनिक सुरक्षा तंत्र (chemical defence mechanism) प्रदान करती हैं। आकस्मिक संकटावस्थाओं में अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र तथा ऐड्रीनल मैड्यूला के हॉरमोन्स

(नॉरएपिनेफ्रीन एवं एपिनेफ्रीन) द्वारा प्रेरित उग्र विपत्ति प्रतिक्रिया के तुरंत बाद शरीर की ऐसी प्रघातावस्था या सदमावस्था (state of shock) हो जाती है जैसी युद्ध के बाद किसी देश की। इस अवस्था में हृद्–स्पंदन दर, रुधिरदाब, रुधिर में ग्लूकोस व लवणों की मात्रा आदि सभी काफी घट जाती हैं। उदाहरणार्थ, किसी दुर्घटना में अधिक रुधिरस्राव (bleeding) के कारण उत्पन्न सदमावस्था में रुधिरदाब तुरंत अत्यधिक घट जाता है। ऐसे समय में रुधिर–परिसंचरण को बनाए रखने के लिए दुर्घटनाग्रस्त रोगी को लिटाकर उसके पैरों के नीचे तकिए लगा देते हैं, ताकि रुधिर बराबर हृदय में वापस पहुँचता रहे, हृद्–स्पंदन जारी रहे और हृदयी रुधिर–निर्गत (cardiac output) होता रहे। इसी प्रकार की दशाओं में ऐड्रीनल कॉर्टेक्स के हॉरमोन्स, विशेषतः ऐल्डोस्टीरॉन तथा कॉरटिसोल, काफी अधिक मात्रा में स्रावित होकर शरीर की सामान्य सुरक्षा प्रतिक्रियाओं पर रोक लगा देते हैं और इस सदमावस्था से उबारने अर्थात् सामान्य अवस्था में लाने के लिए प्रत्येक भाग को असाधारण प्रयास के लिए प्रेरित करते हैं। यदि विपत्ति प्रतिक्रिया इतनी उग्र हो कि शरीर सदमे को सहन न कर पाए तो, इसी प्रयास में पूरी तरह अशक्त (exhausted) हो जाने के कारण श्वास रुक–रुककर, ध्वनियुक्त एवं अनियमित हो जाती है और अंत में रोगी की मृत्यु हो जाती है (patient succumbs)। सर्पदंश में सर्प विषैला न हो तो भी रोगी की मृत्यु केवल भय या सदमे से हो जाती है। मृत्यु की ओर बढ़ते हुए ऐसे रोगी की साँस रुक–रुककर झटके के साथ आने लगती है।

भ्रूण में ऐड्रीनल ग्रन्थियाँ काफी बढ़ी होती हैं परन्तु ये मुख्यतः लिंग हॉरमोन्स का ही स्रावण करती हैं। शिशु जन्म तक ये काफी छोटी हो जाती हैं और इनकी स्रावण–क्रिया बहुत कम हो जाती है। अतः नवजात बच्चों में यह रासायनिक सुरक्षातंत्र (chemical defence system) कम प्रभावी होता है और संकटावस्था में इनकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है। इसीलिए, नवजात बच्चों की बहुत सुरक्षा की जाती है।

एड्रीनल मेडुला – इसके निकलने वाला हार्मोन एड्रीनलीन शरीर में उत्तेजना, डर, घबराहट, क्रोध, मानसिक तनाव आदि इस हार्मोन की वजह से होता है। इस हार्मोन को लड़ो या उड़ो, हार्मोन या एपीनेफ्रिन भी कहते हैं। नॉरएड्रीनलीन के प्रभाव से त्वचा, उत्सर्जन, जनन, पाचन आदि अंगों में रक्त का संचार कम हो जाता है। जिसके कारण रक्त दाब बढ़ जाता है।

एड्रीनल से एड्रीनलीन हार्मोन का स्रावण आवश्यकता से अधिक होने पर शरीर की कोशिकाओं में प्रोटीन घट जायेगा जिससे हमारे शरीर के ऊतक क्षय होने लगते हैं तथा शर्करा की मात्रा बढ़ने लगती है जिससे मधुमेह नामक रोग हो जाता है।

एड्रीनल से हार्मोन का स्रावण कम हो तो हमारे शरीर से सोडियम और जल की मात्रा का उत्सर्जन ज्यादा होने लगता है। जिससे शरीर मे निर्जलीकरण (dehydration) होने लगता है। इस हार्मोन की कमी से एक रोग कॉन्स हो जाता है। जिसमें पोटेशियम और सोडियम की मात्रा शरीर में घट जाती है, जिससे मांसपेशियां अकड़ जाती हैं और अकड़न की वजह से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

विपत्ति प्रतिक्रिया (Alarm or Stress Reaction)

हमारे सक्रिय दैनिक जीवन में शरीर के बाह्य एवं अन्तःवातावरण में निरन्तर होते रहने वाले भौतिक–रासयनिक परिवर्तनों के अनुसार अन्तरांगों की क्रियाओं का समन्वित नियमन (co-ordinated regulation) हाइपोथैलैमस के नियन्त्रण में, मुख्यतः अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र द्वारा स्वतः होता रहता है। इसी से शरीर के अन्तःवातावरण की अखण्डता अर्थात समस्थैतिकता (homeostasis) तथा शरीर का क्रियात्मक सन्तुलन बना रहता है। अत्यधिक डर, क्रोध, पीड़ा, अपमान, बेचैनी, व्यग्रता घोर चिन्ता तथा मानसिक तनाव आदि या अचानक दुर्घटनाग्रस्त हो जाने, जल जाने, रोग हो जाने, सूक्ष्म जीवों का आक्रमण हो जाने, किसी विषैले पदार्थ के शरीर में पहुँच जाने, अत्यधिक ठण्ड या लू लग जाने आदि आकस्मिक संकटावस्थाओं (stress conditions or emergencies) के कारण समस्थैतिकता तथा क्रियात्मक सन्तुलन के बिगड़ जाने से शरीर के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो जाता है। अतः ऐसी अवस्थाओं की संवेदनाएँ सीधे या मेरुरज्जु में होती हुई मस्तिष्क में पहुँच जाती हैं। फिर मस्तिष्क के हाइपोथैलैमस से निर्गत चालक प्रेरणाएँ मेरुरज्जु में होती हुई अनुकम्पी तन्तुओं द्वारा सारे आन्तरांगों और ऐड्रीनल मेड्यूला में पहुँचती हैं। अतः सारे आन्तरांगों में एक साथ नॉरएपिनेफ्रीन की और रुधिर में नॉरएपिनेफ्रीन एवं एपिनेफ्रीन की बहुत–सी मात्रा मुक्त हो जाती है।इन हॉरमोन्स के इस व्यापक स्राव (mass secretion) से, कुछ ही सेकेण्डों में, शरीर संकटावस्था का सामना करने हेतु एक उग्र (violent) विपत्ति प्रतिक्रिया (alarm or stress reaction) के साथ तैयार हो जाता है जिसे व्यापक अनुकूलन संलक्षण (Genaral Adaptation Syndrome=GAS) भी कहते हैं। इस प्रतिक्रिया में, व्यक्ति समस्थैतिकता बनाए रखने के लिए नहीं, वरन् अपने अस्तित्व के लिए या तो सघंर्ष करता है या बचाव। इसीलिए इसे सघंर्ष या पलायन प्रतिक्रिया (fight or flight reaction) भी कहते है। इस प्रतिक्रिया के समय हमारे शरीर में निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं–

(1) नॉरएपिनेफ्रीन के प्रभाव से **वाहिका संकीर्णन** (vasoconstriction) के कारण त्वचा, पाचन , उत्सर्जन, जनन आदि उन परिधीय एंव उदरीय अंग तन्त्रों के अंगों में रुधिर संचार कम हो जाता है जो हमारे निद्रा, आराम और निश्चिन्तता के समय अधिक सक्रिय रहते हैं। इससे इन अंगों की क्रियाशीलता कम हो जाती है और रुधिरदाब (Blood Pressure =BP) बढ़ जाता है।

(2) रुधिर की सप्लाई कम हो जाने से त्वचा पीली पड़ जाती है, परन्तु ऐरेक्टर पिलाई पेशियों (arrector pilli muscles) में संकुचन से रोंगटे खड़े हो जाते हैं (gooseflesh)।

(3) लार के अल्पस्रावण से मुँह सुखने लगता है।

(4) अरेखित पेशियों के शिथिलन से आहारनाल की क्रमाकुंचन अर्थात् तरंगगति (peristalsis) धीमी हो जाती

है।सारी पाचन ग्रन्थियों की स्रावण क्रिया घट जाती है। इस प्रकार पाचन क्रिया बाधित हो जाती है।

(5)व्रक्कों में मूत्र कम बनने लगता है तथा मूत्राशय की पेशियों का शिथिलन हो जाता है।

(6)गर्भवती स्त्रियों में गर्भाशय की पेशियों का संकुचन हो जाता है जिससे गर्भपात की सम्भावना बढ़ जाती है।

(7) एपिनेफ्रीन के प्रभाव से वाहिका विस्फारण (vasodilation) के कारण मस्तिष्क, कंकाल पेशियों, हृदय, फेफड़ों, यकृत, वसा पिण्डों, संवेदांगों आदि उन सब अंगों में रुधिर संचार बढ़ जाता है जिनके उत्तेजन से ही उग्र विपत्ति प्रतिक्रिया सम्भव होती है। इससे नारॅएपिनेफ्रीन के प्रभाव से बढ़ा हुआ रुधिरदाब कुछ कम हो जाता है।

(8)उपतारा (iris) की अरीय प्रसार पेशियों (radial dilatory muscles) के संकुचन से पुतलियाँ फैल जाती है।

(9) एपिनेफ्रीन के प्रभाव से श्वासनाल (trachea), श्वसनियों (bronchi) तथा श्वसनिकाओं (bronchioles) की पेशियों का शिथिलन होता है जिससे ये फैलकर कुछ चौड़ी हो जाती है। इससे श्वास क्रिया सुगम और तीव्र हो जाती है। इसीलिए एपिनेफ्रीन का दमे (asthma) के उपचार में प्रयोग होता है।

(10) हृद्–स्पंदन की दर एंव सामर्थ्य दोनों ही बढ़ जाती हैं। इससे रुधिरदाब, रुधिर संचरण तथा नाड़ी स्पंदन बढ़ जाता हैं।

(11) रुधिर प्लेटलेट्स (blood platelets) की आसंजकता के (adhesiveness) बढ़ जाने से रुधिर के जमने का समय बहुत घट जाता है।

(12) प्लीहा (spleen) संकुचित होकर रुधिराणुओं के आरक्षित भण्डार को रुधिर में मुक्त कर देती है। अतः रुधिर में रुधिराणुओं की संख्या बढ़ जाती है।

(13) अग्नाश्य की लैंगरहैन्स की द्वीपिकाओं (islets of Langerhans) से इन्सुलिन (insulin) हॉरमोन का स्रावण कम तथा ग्लूकैगॉन (glucagon) हॉरमोन का स्रावण अधिक होने लगता है। ग्लूकैगॉन के प्रभाव से यकृत और कंकाल पेशियों में ग्लाइकोजन का ग्लूकोस में विखण्डन (glycogenolysis) तीव्र हो जाता है। इससे कंकाल पेशियाँ सक्रिय हो जाती हैं और यकृत कोशिकाएँ ग्लूकोस को रुधिर में मुक्त करने लगती हैं। साथ ही, वसा पिण्डों में वसा का विखण्डन (lypolysis) भी तीव्र हो जाता है। अतः रुधिर में ग्लूकोस तथा स्वतन्त्र वसीय अम्लों (Free Fatty Acids=FFA) की मात्रा सामान्य से अधिक हो जाती है।

(14) रुधिर में O_2,ग्लूकोस, वसीय अम्लों आदि की मात्राओं के बढने से ही शरीर की सारी कोशिकाओं की आधार उपापचयी दर (BMR)बढ़ जाती है और इसी से शरीर अत्यधिक उत्तेजनशीलता एंव क्रियाशील हो जाता है।

(15)बाह्म जननांग शिथिल हो जाते हैं, परन्तु स्खलन (discharge) तीव्र हो जाता है।

नॉरएपिनेफ्रिन तथा एपिनेफ्रिन के प्रभाव से आन्तरागों की क्रियाओं की दर तीव्रता कुछ ही सेकण्डों में बदल जाती है। इतने अल्पसमय में हो जाने वाले परिवर्तनों का असत्य संसूचक पोलीग्राफ नामक यन्त्र (lie detector polygraph) से पता लगााकर व्यक्ति की भावनाओं को जान लिया जाता है।

ऐड्रीनैलीन की निरन्तर कमी से व्यक्ति खिन्नमन रहने लगता है। ऐसे व्यक्ति को कोकेन (cocaine), ऐम्फीटैमीन (amphitamine), एफेड्रीन (ephedrine), टाइरैमीन (tyramine) आदि शमकरोधी (antidepressants) औषधियाँ दी जाती हैं जो अनुकम्पी तन्त्रिका तन्तुओं को प्रेरित करती हैं। इसी प्रकार, ऐड्रीनैलीन की अधिकता से तनाव बढ़ जाने पर डाइसल्फीराम, रिसरपीन, ग्वानीथीडीन (disulfiram, reserpine, guanethidine) आदि प्रशान्तक (tranquilizer) दवाइयाँ देते हैं जो अनुकम्पी तन्त्र के तन्तुओं की क्रियाशीलता को कम करती हैं।

10.4.6 पीयूष या पिट्यूटरी ग्रन्थि (Pituitory Gland) –.यह हमारे शरीर की सबसे छोटी अन्तःस्रावी

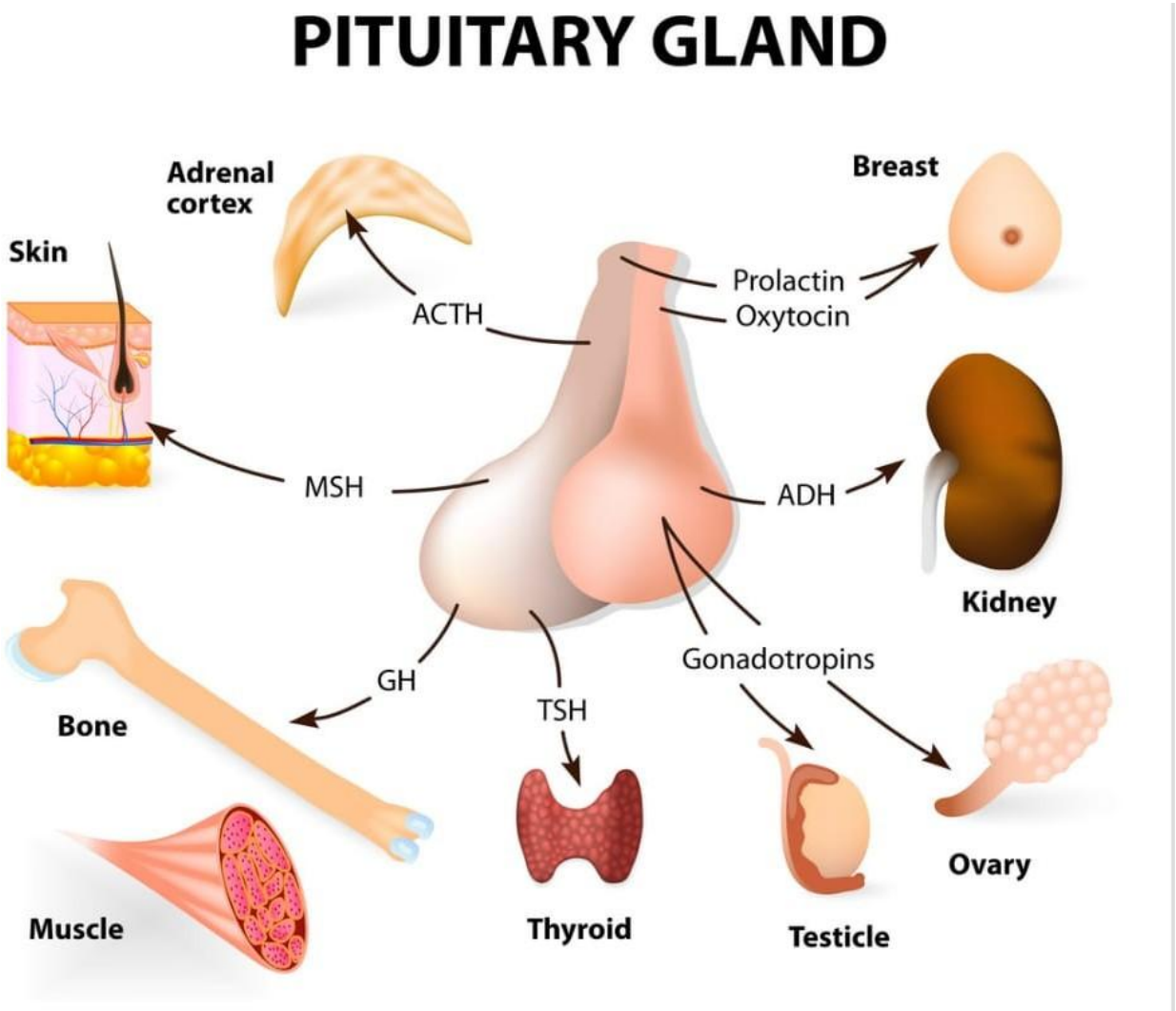

ग्रन्थि होती है। यह ग्रन्थि शरीर की सभी ग्रन्थियों को नियन्त्रित करती है। इसी वजह से इस ग्रन्थि को मास्टर ग्रंन्थि भी कहते हैं। यह आकार में 1–1.5 सेंटीमीटर व्यास में होती है। तथा इसका भार 1 ग्राम से कम होता है। गर्भावस्था के दौरान इसके भार में वृद्धि हो जाती है। और यह लगभग 0.7 से 1 ग्राम तक हो जाता है। इसका जो वजन बढ़ता है गर्भावस्था के दौरान इसी प्रक्रिया को हाइपोफाइसेस सेरेब्राइट कहते हैं। यह ग्रन्थि अग्र मस्तिष्क के डाइएनसेफेलॉन का पास स्फिनॉयड हड्डी में पायी जाती है। इससे निकलने वाले कुछ हार्मोन हैं जैसे–

1. सोमैटोट्रोपिन हार्मोन या वृद्धि हार्मोन – यह हार्मोन हमारी हड्डियों में वृद्धि करता है और शरीर की लम्बाई को नियन्त्रित करता है। इस हार्मोन की अधिकता हो जाये तो भीमकायता या एक्रोमिगली रोग हो जाता है। इस हार्मोन की कमी से बौनापन नामक रोग हो जाता है।

2. थायरोट्रापिन या थायराइड प्रेरक हार्मोन– यह हार्मोन थायराइड के स्रावण का नियमन करता है।

3. दुग्ध हार्मोन – यह मेमोट्रापिक हार्मोन (Mammotrotic Hormone- MTH) का स्रावण करती है। जो मादाओं में दुग्ध का निर्माण करता है।

4. पुटिक प्रेरक हार्मोन – यह नर के वृषणों में पाया जाता है और शुक्राणुओं को उत्तेजित करने को प्रेरित करता है।

5. लुटिनाइजिंग हार्मोन – नर में यह हार्मोन टेस्टोस्टेरॉन के नाम से जाना जाता है तथा मादा में स्ट्रोजेन के नाम जाना जाता है।

6. मिलैनोसाइट हार्मोन – कशेरूकियों में यह हार्मोन पाया जाता है। इससे मिलैनिन नामक हार्मोन का स्रावण होता है। यह हार्मोन रंग के कणों को फैला कर त्वचा के रंग को गहरा करता है। त्वचा में तिल भी मिलैनिन की वजह से होते हैं।

7. ऑक्सीटोसिन – मादाओं के गर्भाशय में जो सिकुड़न होती है उसे सही करने के लिये यह हार्मोन होता है। जिससे प्रसव के समय पीड़ा न हो। यह बच्चों के जन्म में सहायता करता है तथा दुग्ध निर्माण में भी सहायता करता है।

10.4.7 अग्न्याशयिक द्विपिकाएँ (Pancreas Gland) –.यह आमाशय के पीछे स्थित होती है आकार में यह 15 से 16 सेंटीमीटर लम्बी तथा हल्की गुलाबी रंग की मिश्रित ग्रन्थि होती है। अग्न्याशय में 10 से 20 लाख विशिष्ट प्रकार की कोशिकाओं का समूह होता है जिन्हें लैंगरहेन्स की द्विपिकाएं कहते हैं। यह द्विपिकायें चार भागों में बंटी होती है–

1. अल्फा, 2. बीटा, 3. डेल्टा और 4. एफ या पी कोशिका।

अग्न्याशय से निकलने वाले हार्मोन है जैसे–

1. **इन्सुलिन** – अग्न्याशय की बीटा कोशिकाओं के द्वारा इन्सुलिन का स्रावण होता है। जब भोजन में कोर्बोहाइड्रेट की मात्रा बढ़ जाती है तब इस हार्मोन की मात्रा भी बढ़ जाती है। यह कार्बोहाइड्रेट का नियन्त्रण करता है। इन्सुलिन कार्बोहाइड्रेट को ग्लाइकोजन में परिवर्तित करता है अगर इन्सुलिन की मात्रा हमारे शरीर में कम हो जाये तो रक्त में

शर्करा की मात्रा बढ़ जायेगी और मधुमेह या हाइपरग्लाइसीमिया हो जायेगा जब ग्लूकोज की मात्रा रक्त मे बंहुत अधिक हो जाये तो यह ग्लूकोज मूत्र के रास्ते से बाहर निकलने लगता है।

यदि इन्सुलिन की मात्रा शरीर में बढ़ जाये तो हाइपोग्लाइसीमिया कहलाता है। शरीर की अन्य कोशिकायें रक्त से अधिक ग्लूकोज लेने लगते हैं जिससे रक्त में ग्लूकोज की मात्रा कम हो जाती है। चूंकि ग्लूकोज शरीर में ऊर्जा क कारक होता हैं। अतः शरीर में ऊर्जा नहीं रह जायेगी और व्यक्ति कमजोर हो जायेगा।

2. **ग्लूकागॉन**– यह अल्फा कोशिकाओं से निकलती है। यह यकृत में उपस्थित ग्लाइकोजन को पुनः ग्लूकोज में बदल देती है तथा ग्लूकोनियोजिनेसिस नामक हार्मोन को प्रेरित करती है ताकि रक्त में ग्लूकोज की सामान्य मात्रा बनी रहे।

3. **सुमैटोस्टेटीन** – यह अग्न्याशय के पॉलीपेप्टाइड या गामा कोशिकाओं द्वारा निकलते हैं। यह हार्मोन भोजन के पाचन की , पचे हुये पोषक पदार्थो के अवशोषण की तथा स्वांगीकरण की गति को कम करता है ताकि पोषक पदार्थो को शारीर अधिक से अधिक अवशेषित कर सके।

10.4.8 जनन ग्रन्थि (Reproductive Gland)-

प्रत्येक नई संतान का प्रारम्भ उस युग्मक कोशिका या युग्मनज अर्थात् जाइगोट (zygote) से होता है जो मादा की अण्डवाहिनियों (oviducts) में मादा के अण्डाणु (ovum) तथा नर के शुक्राणु; (sperm) के संयुग्मन (union or syngomy) अर्थात् अण्डाणु के निषेचन (fertilization) के फलस्वरूप बनता है। जाइगोट से विकसित मानव शिशु नर होगा या मादा, यह जाइगोट में उपस्थित लिंग गुणसूत्रों (sex chromosomes) पर र्निभर करता है। XY लिंग गुणसूत्रों वालें जाइगोट से नरतथा XX लिंग गुणसूत्रों वालें जाइगोट से मादा शिशु का विकास होता है स्पष्ट है कि Y गुणसूत्र के प्रभाव से भ्रूण में नर जनद अर्थात् वृषण (testes) बनते है और इसकी अनुपस्थिति में भ्रूण में मादा जनद अर्थात् अण्डाशय (ovaries) बनते हैं। फिर नर भ्रूण में अन्य सभी जननांगों का विकास वृषणों से स्रावित नर लिंग हॉरमोन्स के प्रभाव से होता हैऔर मादा भ्रूण में इन हॉरमोन्स की अनुपस्थिति के कारण। भ्रूण में नर व मादा का यह गर्भधारण के 7–8 सप्ताह बाद प्रारम्भ होता है, क्योंकि शिशु जन्म तक सभी जननांग बन जाते हैं, वृषणों से भी लिंग हॉरमोन्स का स्रावण बन्द हो जाता है। फिर बाल्यावस्था (childhood) में जननांगों की वृद्धि तो होती रहती है, परन्तु ये क्रियाशील नहीं होते। इसीलिए, बाल्यावस्था में जननांगों के अतिरिक्त अन्य शारीरिक लक्ष्णों तथा व्यवहार आदि में लड़कों और लड़कियों में विशेष अन्तर नहीं होता। लगभग 11–13 वर्ष की आयु में, बाल्यावस्था समाप्त हो जाती है और यौवनारम्भ (Puberty) से किशोरावस्था (adolescence;i.e.,teenage years) प्रारम्भ हो जाती है क्योंकि हाइपोथैलेमस के नियंत्रण में पीयूष ग्रन्थि से गोनैडोट्रोपिन हॉरमोन्स (gonadotropin hormones-LH तथा FSH) का स्रावण होने लगता है और इनके प्रभाव से जनन सक्रिय होकर लिंग हॉरमोन्स (sex chromosomes) का स्रावण करने लगते हैं। साथ ही

अधिवृक्क अर्थात् ऐड्रीनल ग्रन्थियों से भी लिंग हॉरमोन्स का स्रावण बढ़ जाता है। किशोरावस्था 13–19 वर्ष तक की आयु में जननांगों तथा अतिरिक्त (accessory) लैंगिक लक्षणों सहित पूर्ण शरीर के विकास, जनन क्रियाओं सहित समस्त क्रियाओं तथास्वभाव एवं व्यवहार आदि पर लिंग हॉरमोन्स का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है और प्रजनन की क्षमता अर्थात् लैंगिक परिपक्वता (sexual maturity) विकसित हो जाती है अर्थात् व्यक्ति वयस्क (adult) बन जाता है।

(A) वृषण – वृषण के अन्तःस्रावी भाग में कोशिकाओं का एक समूह शुक्राणु उत्पन्न करने वाली नलिकाओं के चारों ओर संयोजी ऊतक में स्थित होता है। इन कोशिकाओं में उपस्थित लेडिंग कोशिकायें टेस्टोस्टेरॉन एण्ड्रोजन नामक हार्मोन का स्रावण करती है।

वृषणों में, शुक्रजनन नलिकाओं (Seminiferous tubules) के बाहर, संयोजी ऊतक में, लिपिडयुक्त अन्तराल या लेडिग की कोशिकाओं (Interstitial cells or cells of Leydig) के छोटे–छोटे समूह होते हैं। ये कोशिकाएँ कोलेस्ट्रॉल से व्युत्पन्न नर हॉरमोन्स अर्थात् ऐन्ड्रोजेन्स (androgens) का स्रावण करती हैं। प्रमुख ऐन्ड्रोजेन टेस्टोस्टीरॉन (testosterone) होता है। इसे पौरुष–विकास हॉरमोन (masculinization hormone) कहते हैं। किशोरावस्था (adolescence) में अर्थात् यौवनारम्भ (puberty) से लेकर वयस्कता या प्रौढ़ता (adulthood) की आयु तक यह काफी मात्रा में स्रावित होकर हड्डियों और पेशियों तथा सभी अतिरिक्त लैंगिक अंगो, जैसे–अधिवृषण अर्थात् एपिडिडाइमिस (epididymis), शुक्रावाहिनियो (vasa deferentia) शुक्राशयों (seminal vesicles), वृषण कोषों (scrotal sacs), शिश्न (penis), सहायक जनन ग्रन्थियों आदि के विकास को प्रेरित करता है। साथ ही इसके प्रभाव से नर लैंगिक लक्षणों, जैसे– दाढ़ी–मूँछ तथा बगलों, वृक्ष एवं जघन (pubic) क्षेत्र में बालों का उगना, माथे के पार्श्वों में रोम – रेखाओं का पीछे हटना, भारी आवाज, अधिक मजबूत हड्डियों एवं पेशियों, शरीर की आकृति में सुदृढ़ता, कंधों का फैलना, स्वभाव में उत्साह एवं उद्यमशीलता (aggresiveness), मैथुनेच्छा आदि का विकास होता है। शुक्राणुजनन (spermatogenesis) प्रक्रिया के पूरा होने में भी इसका महत्वपूर्ण प्रभाव रहता है। इन कार्यों में दो अन्य ऐन्ड्रोजेन्स–ऐन्ड्रोस्टीनेडाइऑन (androstenedione) तथा डीहाइड्रोएपीऐन्ड्रोस्टीरॉन (dehydroepiandrosterone)

टेस्टोस्टीरॉन की सहायता करते हैं। सूक्ष्म मात्रा में इन तीनों ऐन्ड्रोजन्स का स्रावण लड़कियों एवं लड़कों, दोनों में ऐड्रीनल कॉर्टेक्स से भी होता है।

गर्भकाल में, अपरा या आँवल (placenta) से स्रावित कोरिओनिक गोनैडोट्रोपिक हॉरमोन (chorionic gonadotropic hormone) के प्रभाव से, 8–9 सप्ताह के ही नर भ्रूण के वृषणों से टेस्टोस्टीरॉन हॉरमोन स्रावित होने लगता है और शिशु में शिश्न, अण्डकोषों एवं अन्य जननांगों के निर्माण को प्रेरित करता है। जन्म के बाद से लेकर बाल्यावस्था (childhood) की समाप्ति तक वृषण निष्क्रिय रहते हैं। फिर यौवनारम्भ (puberty)

अर्थात् 11 से 13 वर्ष की आयु से, पीयूष ग्रन्थि के FSH एवं LH हॉरमोन्स वृषणों को फिर से सक्रिय बनाने लगते हैं। अतः वृषणो से शुक्राणुजनन (Spermatogenisis) के साथ–साथ नर हॉरमोन्स भी बनने लगते हैं। लगभग 40 वर्ष की आयु तक नर हॉरमोन्स का स्रावण काफी होता रहता है। इसके बाद इसकी दर धीरे–धीरे घटती चली जाती है, परन्तु सन्तानोत्पत्ति की क्षमता कई वर्षों तक बनी रहती है।

वृषणों को काटकर हटा देने को बधियाकरण (Castration or orchidectomy) कहते हैं। यौवनारम्भ से पूर्व बधियाकरण कर देने से, या टेस्टोस्टीरॉन के अल्पस्रावण अर्थात् हाइपोगोनेडिज्म (hypogonadism) से अतिरिक्त लैंगिक लक्षणों का विकास नहीं होता और व्यक्ति नपुंसक या हिजड़ा (neuter or eunuch) हो जाता है। हिजड़े कद में कुछ लम्बे परन्तु प्रायः दुबले और कमज़ोर होते हैं। इनके जननांग बच्चों जैसे होते हैं। दाढ़ी–मूँछ का विकास भी प्रायः नहीं हो पाता। उत्साह एवं उद्यमशीलता (aggressiveness) भी कम होती है। यौवनारम्भ के बाद बधियाकरण से जननांग कमज़ोर हो जाते हैं तथा मैथुनेच्छा और जनन की क्षमता धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है। पशुपालन में बधियाकरण का उपयोग किया जाता है। बधियापशु, घोड़े एवं मुर्गे को क्रमशः स्टीयर (steer), गेल्डिंग (gelding) एवं कैपोन (capon) कहते हैं। बधियाकरण से इनके स्वभाव में सरलता आ जाती है।

(B) अण्डाश्य (ovaries) एंव मादा हॉरमोन (Female Hormones)

लड़कियों में भ्रूणीय अण्डाशयों से स्रावित नहीं होते। बाल्यावस्था में भी अण्डाशय (ovaries)बिल्कुल निष्क्रिय रहते हैं। लगभग 8 वर्ष की आयु से पिट्युटरी ग्रन्थि गोनैडोट्रोपिन हॉरमोन्स LH एवं FSH का स्रावण करने लगती है । इन हॉरमोन्स के प्रभाव से 11 से 13 वर्ष की आयु तक अण्डाशय सक्रिय हो जाते है और मासिक धर्म प्रारंभ हो जाता है अर्थात् लैंगिक परिपक्वन हो जाता है । इसी को यौवनारंभ (puberty) कहते है अण्डाशयो की ग्राफियन पुटिकाएं (graafian follicles) दो विभिन्न प्रकार के स्टीरॉयड मादा हॉरमोन्स का स्रावण करती हैं – पुटिकीय हॉरमोन्स अर्थात् ईस्ट्रोजेन्स (follicular hormones or estrogens) तथा ल्युटियल या प्रोजेस्टरीय हॉरमोन्स (luteal or progestational hormones)।

ईस्ट्रोजेन्स ग्राफियन पुटिकाओं की थीका इन्टरना (theca interna) की कोशिकाओं द्वारायौवनारम्भ से लेकर रजोनिवृत्ति (menopause) की आयु लगभग 45 से 52 वर्ष तक स्रावित होते हैं। प्रमुख ईस्ट्रोजेन ईस्ट्रैडिऑल (estradiol) होता है। इसे नारी विकास (feminizing) हॉरमोन कहते हैं क्योंकि यह मादा के सभी सहायक जननांगों व लैंगिक लक्षणों के विकास को प्रेरित करता है। इसी के प्रभाव से यौवनारम्भ पर लड़कियों में स्तनों, दुग्ध ग्रन्थियों अण्डवाहिनीयों, गर्भाशयों, योनि, लैबिया (labia), भगशिश्न (clitoris) आदि का समुचित विकास हो जाता है। वसा संचय के कारण श्रोणि भाग चौड़ा और नितम्ब भारी, आवाज महीन, रजोधर्म अर्थात् मासिक चक्र (menstruous or monthly cycle) का प्रारम्भ, स्वभाव में शालीनता तथा मैथुनेच्छा जागृत होती है। ईस्ट्रोजेन्स का श्रावण पीयूष ग्रन्थि के LH एवं FSH हॉरमोन्स के नियंत्रण में होता है। इनके

अधिक स्रावण से रजोधर्म की अनियमितता हो जाती है और कभी–कभी कैन्सर (cancer) तक का खतरा हो जाता है। यौवनारम्भ से पहले ईस्ट्रोजेन के अल्पस्रावण (hyposecretion) अर्थात् हाइपोगोनेडिज्म (hypogonadism) से भी रजोधर्म अनियमित और अतिरिक्त लैंगिक लक्ष्णों का विकास कम होने से हिजणापन हो जाता है। स्तन बहुत छोटे, श्रोणि भाग पतला तथा नितम्ब चपटे रह जाते हैं। यौवनावस्था में अल्पस्रावण से जनन की क्षमता कम हो जाती है।

रजोनिवृत्ति तक अण्डाशय निष्क्रिय हो जाते हैं और मासिक चक्र बन्द हो जाता है, क्योंकि अण्डाशयों पर FSH एवं LH का प्रभाव लगभग समाप्त हो जाता है। अतः मादा लिंग हॉरमोन्स का स्रावण बन्द हो जाने के कारण FSH एवं LH का स्रावण तो बढ़ जाता है, परन्तु गर्भधारण की क्षमता समाप्त हो जाती है।

प्रोजेस्टरीय हॉरमोन्स का स्रावण **कॉर्पस ल्यूटियम** (corpus luteum) नाम की उस पीली ग्रन्थि से होता है जिसमें कि, अण्डोत्सर्ग (ovulation) के बाद, प्रत्येक ग्राफियन पुटिका की थीका इन्टरना बदल जाती है। अण्डोत्सर्ग और कॉर्पस ल्यूटियम का निर्माण LH के प्रभाव से, मासिक चक्र के प्रारम्भ से लगभग 14 दिन बाद होता है। प्रोजेस्टरीय हॉरमोन्स में **प्रोजेस्ट्रॉन** (Progestrone) प्रमुख होता है। यह गर्भधारण (pregnancy) के लिए आवश्यक लक्षणों के विकास को प्रेरित करता है। इसके प्रभाव से गर्भाशय की दीवार का भीतरी स्तर अर्थात् **एण्डोमीट्रियम** (endometrium) मोटा हो जाता है। इसमें रुधिर परिसंचरण बढ़ जाता है। इसकी कोशिकाओं में वसाओं एवं ग्लाइकोजन का संचय हो जाता है। दुग्ध ग्रन्थियाँ बड़ी व सक्रिय हो जाती हैं। स्तन बड़े हो जाते हैं। अण्डाशयों में नई पुटिकाओं का बनना बन्द हो जाता है। यदि गर्भादान हो जाता है तो कॉर्पस ल्यूटियम बना रहता है और मासिक चक्र बन्द हो जाता है। अन्यथा इस मासिक चक्र के 26–27 दिन बाद गर्भाशय की दीवार के एण्डोमीट्रियम का खण्डन एवं रुधिरस्राव हो जाता है। फिर पिट्युटरी FSH के एवं (LH) का स्रावण बढ़ जाने से अण्डाशयों में नई पुटिकाओं का विकास होने लगता है। इसी से अगले मासिक चक्र का प्रारम्भ हो जाता है।

रिलैक्सिन (Relaxin) : गर्भावस्था में कॉर्पस ल्यूटियम तथा ऑवल से (Placenta) से इस हॉर्मोन का स्रावण होता है यह एक पॉलिपेप्टाइड (polypeptide) होता है। यह गर्भावस्था में शिशु के बड़े होने के साथ–साथ श्रोणिमेखला (Pelvic girdle) के प्यूबिक सिम्फाइसिस (Public symphysis) नामक जोड़ को लचकदार बना कर फैलाता जाता है और अन्त में गर्भाशय के छिद्र को फैला कर शिशु जन्म (Parturition) को सुगम बनाता है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर योग का प्रभाव

हमारे शरीर की क्रियाविधि पर नियंत्रण का कार्य अन्तःस्रावी ग्रंथियां ही करती हैं। इनका स्राव ही हमारे शरीर में भावनात्मक व कार्यात्मक हलचल लाता है। इससे पहले अभी आपने प्रजनन तंत्र पर योग के प्रभाव

का अध्ययन किया। प्रजनन तंत्र भी पुरूष प्रजनन ग्रंथि वृषण तथा स्त्री प्रजनन ग्रंथि डिम्ब से होने वाले स्राव द्वारा नियंत्रित रहता है। योग द्वारा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की क्रियाशीलता को बढ़ाया जा सकता है।

1. **अंन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर आसनों का प्रभाव**– शीर्षासन, सर्वांगासन तथा आगे की ओर झुकने वाले आसन जैसे पादहस्तासन मस्तिष्क में रक्त के प्रवाह को बढ़ाता है और पिट्यूटरी और पीनियल ग्रंथि के कामकाज मे सुधार के साथ मस्तिष्क और हाइपोथैलेमस के कामकाज में सुधार करता है। हलासन, सर्वांगासन, पूर्ण हलासन, थायराइड और पैराथायराइड ग्रंथि के कामकाज में सुधाार करते हैं। मत्स्येन्द्रासन, गौमुखासन, बालासन और योगमुद्रा आसन अग्न्याशय के कार्य को नियन्त्रित करते हैं। सेतुबन्धासन, भुंजगासन वृषण और डिम्ब ग्रंथि के कार्य में सुधार करते हैं। योग वृद्धि और चयापचय जैसे अन्तःस्रावी तंत्र के कार्यों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। यह तनाव की प्रतिक्रिया पर लाभकारी प्रभाव डाल सकता है। योग जैसी विश्राम तकनीक कोर्टिसोल ओर एड्रिनेलिन जैसे कुछ तनाव हार्मोन के स्राव को कम करता है और मेलाटोनिन के स्राव को बढ़ाता है, जो पीनियल ग्रंथि द्वारा स्रावित हार्मोन है।

5 जुलाई 2004 को प्रकाशित ''जर्नल ऑफ कॉम्प्लीमेंटरी एवं अल्टरनेटिव मेडिसिन'' के अंक में प्रकाशित शोध में पाया गया कि अध्ययन में भाग लेने वालों ने नियमित रूप से तीन महीने की संरचित योग साधना में भाग लिया, जिसमें ध्यान, आसन और प्राणायाम शामिल हैं, जो प्लाज्मा मेलाटोनिन के स्तर में वृद्धि का अनुभव करते हैं। एक और अध्ययन, दिसम्बर 1, 2005 में प्रकाशित ''मेडिकल सांइस मॉनिटर'' का मुद्दा, तीन महीने के गहन योग कार्यक्रम में भाग लेने वाली भावनात्मक रूप से व्यक्ति महिलाओं ने लार के कॉर्टिसोल के स्तर में कमी, कथित तनाव में सुधार का अनुभव किया।

2. **अंन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर प्राणायाम का प्रभाव**– प्रणायाम स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करता है और यह प्रणाली एड्रेनालाईन, थायरॉक्सिन और शरीर के अन्य हार्मोन के स्राव को नियंत्रित करती है। प्राणायाम अन्तःस्रावी तंत्र पर बहुत अच्छा प्रभाव डालता है। प्राणायाम में जब सांस को नियंत्रित करते हैं तो यह दिमाग और शरीर दोनों को नियंत्रित करता है। प्राणायाम के दौरान फेफड़ों को अधिक ऑक्सीजन मिलती है जो शरीर की प्रत्येक कोशिका तक पहुंचाया जाता है। रक्त की आपूर्ति और ऑक्सीजन की आपूर्ति भी मस्तिष्क और हाइपोथैलेमस के कामकाज में सुधार होता है। प्राणायाम हाइपोथैलेमस पिट्यूटरी और अन्य ग्रन्थियों के बीच के संबंधा को बेह तर बनाता है और इस प्रकार संपूर्ा अन्तःस्रावी तंत्रसंतुलित होता है। योगनिद्रा, अनुलोम–विलोम, भ्रामरी, भस्त्रिका प्राणायाम का इन ग्रंथियों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जालंधर बंध, उज्जायी प्राणायाम थायराइड–पैराथायराइड के लिए लाभकारी है।

3. **अंन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर ध्यान का प्रभाव**– जब हम सही ढंग से धारणा का अभ्यास करते हैं, तो मस्तिष्क की पैरासिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र को सक्रिय करेगा पैरासिम्पेथेटिक नर्वस न्यूरोट्रांसमीटर एसिटाइलकोलाइन को रिलीज करता है जो अन्तःस्रावी ग्रंथियों की क्रियाओं को बढ़ाता है। उदाहरण के लिए अग्न्याशय से इंसुलिन स्रावण संतुलन में आता है जो रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को नियंत्रित करने में मदद करता है ताकि कोशिकाओं को

ग्लूकोज को अवशोषित करने और भविष्य में उपयोग के लिए ऊतकों में किसी भी अतिरिक्त ग्लूकोज को संग्रहित करने में मदद मिल सके। हाइपोथेलेमस मस्तिष्क शोध को भी सक्रिय करता है, जो एसिटाइलकोलाइन, सिरोटोनिन (जैसे पीनियल ग्रन्थि), मेलाटोनिन और विशेष रूप से डोपामाइन को मुक्त करता है।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1. निम्नलिखित में से कौन–सा अंग एक ग्रन्थि नहीं है ?

(क) अधिवृक्क (ख) पित्ताशय (ग) पीयूष (घ) यकृत

2. मानव शरीर में सबसे बड़ी अन्तःस्रावी ग्रन्थि निम्न में से कौन–सी है ?

(क) थाइरॉयड (ख) पैराथाइरॉयड (ग) एड्रीनल (घ) पिट्यूटरी

3. मानव शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि कौन–सी है ?

(क) यकृत (ख) थाइरॉयड (ग) पीयूष (घ) लार ग्रन्थि

4. कौन सा हॉर्मोन रक्त में शर्करा की मात्रा नियंत्रित करता है ?

(क) ग्लूकोजन (ख) थाइरॉक्सिन (ग) ऑक्सीटोसिन (घ) इंसुलिन

5. मानव शरीर में मास्टर ग्रन्थि कहलाती है –

(क) थाइरॉयड (ख) पैराथाइरॉयड (ग) पिट्यूटरी (घ) थॉयमस

10.5 सारांश

कुछ विशेष प्रकार के रसायन हॉर्मोन की तरह कार्य कर मानव शरीर में रासायनिक समन्वय, एकीकरण और नियमन प्रदान करते हैं। ये हॉर्मोन कुछ विशेष कोशिकाओं अंतःस्रावी ग्रन्थियों तथा हमारे अंगों की वृद्धि उपापचय एवं विकास को नियमित करते हैं।

अंतःस्रावी तंत्र का निर्माण हाइपोथैलेमस, पीयूष, पीनियल, थायरॉइड, अधिवृक्क, अग्नाशय, पैराथायरॉइड, थाइमस और जनन (वृषण एवं अंडाशय) द्वारा होता है। इनके साथ ही कुछ अन्य अंग जैसे जठर आंत्रीय पथ, वृक्क हाइपोथैलेमस, हृदय आदि भी हॉर्मोन का उत्पादन करते हैं। हाइपोथैलेमस द्वारा 7 मुक्तकारी हॉर्मोन और 3 निरोधी हॉर्मोन का उत्पादन होता है जो पीयूष ग्रन्थि पर कार्य कर उससे उत्सर्जित होने वाले हॉर्मोन के संश्लेषण और स्रवण का नियंत्रण करते हैं। पीयूष ग्रन्थि तीन मुख्य भागों में विभक्त होती है– पार्स डिस्टेलिस, पार्स इंटरमीडिया, पार्स नवौसा। पार्स डिस्टेलिस द्वारा 6 ट्रॉफिक हॉर्मोन का स्रवण होता है। पार्स इंटरमीडिया केवल एक हॉर्मोन का स्राव करता है, जबकि पार्स नर्वोसा दा हॉर्मोन का स्राव करता है। पीयूष ग्रन्थि से स्रावित हॉर्मोन कायिक ऊतकों की वृद्धि, परिवर्धन एवं परिधीय अंतःस्रावी ग्रन्थियों की क्रियाओं का नियंत्रण करते हैं। पिनियल ग्रन्थि मेलाटोनिन का स्राव

करती है जो कि हमारे शरीर की 24 घंटे की लय को नियंत्रित करता है, (जैसे कि सोने व जागने की लय, शरीर का तापक्रम आदि)। थाइरॉइड ग्रन्थि से स्रावित होने वाले हॉर्मोन थाइरॉक्सीन आधारीय उपापचयी दर, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के परिवर्धन और परिपक्वन, रक्ताणु उत्पत्ति कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा के उपापचय, मासिक चक्र आदि का नियंत्रण करता है।

अन्य थायरॉइड हॉर्मोन थाइरोकैल्सिटोनिन हमारे रक्त में कैल्शियम की मात्रा को कम करके उसका नियंत्रण करता है। पैराथायरॉइड ग्रन्थियों द्वारा स्रावित पैराथायरॉइड हॉर्मोन (PTH) Ca^{2+} के स्तर को बढ़ाकर Ca^{2+} के समस्थापन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। थाईमस ग्रन्थियों द्वारा स्रावित थाइमोसिन हॉर्मोन टी–लिम्फोसाइट्स के विभेदीकरण में मुख्य भूमिका निभाता है, जो कोशिका केंद्रित असंक्राम्यता (प्रतिरक्षा) प्रदान करते हैं। साथ ही थाइमोसिन एंटीबॉडी का उत्पादन भी बढ़ाते हैं जो शरीर को तरल असंक्राम्यता (प्रतिरक्षा) प्रदान करते हैं। अधिवृक्क ग्रन्थि मध्य में उपास्थि अधिवृक्क मध्यांश और बाहरी अधिवृक्क वल्कुट की बनी होती है। अधिवृक्क मध्यांश एपीनेफ्रीन और नॉरएपीनेफ्रीन हॉर्मोन का स्राव करता है।

ये हॉर्मोन सतर्कता, पुतलियों का फैलना, रोंगटे खड़े करना, पसीना आना, हृदय की धड़कन, हृदय संकुचन की क्षमता, श्वसन की दर, ग्लाइकोजेन अपघटन, वसा अपघटन को बढ़ाते हैं। अधिवृक्क वल्कुट ग्लूकोकॉर्टिकाइड्स (कार्टिसॉन) और मिनरेलोकॉर्टिकाइड्स (एल्डोस्टीरॉन) का स्राव करता है। ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स ग्लाईकोजन, संश्लेषण, ग्लूकोनियोजिनेसिस, वसा अपघटन, प्रोटीन अपघटन, रक्ताणु उत्पत्ति, रक्त दाब और ग्लोमेरूलर निस्पंदन को बढ़ाते हैं तथा प्रतिरोधक क्षमता को दबा कर शोथ प्रतिक्रियाओं को रोकता है। खनिज कोर्टिकॉइड्स शरीर में जल एवं वैद्युत अपघट्यों का नियमन करते हैं। अंतःस्रावी अग्नाशय ग्लूकागॉन एवं इंसुलिन हॉर्मोन का स्राव करता है। ग्लूकोगॉन कोशिका में ग्लाइकीजेनोलिसिस तथा ग्लूकोनियोजैनेसिस को प्रेरित करता है, जिससे रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है। इसे हाइपरग्लासीमियम (अति ग्लूकोज रक्तता) कहते हैं। इंसुलिन शर्करा के अधिग्रहण और उपयोग को प्रेरित करती है और ग्लाइकोजिनेसिस के फलस्वरूप हाइपोग्लासिमिया हो जाता है। इंसुलिन की कमी से डायबिटीज मैलीटस (मधुमेह) नामक रोग हो जाता है।

वृषण एंड्रोजन हॉर्मोन का स्राव करता है जो नर के आवश्यक लैंगिक अंगों के परिवर्धन, परिपक्वन और क्रियाओं को, द्वितीयक लैंगिक लक्षणों का प्रकट होना, शुक्राणु जनन, नर लैंगिक व्यवहार, उपचयी पथक्रम और रक्ताणु उत्पत्ति को प्रेरित करता है। अंडाशय द्वारा एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरॉन का स्राव होता है। एस्ट्रोजेन स्त्रियों में आवश्यक लैंगिक अंगों की वृद्धि व परिवर्धन और द्वितीयक लैंगिक लक्षणों के प्रकट होने को प्रेरित करता है। प्रोजेस्टेरॉन गर्भावस्था की देखभाल के साथ ही दुग्ध ग्रन्थियों के परिवर्धन और दुग्धस्राव को बढ़ाता है। हृदय की अलिंद भित्ति एंट्रियल नेट्रियूरेटिक कारक का उत्पादन करता है, जो रक्त दाब कम करता है। वृक्क में एरीथ्रोपोइटिन का उत्पादन होता है जो रक्ताणु उत्पत्ति को प्रेरित करता है। जठर आंत्रीय पथ के द्वारा गैस्ट्रिन सेक्रेटिन, कोलीसिस्टोकाइसिन – पैक्रियोजाइमिन और जठर अवरोधी पेप्टाइड का स्राव होता है। ये हॉर्मोन पाचक रसों के स्राव और पाचन में सहायता करते हैं।

10.6 शब्दावली

1. अवटु ग्रन्थि – थायरॉइड ग्रन्थि

2. पियूष ग्रन्थि – पिट्टयूरी ग्रन्थि

3. परावटु ग्रन्थि – पैराथायराइड ग्रन्थि

4. हार्मोन – अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाला पदार्थ

5. एन्जाइम – बहिस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाला पदार्थ

6. हाइपोफाइसिस – पिट्यूटरी ग्रन्थि का एक नाम

7. मास्टर ग्रन्थि – नियन्त्रक ग्रन्थि

8. एसीनर कोशिकाएं – बहिस्रावी कोशिकायें

10.7 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. (क) पित्ताशय

2. (क) थाइरॉयड

3. (क) यकृत

4. (घ) इंसुलिन

5. (ग) पिट्यूटरी

10.8 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रस्तोगी, डॉ. वीरबाला (2016), जैव रसायन तथा कार्यकी, केदारनाथ रामनाथ

2. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश (2008), मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान, सुमित प्रकाशन, आगरा

3. दीक्षित राजेश (2002), शरीर रचना क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा

4. शर्मा, डॉ. ताराचन्द्र (1999), आयुर्वेदिक शरीर रचना विज्ञान, नाडा पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक

5. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009), एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, भाषा भवन, मथुरा

10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. हॉर्मोन्स क्या हैं ? थाइरॉयड ग्रन्थि से उत्पन्न विभिन्न हॉर्मोन्स का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 2. पीयूष ग्रन्थि द्वारा स्रावित किए जाने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स के नाम एवं कार्य लिखिए ?

प्रश्न 3. हॉर्मोन्स की परिभाषा दीजिए। यह कितने प्रकार के होते हैं ? इनके गुण तथा कार्य लिखिए ?

ईकाई – 11 ज्ञानेन्द्रियाँ

ईकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्रदेश्य

11.3 ज्ञानेन्द्रियाँ

11.4 त्वचा या स्पर्शेन्द्रि : संरचना एवं कार्यविधि

11.5 जीभ या स्वादेन्द्रियाँ : संरचना एवं कार्यविधि

11.6 नाक या घ्राणेन्द्रियाँ : संरचना एवं कार्यविधि

11.7 कान या श्रवणेन्द्रियाँ : संरचना एवं कार्यविधि

11.8 आँख या दृश्येन्द्रियाँ : संरचना एवं कार्यविधि

11.9 प्रतिरक्षा तंत्र

11.10 सारांश

11.11 शब्दावली

11.12 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

11.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.14 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना –

प्रिय पाठको, इससे पूर्व की ईकाई मे आपने तंत्रिका तंत्र के बारे मे विस्तृत अध्यन किया है प्रस्तुत इकाई में ज्ञानेन्द्रियों की संरचना एंव कार्यो का अध्ययन करेंगे। शिक्षार्थियो हमे किसी भी बाहरी घटना, पदार्थ, व्यक्ति इत्यादि की जानकारी संवेदनाओं के माध्यम से होती है, और इन संवेदनाओं को ग्रहण करने मे हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जो पॉच है – त्वचा (स्पशेन्द्रिय), जीभ (स्वादेन्द्रिय), नाक (घ्राणेन्द्रिय), कान (श्रवणेन्द्रि) तथा आँख (दृश्येन्द्रि)। इन ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही हमें बाहय जगत का ज्ञान होता है इसीलिए इन्हे ज्ञानेन्द्रियाँ कहा जाता है।

प्रतिरक्षा तंत्र शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यही वह तंत्र है जिस के सहयोग से शरीर बाहय जीवाणुओं , विषाणुओ एवं रोगाणुओं से सुरक्षित रह पाता है।

11.2 उद्देदश्य – प्रिय विद्यार्थियो , प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप —

- ज्ञानेन्द्रियों का अध्ययन कर सकेंगे l
- ज्ञानेन्द्रियाँ कितने प्रकार होती है , इसका वर्णन कर सकेंगे l
- ज्ञानेन्द्रियों की संरचना को स्पष्ट कर सकेगें l
- ज्ञानेन्द्रियों की क्रियाविधि का वर्णन कर सकेंगे l
- प्रतिरक्षा तंत्र क्या है इसे स्पस्ट करेंगे
- प्रतिरक्षा तंत के भागो का अध्ययन कर सकेंगे l
- रोगक्षमता क्या होती है इसका वर्णन कर सकेंगे l

11.3 ज्ञानेन्द्रियाँ संरचना व कार्य

[Sense Organs Stucture and Fuction]

वातावरण के परिवर्तनों को ग्रहण करने वाले अंगों को ज्ञानेन्द्रियाँ कहते हैं। बाह्म जगत के ज्ञान की प्राप्ति विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं (sensetions) के द्वारा ही सम्भव होती हैं। संवेदना का अनुभव तभी संभव है जब उससे सम्बन्धित संवेदी तन्त्रिकाओं (sensory nerves) को उचित उदद्ीपन (stimulus) प्राप्त हो सके। उदद्ीपनों के उत्पन्न हो जाने पर और उनके मस्तिष्क या स्पाइनल कार्ड में संचरित होने के बाद उनका विश्लेषण केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के द्वारा होता है और हम उस संवेदना का अनुभव मस्तिष्क के द्वारा अनुवादित

होने पर करते हैं। शरीर ध्वनि, प्रकाश, गंध, दाब आदि के लिए संवेदशील होता हैं। इनकी संवेदना विशेष प्रकार के संवेदनिक अंगों पर निर्भर करती है, जो शरीर के विभिन्न भागों मे स्थित होते है।

विशिस्ट संवेंनिक अंगों से तन्त्रिका तन्तुओं का सम्बन्ध रहता है। तन्त्रिका तन्तुओ का विशिस्ट संवेदनिक अंगों में अन्त होने से पहले ये अपने न्यूरोलीमा (neurolemma) तथा मायलिन आवरण का त्याग कर देते है। प्रत्येक संवेदी तन्त्रिका का अंतिम भाग कुछ विशेष प्रकार का बना होता हैं, जिसे अन्ताँग (end organ) कहते है और ये अन्तांग ही संवेदन के विशेष अंग होते है। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय से सम्बन्धित अनेक उपांग होते है, जो उदद्ीपन अन्तांग तक संचारित करते है। परन्तु वास्तविक उदद्ीपन अन्तांग में ही होता हैं और वहां से यह मस्तिक में पहुँचता है, जहाँ इसका विश्लेषण होता है ओर विशिष्ट संज्ञा (special sense) का ज्ञान होता है।

मानव शरीर में निम्न पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैः–

1–त्वचा का स्पर्शेन्द्रियः– इससे स्पर्श दाब, पीड़ा, वेदना, ताप एवं शीत का ज्ञान होता है।

2–जीभ या स्वादेन्द्रियः– इससे किसी वस्तु को चखने से उसके स्वाद का ज्ञान होता हैं

3–नाक या ध्रणेन्द्रियः–यह किसी वस्तु की गन्ध का ज्ञान करती हैं।

4–कान या श्रवणेन्द्रियाः–कान हमें विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का ज्ञान कराते हैं।

5–आँखे या द्रश्येन्द्रियाँः–इनके द्वारा संसार की वस्तुओ का देखा जाता है।

11.4 त्वचा (Skin) या स्पर्शेन्द्रिय

स्पर्शेन्द्रिय का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है, जबकि शरीर की अन्य समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ स्थानीय होती है तथा एक निश्चित क्षेत्र मे कार्य करती है। स्पर्श के अतिरिक्त ताप, शीत, दाब, पीड़ा, वेदना,हल्का–भारी, सुखा,चिकना आदि संवेदनाओं का ज्ञान इसी के द्वारा होता है। समस्त शरीर की त्वचा में तन्त्रिका तन्तुओ के अन्तागों का एक जाल से फैला रहता है, जो भिन्न–भिन्न संवेदनाओं को ग्रहण कर मस्तिष्क में पहुँचाते है, इन्हे रिसेप्टर्स कहा जाता है।

किसी एक संवेदना के रिसेप्टर्स एक समान होते है। तथा विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के रिसेप्टर्स एक–दूसरे से भिन्न होते है और इनकी रचना में भी भिन्नता होती है, त्वचा में विधमान भिन्न प्रकार के रिसेप्टर्स एक–दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित रहते है। उचित प्रकार के उदद्ीपक को त्वचा पर लगाकर विशिष्ट वर्ग के रिसेप्टर्स की स्थिति को ज्ञात किया जाता है उस बिन्दु को उस विशेष संवेदना का बिन्दु कहा जाता हैं। त्वचा के जिन बिन्दुओ पर कुछ कड़े बाल के द्वारा स्पर्श कराने से स्पर्श की संवेदना का ज्ञाने होता है, उन्हे स्पर्श बिन्दु कहते है। इस तरह से जिन बिन्दुओ पर ताप, शीत या पीड़ा का अनुभव होता है उन क्षेत्रो को 'ताप बिन्दु','शीत बिन्दु','पीड़ा बिन्दु' कहा जाता है। किसी विशेष संवेदना के बिन्दु त्वचा के किसी भाग पर अधिक ओर कही कम रहते हैं।

यदि किसी बड़ी वस्तु जैसे पेन्सिल की नोंक से त्वचा पर दबाव डालते हुए स्पर्श कराया जाये तो वह दाब की संवेदना होती है, जिसके रिसेप्टर्स विशेष वर्ग के होते है। इस प्रकार के रिसेप्टर्स त्वचा के अतिरिक्त शरीर के अन्य भाग जैसे अस्थिआवरण (periosteum), टेन्डन्स के नीचे, अन्त्रयोजनी (mesentery) ग्रन्थियों मे भी पाये जाते है। इस संवेदना से हमें अपने शरीर या इसके विभिन्न भागों की स्थिति एवं उनकी गति का ज्ञान होता है, इस प्रकार के रिसेप्टर्स को लेमीलेटेड या पैसिनियल (Lameunated or Pacinian) कॉर्पल्स (कणिका) कहते है। इसी से शरीर में स्थिति और गति की जानकारी होती है। उदाहरण के तौर पर यदि आप एक व्यक्ति को दोनो आँखे बन्द कर उसके एक हाथ को टेबल में रख दे ओर उसे दुसरे हाथ को ठीक वैसी ही स्थिति में टेबल पर रखने को कहे, तो वह सहज ही पहले रखे गए हाथ के समीप दूसरे हाथ को ठीक वैसी ही स्थिति मे रख लेगा।

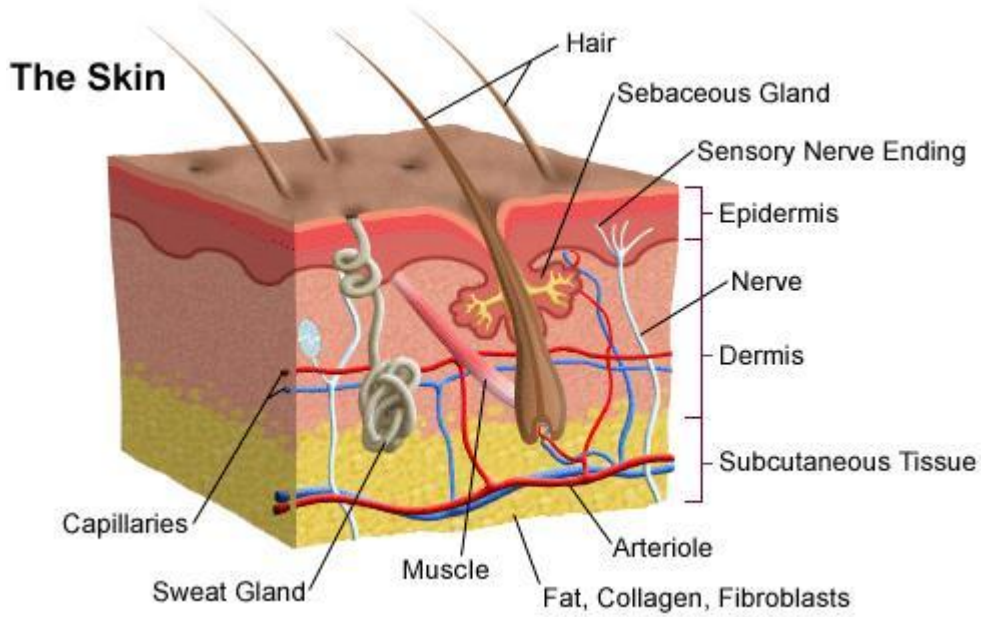

इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के लिए रिसेप्टर्स की विशिष्ट प्रकार के होते है, जैसे स्पर्श की संवेदना के लिए स्पर्श कणिकाएँ दाब के लिए पैसिनियन कणिका, कॉर्पसल्स और रफीनी कार्पसल्स ऑफ क्राज, ताप के लिए गॉल्ज – मेजोनी एवं रफीनी कार्पसल्स के तन्त्रिका अन्तांग, शीत के लिए बल्बस कार्पसल्स आफ कास के तन्त्रिका अन्ताग है जिनमे क्यूटेनियस तन्त्रिकाओ के छोरो का अंत होता हैं। पेशी स्पिन्डल गॉल्जी बाडी तथा अन्तांग प्लेटस आदि भी त्वचा संवेदनाओ के माध्यम हैं इनके अतिरिक्त पीड़ा एवं वेदना के आवेगों को ले जाने वाली तन्त्रिकाओं के अन्तांग स्वतन्त्र रहते है अर्थात ये त्वचा पर स्वतन्त्र रूप से पहले रहते है। स्पर्श संवेदन से सम्बन्धित कुछ तन्त्रिका अन्तांग वालो की जड़ो में भी लिपटे रहते है, जिनसे स्पर्श का ज्ञान होता है।

इस प्रकार विभिन्न वर्ग के रिसेप्टर भिन्न–भिन्न को ग्रहण करते हैं। किसी एक प्रकार के रिसेप्टर्स किसी एक ही संवेदना को ग्रहण कर सकते है, जो तन्त्रिका अन्तांग ताप के लिए हैं उनसे स्पर्श की संवेदना नहीं हो सकती हैं।

11.5 जीभ (Tongue) या स्वादेन्द्रिय

जीभ का मुख्य कार्य किसी वस्तु को चखकर उसके स्वाद को ज्ञात करना है क्योकि स्वाद के रिसेप्टर्स इसी में स्थित होते है। स्वाद के कुछ रिसेप्टर्स कोमल तालू, टॉक्सिल्स एवं कंठच्छद Epiglottis आदि की म्यूकस मेम्ब्रेन में भी होते हैं

जीभ एक अत्यधिक गतिशील अंग है, जो स्वाद संवेदन के अतिरिक्त चबाने, निगलने तथा बोलने जैसे महत्वपूर्ण कार्यो को भी संपादित करती है। जीभ मुख में स्थित म्युकस मेम्ब्रेन से पूर्णतः ढकी हुई ऐच्छिक पेशियों से निर्मित एक संवेदना है। जीभ की पेशिया अन्तरिक या बाहय दोनो प्रकार की होती है। अन्तरिक पेशियाँ जीभ के मुख्य अंग बनाती है तथा सभी प्रकार की नाजुक गतियाँ कराती है एवं बाहय पेशियाँ जीभ तथा हाँयड अस्थि (hyoid bone) निचले जबड़े और टेम्पोरल अस्थि के स्टारलाइड प्रर्वध के बीच में स्थित रहती है तथा चबाने एवं निगले में होने वाली गतियाँ (ऊपर–नीचे, आगे–पीछे) कराती है। जीभ के छोर या अग्रभाग (tip) का (body) एवं आधार तीन भाग होते हैं। इसका आधार हाँयाड अस्थि से जुड़ा होता है जबकि इसका छोर तथा कार्य स्वतन्त्र होते है। जीभ की ऊपर की सतह डॉर्सम कहलाती हैं जो स्ट्रैटिफाइड स्क्वेमस एपीथीलियम से स्तरित होती है। जब जीभ को ऊपर की ओर पलटा जाता है तो इसकी निचली सतह पर ऊपर की ओर मध्य रेखा की ओर आती हुई म्यूकस मेम्ब्रेन की कई तहे दिखाई देती है। जिसे जिहा बंध या फ्रेनुलम कहते है। यह जीभ के पोस्टीरियर भाग को मुख के तल से जोड़ती है। जीभ का एन्टीरियर भाग स्वतन्त्र रहता हैं जीभ को बाहर की ओर निकालने पर इसका छोर नुकीला हो जाता है, किन्तु जब यह मुख तल में तथा शिथिल रहती है, तो इसका छोर (अग्रभाग) गोल रहता है।

स्वस्थ अवस्था मे जीभ की म्यूकस मेम्ब्रेन तह गुलाबी रहती है। इसकी ऊपरी सतह मखमली दिखाई पड़ती है तथा बहुत से उभारो से आच्छाद्रित रहती है, जिन्हे अंकुरक या पैपिली कहते हैं। अंकुरक, जीभ की केवल ऊपरी सतह पर रहते है निचली सतह पर इनका पूर्णतः अभाव रहता है किन्तु यह तालू, गले एवं कंठच्छद की पोस्टीरियर सतह पर भी पाए जाते है। अंकुरको में रक्तकोशिकाएँ जाल के रूप में फैली रहती है। स्वाद–तन्त्रिकाओं–सातवीं, नौवी, दसवीं कपालीय तन्त्रिकाओं के तन्तुओ का अन्त इन्ही अंकुरको में होता हैं। इन अंकुरको को 'स्वाद कलिकाएँ' भी कहा जाता है। मानव में लगभग 10,000 स्वाद कलिकाएँ रहती है। वृद्धावस्था में इनकी संख्या में कमी आ जाती है।

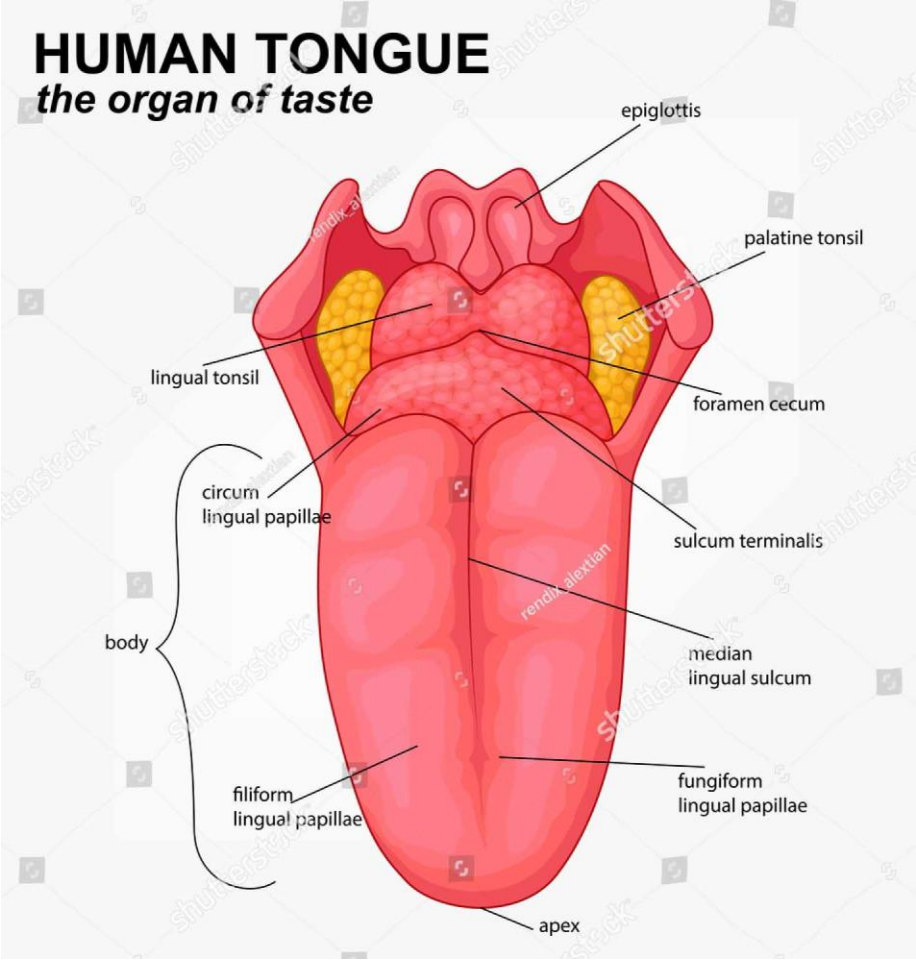

टंकरक (पैपिली) मुख्यतः निम्न तीन प्रकार के होते हैः–

1 – परिवृत्त या सरकमवैलेट पैपिली(Circumvallate papillae)

2 – छत्रिकाँकुर या फन्गिफॉर्म पैपिली(Fungiform papillae)

3 – सुत्रिकाँकुर या फिलिफॉर्म पैपिली(Filiform papillae)

1 . **परिवृत्त अंकुरक (Circumvallate papillae)**:– ये जीभ की ऊपर की सतह पर पीछे की ओर अर्थात् पोस्टीरियर दो तिहाई भाग के समीप अंग्रेजी के उलटे ''**v**'' के आकार में दो समान्तर पंक्तियों में 10 से 12 की संख्या में व्यवस्थित रहते है। प्रत्येक परिवृत्त या सरकमवैलेट पैपेली मे 90 से 250 स्वाद कलिकाएँ विद्यमान रहती है। ये काफी बड़े आकार के और आसानी से दिखाई देने वाले अंकुरक या (पैपिली) होते है।

2 छत्रिकाँकुर या फन्गिफॉर्म पैपिली(Fungiform papillae):–ये जीभ पर विशेषकर उसके छोर (अग्रभाग) तथा किनारो पर स्थित मशरूम के समान दिखाई देने वाले एकल– फैले हुए अंकुरक होते है इन प्रत्येक अंकुरक में 1 से 8 स्वाद कलिकाएँ विद्यमान रहती है।

3 सुत्रिकाँकुर या फिलिफॉर्म पैपिली(Filiform papillae):– ये जीभ अगले दो तिहाई भाग की सतह पर पाये जाने वाले धागे के समान नुकीले अंकुरक होते है। इनमें स्वाद कलिकाओं का अभाव रहता है। इनका कार्य स्वाद का ज्ञान कराने की अपेक्षा वस्तु को प्रतीत कराना है। स्वाद की अनुभूति परिवृत्त तथा छत्रिकांकुर से ही होती है।

❖ **स्वाद कलिकाएँ एवं स्वाद ग्रहण करने की क्रिया विधि**:– स्वाद कलिकाएँ ही स्वाद के विशिष्ट अन्तांग है। इनकी प्रत्येक कोशिका में स्वाद तन्त्रिका की शाखा आती है प्रत्येक स्वाद कलिका अंकुरक (पैपिली) की सतह पर सूक्ष्म रन्ध्र से खुलती है और उसकी सभी कोशिकाएँ जो इस स्थान पर सामूहिक रूप से पहुँचती है, उनका अन्त सुक्ष्म बाल के समान अनेको उभारो मे होता है खाघ पदार्थ इन रन्ध्रो में प्रवेश कर इन उभारो को अपने संस्पर्श से उदद्ीप्त करते है। इनमे उत्पन्न उदद्ीपन के आवेग स्वाद–संवेद की तन्त्रिकाओ (7,9 वा 10 कपालीय तन्त्रिकाएँ) के द्वारा मस्तिष्क के स्वाद केन्द्र मे संचारित होते है ओर वहाँ स्वाद का विश्लेषण होता है, तत्पश्चात ही हमें विभिन्न प्रकार के स्वादो का ज्ञान होता हैं।

प्रत्येक स्वाद कलिका अण्डाकार होती है। इनके अक्ष सतह पर सीधे एवं लम्बवत दिशा में स्थित रहते है। इनमें नीचे की ओर से रक्तवाहिकाएँ और तन्त्रिकाएँ भी प्रवेश करती है स्वाद कलिकाओं में कीमोरिसेप्टर या गस्टेटरी कोशिकाए तथा सहारा देने वाली सपोर्टिगं कोशिकाएँ रहती है।

मूलभूत स्वाद संवेदना (Basic taste sensations):–स्वाद की अनुभूतियाँ मुख्य रूप से मीठी, खट्टी, कड़वी एवं नमकीन चार प्रकार की होती है। मीठे एवं नमकीन स्वाद जीभ के छोर या अग्रभाग पर, खट्टा स्वाद जीभ के दोनों पार्श्वो में तथा कडुआ स्वाद जीभ के पिछले भाग (गले के पास) में पता लगता हैं। जीभ के मध्य भाग में विशेष ''स्वाद संवेदना'' नही रहती हैं। इस प्रकार प्रत्येक निश्चित विशेष स्वाद के लिए जीभ में निश्चित विशेष स्वाद कलिकाएँ रहती है, जो किसी विशेष प्रकार के उदद्ीपन से ही प्रभावित होती है।

स्वाद आवेगो का पथ (Pathways for taste impulses):–

स्वाद संवेदनाओ के आवेग जीभ के अगले दो तिहाई भाग में फेशियल तन्त्रिका की शाखा द्वारा,

पिछले एक तिहाई भाग से ग्लासोफेरन्जियल तन्त्रिका द्वारा तथा तालू एवं ग्रसनी से वेगस तन्त्रिका द्वारा मस्तिष्क तक को संचारित होते है। उपयूर्क्त तीनों कपालीय तन्त्रिकाओं के स्वाद तन्तु मेडयूला ऑब्लांगेटा के न्यूक्लियस सोलिटेरियम में समाप्त होते हैं। यहाँ से अक्षतन्तु थैलेमस की ओर निकलते है तथा फिर प्रमस्तिस्कीय कॉर्टेक्स के पैरारटल लोब में स्थित ''स्वाद केन्द्र'' मे पहुँच जाते है।

11.6 नाक (Nose) घ्राणेन्द्रिय

नाक का कार्य किसी वस्तु या पदार्थ की गन्ध का ज्ञान करना या सूँघना है। गन्ध के ज्ञान या सूँघने के लिए पदार्थ या वस्तु का गैस या वाष्प के रूप में होना आवश्यक है नाक मे पहुँचकर वाष्प या गैस स्थानीय स्राव में घुल जाता है और घ्राण क्षेत्र की कोशिकाओं उद्दीप्त करता है। यहाँ से उद्दीपन के आवेग घ्राण में और फिर घ्राण पथ से होकर मस्तिक के घ्राण बल्ब मे और फिर घ्राण पथ से होकर मस्तिक के घ्राण क्षेत्र मे पहुँचते है जहाँ पर आवेगो का विश्लेषण होकर गन्ध का ज्ञान होता है।

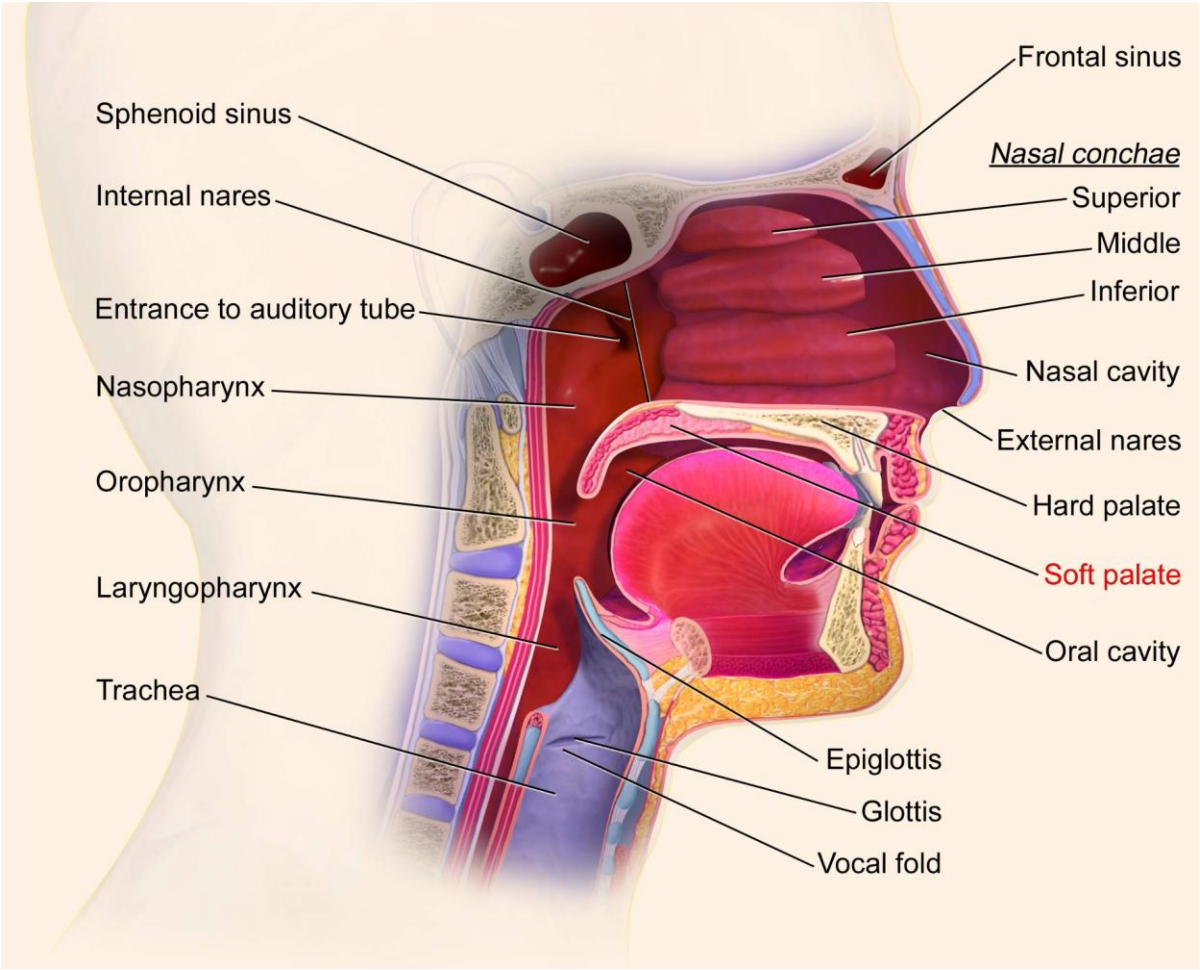

नाक या नासिका की संरचना एवं घ्राण या ग्रन्थ संवेदन(structure of nose and sense of smell):– नेजल केविटी की श्लेष्मा, तीन छोटी अस्थियों द्वारा कई कक्षों में बह जाती है, जो नाक की बाहरी भित्ति से आरम्भ होते है। तीनो अस्थियों के कारण इस स्थान पर तीन छोटे टीलो के समान उभार बन जाते है। सम्पूर्ण क्षेत्र पर नेसल म्यूकस मेम्ब्रेन बिछी रहती है, जो कॉल्यूमनर सिलिएटेड एपीथीलियम से बनी रहती है, इसमें गॉस्टेल कोशिकाएँ भी रहती है।इन कोशिकाओं के स्राव से नाक की म्यूकस मेम्ब्रेन तह चिकनी तथा चिपचिपी सी रहती है।

नेजल कोंचा से नासिका में ऊर्ध्व, मध्य तथा निम्न क्षैतिज खाँचे बन जाते है। अस्थि निर्मित तीनों खाँचे नासिका के प्रत्येक आधे भाग को अपूर्ण रूप से चार कक्षों में विभाजित कर देती है, जो सामने से पीछे की ओर जाते है, तथा एक के ऊपर एक स्थित रहते है। प्रश्वसित वायु, नीचे के तीन कक्षों से होकर जाती हैं। घ्राण के अंग, सबसे ऊपर वाले कक्ष की घ्राण श्लेष्मिक कला में स्थित होते हैं। घ्राण कोशिकाओं के अन्तागं इसी मेम्ब्रेन में फैले रहते है। नासा गुहा का सबसे ऊपर वाला कक्ष एक अंधगुहा या पाकेट के समान है, जिसका वही अंत हो जाता है। घ्राण उपकला घ्राण के लिए संवेदशील होती है, जो नाक की छत के समीप होती है, इसमें सहारा देने वाली कोशिकाएँ, आधारी कोशिकाएँ एवं द्रिधुव्रीय तन्त्रिका कोशिकाएँ ये तीन तरह की कोशिका होती है। इनके अतिरिक्त एक निचले स्तर में कुछ बामेन्स भी रहती है। इन ग्रन्थियो का स्राव समस्त सतह को तह रखता है तथा युक्त वाष्पो को घोलने का कार्य करता है। सहारा देने वाली कोशिकाओं का आधार ऊपर की ओर रहता है ओर एक सतही मेम्ब्रेन बनता है जिसके बीच के रिक्त स्थानो में ये घ्राण कोशिकाओ के बाल के समान प्रबर्न्ध बाहर की ओर निकले रहते हैं।

वस्तुतः द्विध्रुवीय तन्त्रिका कोशिकाए ही घ्राण की रिसेप्टर कोशिकाए होती है। मानव में ये 25 मिलियन से अधिक होती है तथा प्रत्येक सहारा देने वाली कोशिकाए से घिरी रहती है। प्रत्येक रिसेप्टर कोशिका में एक गोल न्यूक्लियस तथा एक लम्बे धागो के रूप में प्रोटोप्लाज्म रहता है ये कोशिकाए म्यूकस मेम्ब्रेन मे धसी रहती है प्रत्येक कोशिका के दो प्रवर्ध दोनो ध्रुवो पर से निकले रहते है। कोशिकाए लम्बे अक्ष मे एक दूसरे से सटी हुई सतह से लम्बबध्द दिशा मे खडी सी स्थित रहती है। इन कोशिकाएँ के पार्श्वतन्तु छोटे आकार के अभिवाही प्रवर्ध होते है जो एपिथीलियम के बीच रिक्त स्थानो से निकले रहते है ऊपर ये थोडे प्रसरित होकर आल्फेक्टरी राइस बनाते है तथा विस्फरित घ्राण स्फोटिका में समाप्त हो जाते है। प्रत्येक स्फोटिका से 6–20 लम्बे बाल के समान प्रवर्ध निकले रहते है जो सतही एपीथीलियम को आच्छादित किए रहते है। उन्हे घ्राण–रोम–कोशिका कहते है। स्फोटिका एवं इसके प्रवर्ध ही घ्राण के अन्तागं होते है। रिसेप्टर कोशिकाओं के अक्षतन्तु जो घ्राण तन्त्रिका का निर्माण करते है। दूसरे सिरे से निकलकर ऊपर उठते है और इथमॉइड अस्थि की छिद्रित प्लेट से होकर गुजरते है और घ्राण–बल्बस मे पहुँचते हैं। घ्राण बल्बस भूरे द्रव्य की विशेष संरचनाए है जो मस्तिष्क के घ्राण–क्षेत्र के स्तम्भकार विस्तार होते है। घ्राण–बल्ब के अन्दर रिसेप्टर

कोशिकाओ के टर्मिनल एक्यसोन्स (अक्षु तन्तुओ के अन्तांग) गुच्छित कोशिकाओ, ग्रैन्यूल कोशिकाओ एवं माइट्रल कोशिकाओ के डेण्ड्राइटस (पार्श्वतन्तुओ) के साथ तन्तुमिलन होता है। जिससे एक विशिष्ट गोलाकार अंग घ्राण गुच्छिका या आल्फेक्टरी ग्लोमेरूलाइ बनता है। प्रत्येक ग्लोमेरूलस रिसेप्टर कोशिका की लगभग 26,000 एक्यसान्स से आवेगो को प्राप्त करता है। माइट्रल एवं गुच्छित कोशिकाओ के अक्षतन्तु (एक्यसोन्स) ही घ्राण–पथ बनाते है जो पीछे जाकर प्रमस्तिस्कीय कॉर्टेक्स के टेम्पोरल लोब मे घ्राण केन्द्र में पहुँचता है जहाँ पर आवेगो का विश्लेषण होता है और हमे विशेष गन्ध का ज्ञान होता है। सूँघने की शक्ति के लोप होने को घ्राणशक्ति का नाश (Anosmia) कहते है।

11.7 कान (Ear) श्रवणेन्द्रियाँ

कान या कर्ण शरीर का एक आवश्यक अंग है जिसका कार्य सुनना एवं शरीर का सन्तुलन बनाये रखना है तथा इसी से ध्वनि की संता का ज्ञान होता है।

कान की संरचना अत्यन्न जटिल होती है अतः अध्ययन की दृष्टि से इसे निम्नलिखित तीन प्रमुख भागो में विभाजित किया जाता है।

1– बाह्म कर्ण (External Ear)

2– मध्य कर्ण (Middle Ear)

3– अंतः कर्ण (Internal Ear)

1– बाह्म कर्ण (External Ear):–बाह्म कर्ण के दो भाग होते है बाहरी कर्ण या कर्णपाली तथा बाहय कर्ण कुहर।

कर्णपाली कान का सिर के पार्श्व से बाहर को निकला रहने वाला भाग होता है जो लचीले फाइब्राकार्टिलेज से निर्मित तथा त्वचा से ढँका रहता है। यह सिर के दोनो ओर स्थित रहता है। कर्णपाली टेढा–मेढा और अनियमित आकार का होता है इसका बाहरी किनारा हेलिक्स कहलाता है। हेलिक्स से अन्दर की ओर के अर्द्धवृत्ताकार उभार को एन्टहेलिक्स कहा जाता है ऊपर के भाग में स्थित उथले गर्त को ट्राइएन्गूलर फोसा तथा बाहय कर्ण कुहर से सटे हुए गहरे भाग को कोन्चा कहते है। एवं कुहर के प्रवेश स्थल के सामने स्थित छोटे से प्रोजेक्सन को ट्रेगस कहते है। निचला लटका हुआ भाग कोमल होता है और वसा–संयोजक ऊतक से निर्मित होता है तथा इसमे रक्त वाहिनियो की अपूर्ति बहुत अधिक रहती है। कर्णपाली कान की रक्षा करती है तथा ध्वनि से उत्पन्न तरंगों को एकत्रित करके आगे कान के अन्दर भेजने मे सहायता करती है।

बाहयकर्ण कुहर बाहर कर्णपाली से भीतर टिम्पेनिक मेम्ब्रेन या ईयर ड्रम (कान का पर्दा) तक जाने वाली

अंग्रेजी के "S" अक्षर के समान घुमावदार, लगभग 2.5 सेमी० (1") लम्बी सँकरी नली होती है। टिम्पैनिक मेम्ब्रेन द्वारा यह मध्यकर्ण से अलग रहती है। इसका बाहरी एक तिहाई भाग कार्टिलेस का बना होता है तथा शेष भीतरी दो तिहाई भाग एक नली के रूप में टेम्पोरल अस्थि मे चला जाता है जो अस्थि निर्मित होता है समस्त बहय कर्ण कुहर रोमिल त्वचा से अस्तरित होता है जो कर्णपाली को आच्छादित करने वाली त्वचा के सातव्य में ही रहता है। कार्टिलेजिन भाग की त्वचा मे बहुत सी सीबेसियस एवं सेरयूमिनस ग्रन्थियाँ होती है जो क्रमशः सीवम (तैलीय स्राव) एवं सेरयूमेन (कान का मैल या ईयर वैक्स) स्रावित करती है। ईयर वैक्स से वालो से तथा कुहर के घुमावदार होने से बाहरी वस्तुएँ कान के भीतर नहीं जा पाते है।

2– मध्य कर्ण (Middle Ear):– मध्यकर्ण, कर्णपटह एवं अंतः कर्ण के बीच स्थित एक छोटा कक्ष है इसमें कर्णपटही गुहा (Tympanic cavity) एवं श्रवणीय अस्थिकाओं का समावेश होता है।

कर्णपटही गुहा टेम्पोरल अस्थि के अश्माभ भाग में स्थित संकरा असमाकृति का वायु पूरित एक अवकाश या स्थान है। इसमें अग्र पश्च, मध्यवर्ती एवं पार्श्वीय 4 भित्तियाँ तथा छत और फर्श होता है। जो सभी म्यूकस मेम्ब्रेन से अस्तरित रहते है। टेम्पोरल अस्थि की पतली प्लेटे छत एवं फर्श बनाती है जो टिम्पेनिक गुहा को ऊपर से मिडिल क्रेनियल फोसा से तथा नीचे से ग्रीवा की वाहिकाओं से पृथक करती है। पश्चभित्ति में एक द्वार होता है जो ''कर्णमूल वायु कोशिकाओं'' में खुलता है। इसमें अस्थि का एक छोटा–सा कोन आकार का पिण्ड भी होता है। जो स्टैपीडियस पेशी से घिरा रहता है। इस पेशी का टेन्डन द्वार (छिद्र) से गुजरकर पिरामिड के शिखर पर स्टैपीस से जुड़ता है। पार्श्वीय भित्ति टिम्पेनिक मेम्ब्रेन से बनती हैं मध्यवर्ती भित्ति टेम्पोरल अस्थि की एक पतली परत होती है जिसमे दूसरी ओर अंतःकर्ण होता है इसमें दो छिद्र होते है, जो मेम्ब्रेन से ढके रहते है। पहला छिद्र अण्डाकार होता है ये फेनेस्ट्रा ओवेलिस कहते है जो अंतःकर्ण के प्रघाण मे खुलता है तथा दूसरा छिद्र गोलाकार होता है जिसे फनेस्ट्रा रोटनडम कहते है। जो मध्य कर्ण की म्यूकस मेम्ब्रेन से बन्द रहता है तथा इसका सम्बन्ध अंतःकर्ण की कॉक्लिया से रहता है इसमे कर्णपटह के बिल्कुल समीप ही एक छिद्र होता है जो पूस्टेचियन नली का मुखद्वार होता है। यह नली मध्यकर्ण की गुहा एवं नासाग्रसनी के बीच सम्बन्ध बनाती है। गले के संक्रमण प्रायः इसी नली के द्वारा मध्य कान मे पहुँचते है तथा कर्णमूल कोशिकाओ मे पहुँचकर विद्रथियाँ उत्पन्न कर सकते है।

श्रवणीय अस्थिकाएँ auditory वेपबसमेद्ध छोटी–छोटी तीन अस्थियाँ (मैलीयस, इनकस या एनवील तथा स्टैपीस) है जो श्रंखलाबद्ध तरह से कर्णपटह (Tympanic membrane) से लेकर मध्यवर्ती भित्ति पर स्थित अण्डाकार छिद्र (fenestra ovalis) तक स्थित रहती है। प्रत्येक अस्थि का छोर दूसरी अस्थि के सिरे से संधिबद्ध रहता है। प्रथम अस्थि का सिरा टिम्पेनिक मेम्ब्रेन से सम्बन्धित रहता है और अन्तिम अस्थि का छोर

फेनेस्ट्रा ओवेलिस में सटा रहता हैं। श्रृंखलाबद्ध होने के कारण ध्वनि–तरंगों से उत्पन्न प्रकम्पन (vibration) टिम्पेनिक मेम्ब्रेन से इन तीनो अस्थिकाओं (Auditory ossicles) से होता है हुआ इन्ही कें द्वारा अनतकर्ण: तक पहुँच जाता है तथा बाहयकर्ण तथा अन्तःकर्ण से सम्बन्ध स्थापित रहता है।

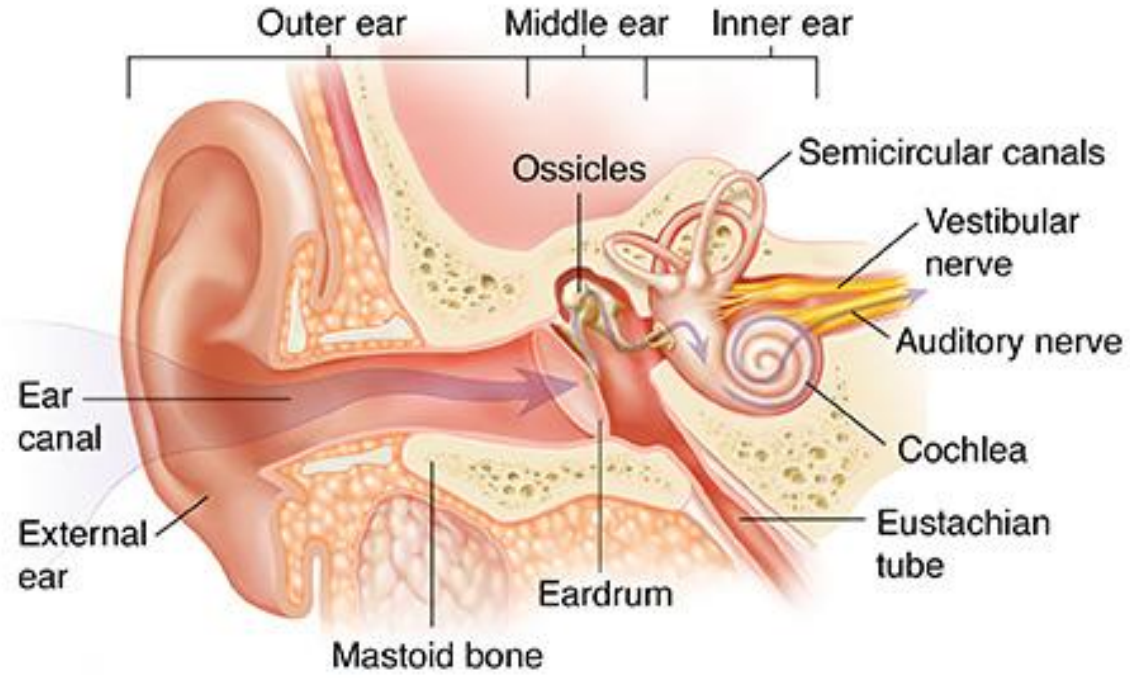

(3) अंतःकर्ण (Internal Ear) – यह टेम्पोरल अस्थि के अशमाभ भाग (Petrous portion) मे स्थित श्रवणेन्द्रिय का प्रमुख अंग है इसी मे सुनने तथा सन्तुलन के अंग अवस्थित होते है। अंतःकर्ण की बनावट टेढी–मेढी एवं जटिल है जो कुछ–कुछ घोंधे (snail) के सदृश्य होती है । इसमे अस्थिल लैबिरिन्थ (bony labyrinth) तथा कलामय लैबिरिन्थ (membranous labyrinth) दो मुख्य रचनायेँ होती है जो एक दूसरे के भीतर रहती है।

अस्थिल लैबिरिन्थ टेम्पोरल अस्थि के अश्माभ भाग में स्थित टेढी–मेढी अनियमित आकार की नलिकाओं की एक श्रखला (series of channels) है जो परिलसिका (perilymph) नामक तरल से भरा होता है।

कलामय लैबिरिन्थ में स्थित रहता है। इसमें यूट्रिक्ल (utricle), सैक्यूल (saccule), अर्द्धवृत्ताकार वहिकाएँ (semicircular ducts) एवं कैक्लियर वहिका (cochlear duct) का समावेश रहता है। इन समस्त रचनाओं में अंतःकर्णोद(endolymph) तरल भरा रहता है तथा सुनने एवं सन्तुलन के समस्त सवेदी रिसेप्टर्स विद्यमान रहते है। अर्द्धवृत्ताकार वहिकाएँ अर्द्धवृत्ताकार नलिकाओं के भीतर स्थित रहती हैं अस्थिल नलिकाओं एवं वहिकाओं के बीच के स्थान में परिलसिका (perilymph) तरल भरा रहता है।

चूँकि कलामय लैबिरिन्थ अस्थिल लैबिरिन्ध के भीतर स्थित रहता है इसीलिए इनकी आकृति समान रहती हैं। इनका वर्णन अस्थिल लैबिरिन्थ में ही किया गया है।

अस्थिल लैबिरिन्थ (bony labyrinth) में निम्न तीन रचनाओं का समावेश रहता है :–

(1) प्रघाण या वेस्टिब्यूल (Vestibule)

(2) तीन अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ (3 Semicircular calls)

(3) कर्णावर्त या कॉक्लिया (Cochlea)

(1) प्रघाण या वेस्टिब्यूल (Vestibule) – यह लैबिरिन्थ का मध्य कक्ष है। इसके सामने कॉक्लया और पीछे अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ होती है। वेस्टिब्यूल की बाहरी भिाति के अण्डाकार छिद्र में मध्य कर्ण का स्टैपीज अस्थिका की प्लेट लगी रहती है। इसी के द्वारा वेस्टिब्यूल का सीधा सम्पर्क मध्यकर्ण से रहता है। मध्यकर्ण और वेस्टिब्यूल के मध्य में केवल इस खिडकी के समान छिद्र में लगा हुआ झिल्ली का पर्दा रहता है। वेस्टिब्यूल के भीतर अन्तःकर्णोद से भरी कलामय लैबिरिन्थ की दो थैली होती है। जिन्हे यूट्रिकल तथा सैक्यूल कहा जाता है। प्रत्येक थैली में संवेदी पैच (Sensory patch) विद्यमान रहता है जिसे मक्यूल कहा जाता है।

(2) अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ (Semicircular cells) :– वेस्टिब्यूल के ऊपर (superior) पीछे (posterior) तथा पार्श्व में ये तीन अस्थिल अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ होती है जो वेस्टिब्यूल में संलग्न रहती है। वे तीनों नलियाँ एक दूसरे के लम्बवत् होती है। इनके भीतर कलामय वाहिकाएँ रहती है कलामय वाहिकाओं के एवं अस्थिल नलिकाओं के मध्य परिलसिका तरल भरा रहता है तथा कलामय वाहिकाओं के भीतर अंतःकर्णोद तरल भरा रहता हैं प्रत्येक वााहिका का छोर कुछ फूला–हुआ होता है जिसे एम्पूला (Ampulla) कहते है इसमें संवेदी रिसेप्टर क्रिस्टा एम्पूलैरिस (Crista ampullaris) रहता है। इसमे कुपोला नामक रोम कोशिकाएँ (hair cells) भी रहती है। यहीं पर आठवीं कपालीय तन्त्रिका की शाखा वेरिटस्यूलर तन्त्रिका (Vestibular nerve) आती है।

यूट्रिकल सैक्यूल एवं अर्द्धवृत्ताकार वहिकाओं तीनो का सम्बन्ध शरीर की साम्य स्थिति (equilibrium) को बनाय रखने से है न कि सुनने की क्रिया से।

कर्णावर्त या कौक्लिया (Cochlea) :-

कॉक्लिया देखने में घोघे के कवच के समान दिखाई देती है जो अपने ही पर लिपटी हुई सर्पील आकार की एक नलिका है। यह मध्य में स्थित शंक्वाकार अस्थिल अक्ष स्तम्भ जिसे माडियोलस कहते है के चारो ओर दो और तीन चौथाई बार कुण्डलित होती है। कॉक्लिया की नलिका फेनेस्ट्रा ओवेलिस से आरम्भ होकर फेनेस्ट्रा

रोटण्डा तक फैली रहती है।

कलामय कॉक्लिया वाहिका वेस्टिव्यूलर एवं बेसिलर नामक दो मेम्ब्रेन द्वारा लम्बवत् रूप में तीन प्रथक कुण्डलित (सर्पिल) वाहिकाओं में विभक्त हो जाती है। जो निम्नलिखित है :–

(1) स्कैला वेस्टिब्यूलाइ (Scala Vestilauli)

(2) स्कैला मीडिया (Scala media) या कौम्लियर डक्ट (Cochlear duct)

(3) स्कैला टिम्पेनाइ (Scala tympani)

स्कैला मीडीया में अंतःकर्णाद (endolymph) तरल तथा स्कैला वेस्टिव्यूलाइ व स्कैला टिम्पेनाई में परिलसिका(perilymph) भरा रहता है। स्कैला मीडिया (कौक्लियर डक्ट) में स्पाइरल अंग (spiral Organ) भी विद्यमान रहते है जो श्रवण अंग कहलाते है।

श्रवण अंग (organ of corti) सहारा देने वाली कोशिकाओं एवं रोम कोशिकाओं (hair cells) से मिलकर बना श्रवण अन्तांग (end organ of hearing) है। रोम कोशिकाएँ कुण्डली की सम्पूर्ण लम्बाई के साथ– साथ पंक्तियों में व्यवस्थित रहती है।

मानव में लगभग 3500 आन्तरिक रोम कोशिकाएँ तथा 20000 बाहरी रोम कोशिकाएँ होती है। प्रत्येक बाहरी रोम कोशिका में 80 से 100 तथा प्रत्येक आन्तरिक रोम कोशिका मे 40 से 60 संवेदी रोम (sensory hair) या स्टीरियो सिलिया (stereocilia) रहते है प्रत्येक रोम कोशिका में रोम पक्तियों में व्यवस्थित रहते है जो अंग्रेजी के अक्षर "w" या "U" बनाते है। रोमों के छोर आपस में मिलकर एक छिद्र युक्त झिल्ली बनाते है जिसे टेक्टोरियल मेम्ब्रेन (tectorial membrane) कहते है जो श्रवण अंग के ऊपर जमी रहती है।

कान की तन्त्रिका (**Nerves of the Ear**) :– कान में आठवी कपालीय तन्त्रिका की आपूर्ति होती है। यह दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। एक वैस्टिब्यूल में जाती है और दूसरी कॉक्लिया में। वेस्टिब्यूल में जाने वाली शाखा वेस्टिब्यूल तन्त्रिका कहलती है इसका सम्बन्ध शरीर की साम्यस्थिति बनाए रखने की क्रिया से है। उदीपन मिलने पर यह आवेगो को अनुमस्तिष्क में संचारित करती है।

दूसरी तन्त्रिका जो कौक्लिया में जाती है उसे कौक्लियर तन्त्रिका कहते है। यह अस्थिल अक्ष स्तम्भ में प्रवेश कर श्रवण अंग के समीप पहुँचकर इसकी अनेक शाखाएँ चारो ओर फैल जाती है। इस तन्त्रिका द्वारा ले जाये जाने वाले आवेग प्रमस्तिष्क के टेम्पोरल लोब मे स्थित श्रवण केन्द्र पहुँचते है। जहाँ ध्वनि का विश्लेष्ण होता है और हमें विशिष्ट ध्वनि की संवेदना का ज्ञान होता है।

श्रवण – क्रिया (**Mechanism of Hearing**) :– ध्वनि के कारण वायु में तरंगे अथवा प्रकम्पन्न उत्पन्न होते

है जो लगभग 332 मीटर प्रति सेकण्ड की गति से संचारित होते है। किसी स्वर का सुनना का सुनना तभी सम्भव होता है जबकि उसमें वायु में तरंगे उत्पन्न करने की क्षमता हो और फिर वायु में उत्पन्न ये तरंगे कान से टकराएँ। ध्वनि का प्रकार उसका तारत्व उसकी तीव्रता अथवा मन्दता, उसकी मधुरता आदि वायु तरंगो की आवृत्ति, आकार, तथा आकृति पर निर्भर करती है।

सर्वप्रथम वाह्यकर्ण की कर्णपाली ध्वनि तंरगो को संग्रहित करती है और उन्हे बाह्य कर्ण कुहर के द्वारा कान में प्रेषित करती है। तत्पश्चात् ध्वनि तंरगो कर्ण पट्ट से टकराकर उसी प्रकार का प्रकम्पन उत्पन्न करती है। कर्ण पटह के प्रकम्पन अस्थिकाओं में गति होने से मध्यकर्ण से होकर संचारित हो जाते है। कर्णपटह का प्रकम्पन उसी से सटी मैलियस अस्थिका द्वारा क्रमशः इन्कस तथा स्टैपीज अस्थिकाओं में होता हुआ अण्डाकार छिद्रवाली खिड़की पर लगी मेम्ब्रेन में पहुँच जाता है। प्रकम्पन के यहाँ तक पहुँच जाने पर वेस्टिब्यूल मे स्थित परिलसिका तरल में तरंगे उत्पन्न हो जाती है। स्कैला वेस्टिन्यूलाइ एवं स्कैला टिम्पेनाइ में स्थित परिलसिका वेस्टिब्यूल के परिलसीका से सम्बन्धित रहता है, फलतः वह भी तरंगित हो उठता है। स्कैला वेस्टिब्यूलाइ एवं स्कैला टिम्पेनाइ की तरंगे स्कैला मीडिया के एण्डोलिम्फ को भी तंरगित कर देती है, जिसके फलस्वरूप बेसिलर मेम्ब्रेन में प्रकम्प उत्पन्न होता है तथा श्रवण अंग की रोम कोश्किाओं में श्रवण रिसेप्टर्स में उददीपन होता है। इससे उत्पन्न तन्त्रिका आवेग आठवीं कपालीय तन्त्रिका की कॉक्लियर शाखा के द्वारा प्रमस्तिक के टेम्पोरल लोब में स्थित श्रवण केन्द्र मे पहुँचे है। यहाँ ध्वनि का विश्लेषण होता है ओर विशिष्ट ध्वनि का बोध होता है।

शरीर की साम्यस्थिति एवं सन्तुलन (Equilibrium and balance of the body):– शरीर को साम्यस्थिति एवं सन्तुलन मे बनाए रखने का कार्य अतः कर्ण के वेस्टिब्यूलर उपकरण, यूट्रिकल, सैक्यूल एवं अर्द्रवृत्ताकार नलिकाओ द्वारा सम्पादित होता है। सिर की स्थिति मे कैसा भी परिवर्तन होता है, तो पेरिलिम्फ एवं एण्डोलिम्फ तरल हिल जाता है, जिससे रोम कोशिकाए मुड जाती है तथा यूट्रिकल, सैक्यूल एवं एम्यूलाओं मे स्थित सवंदी तन्त्रिका अन्तांगं उददीपत हो उठते है। इससे उत्पन्न तन्त्रिका आवेगों को वेस्टिब्यूलर तन्त्रिका (आठवीं) कपालिय तन्त्रिका की शाखा के तन्तु मस्तिष्क के सेरीबेलम को संचारिंत कर देते है। मस्तिष्क के आदेश से उन सभी पेशियो मे तदनुकूल गति और क्रिया होती है जिससे शरीर की साम्य स्थिति बनी रहती है।

11.8 आँखे (Eyes) या दृश्येन्द्रियाँ

आँखे या नेत्रो के द्वारा हमे वस्तु का ''दृस्टिज्ञान'' होता है। दृष्टि वह संवेदन है जिस पर मनुष्य सर्वाधिक निर्भर रहता है। दृष्टि एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें प्रकाश प्रत्यक्ष ज्ञान सन्निहित है। आँखे अत्यन्त जटिल ज्ञानेन्द्रिया जो दायी–बायी दोनो ओर एक–एक नेत्रकोटरीय गुहा में स्थित रहते है। ये लगभग गोलाकार होते है तथा इनका व्यास लगभग 1 इंच (2.5 सेमी) होता है तथा इन्हे नेत्रगोलक कहा जाता है।

नेत्रकोटरीय गुहा शंक्वाकार होती है इसके सबसे गहरे भाग मे एक गोल छिद्र (फोरामेन) होता है। जिसमे से होकर द्वितीय कपालीय तन्त्रिका का मार्ग बनता है। इस गुहा की छत फ्रन्टल अस्थि से फर्स मैक्जिला से लेटरल भित्तिया कपोलास्थि तथा स्फीनाइड अस्थि से बनती है और मीडियल भित्ति लैक्राइमल, मैम्जिला, इथमॉइड एवं स्फीनॉइड अस्थिया मिलकर बनाती हैं। इसी गुहा में नेत्र गोलक वसीय ऊतको मे अन्तः स्थापित एवं सुरक्षित रहता है।

आँख की संरचना (Structure of the eye):– नेत्रगोलक की भित्ति का निमार्ण ऊपको की निम्न तीन परतो से मिलकर होता है:–

1– बाह्य तन्तुमयी परत (Outer fibrous layer)

2– अभिमध्य वाहिकामयी परत (Middle vaseular layer)

3– आन्तरिक तन्त्रिकामयी परत (Inner nervous layer)

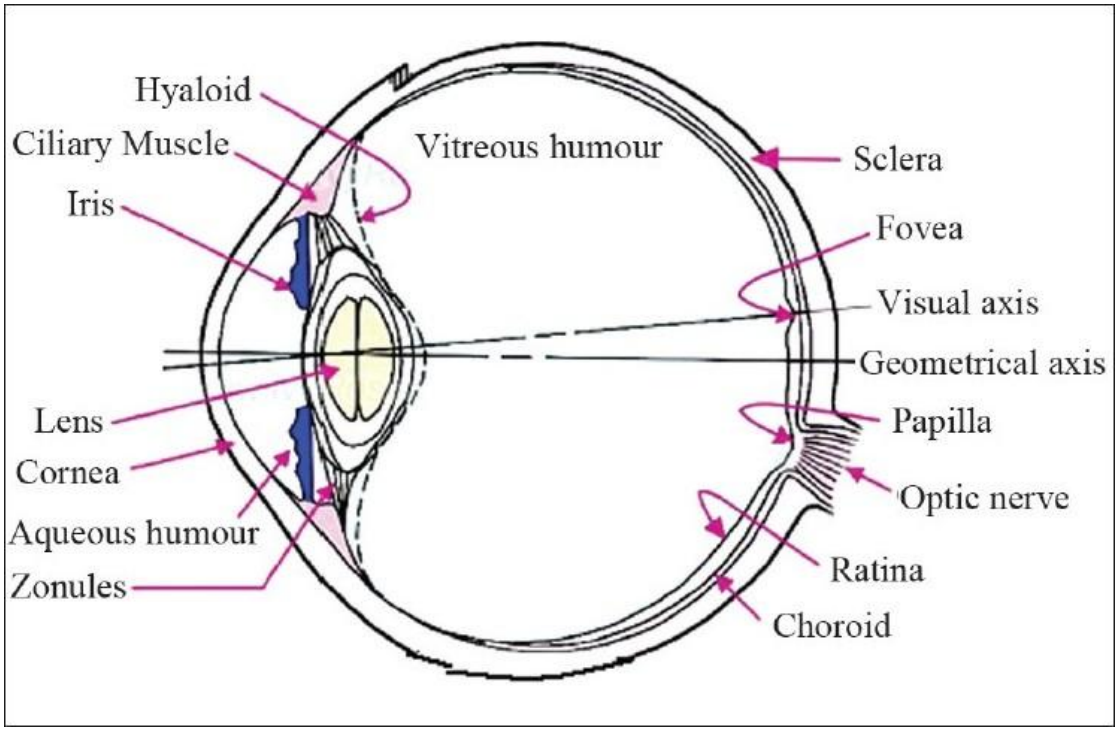

1– बाहृय तन्तुमयी परत (Outer fibrous layer):– नेत्रगोलक मे यह सबसे बाहर की सहारा देने वाली परत है, जो मुख्यतः दृढ़, तन्तुमय संयोजी ऊतक की मोटी मेम्ब्रेन से निर्मित होती है। इसमें श्वेत परत या स्क्लेरा एवं स्वच्छ मण्डल या कार्निया का समावेश रहता है।

स्केलरा नेत्रगोलक के पिछले भाग की अपारदर्शी दृड़ ऊतको की परत होती है और आँख का श्वेत भाग बनाती है। कार्निया बाहृय तन्तुमयी परत का अग्र पारदर्शी भाग होता है, कार्निया मे रक्तवाहिकाओ का पूर्णतया अभाव रहता है। प्रकाश किरणे कानिया से होकर रेटिना पर पहुँचती है स्केलरा मे एक छोटा सा छिद्र होता है जिसमे से होकर आप्टिक तन्त्रिका के तन्तु नेत्रगोलक से मस्तिस्क मे पहुँचते है।

2– अभिमध्य वाहिकामयी परत (Middle vascular layer):– यह नेत्रगोलक की बीच की परत होती है, जिसमे अनेको रक्त वाहिकाए रहती है इसमे रंजितपटल या कोराइड, रोमक पिण्ड या सिलियरी बाडी तथा उपतारा या आइरिय का समावेश होता है।

इस परत का रंग पिरामेन्टों के कारण गहरे रंग का होता है जो आँख के भीतरी कक्ष को जिसमे प्रकाश की किरणे रेटिना पर प्रतिबिम्ब बनाती है, पूर्णतः अन्धकारमय बनाने मे सहायक होती है। वाहिकामयी परत का पिछला 2/3 भाग एक पतली मेम्ब्रेन का बना होता है, जिसे कोराइड कहते है, स्केलरा एवं रेटिना के बीच रक्त वाहिकाओ एवं संयोजी ऊतक की एक परत होती है। यह गहरे–भूरे रंग का होता है तथा रेटिना की रक्त पूर्ति करती है।

वाहिकामयी परत आगे की ओर के भाग मे मोटी होकर सिलियरी बाडी बनाती है, जिसमे पेशीय एवं ग्रन्थिल ऊतक रहते है। सिलियरी पेशियाँ लेन्स की आकृति नियन्त्रित करती है तथा आवश्यकतानुसार दूर या समीप की प्रकाश की किरणो को केन्द्रित करने मे सहायता करती है। इन्हे समायोजन की पेशियाँ कहते है। सिलियरी ग्रन्थिया पानी जैसा द्रव स्रावित करती है जिसे ''नेत्रोद'' या एक्वीयस हयूमर कहते है, यह आँख मे लेन्स तथा कार्निया के बीच के स्थान में भरा रहता है तथा आइरिस एवं कार्निया के बीच के कोण मे स्थित छोटे–छोटे छिद्रो के माध्यम से शिराओ मे जाता है।

कोराइड का अग्र प्रसारण एक पतली पेशीय परत के रूप मे होता है जिसे आइरिस कहते है यह नेत्रगोलक का रंगीन भाग होता है। जिसे कार्निया से होकर देखा जा सकता है। यह कार्निया और लेन्स के मध्य स्थित रहता है तथा इस स्थान को एन्टीरियर एवं पोस्टीरियर चैम्बर्स मे विभाजित करता है। कार्निया एवं आइरिस के बीच का स्थान एन्टीरियर चैम्बर तथा आइरिस एवं लेन्स के बीच का स्थान पोस्टीरियर चैम्बर होता है। आइरिस मे वृत्ताकार एवं विकीर्ण तन्तुओ के रूप मे पेशीय ऊतक रहते है, वृत्ताकार तन्तु पुतली को संकुचित करते है और विकीर्ण तन्तु इसे विस्फारित करते है।

आइरिस के मध्य मे एक गोलाकार छिद्र रहता है, जिसे पुतली या प्यूपिल कहा जाता है इसमे आप अपने परावर्तित प्रतिबिम्ब को एक छोटी डाल के समान देखते है। पुतली का परिमाण प्रकाश की तीव्रता के अनुसार घटता–बढ़ता रहता है तेज रोशनी को आँख मे प्रविष्ट होने से रोकने के लिए तीव्र प्रकाश के प्रभाव से यह संकुचित हो जाती है तथा कम प्रकाश मे विस्फारित यानि फैल जाती है ताकि अधिक से अधिक प्रकाश

रेटिना तक पहुँच सके।

3– आन्तरिक तन्त्रिकामयी परत (Inner nervous layer):– नेत्रगोलक के सबसे भीतर की परत को दृष्टिपटल या रेटिना कहा जाता है जो तन्त्रिका कोशिकाओ एवं तन्त्रिका तन्तुओ की अनेको परतो से बना होता है और नेत्र के पोस्टीरियर चैम्बर मे अवस्थित होता है। इसके एक ओर कोराइड है जिससे यह सटा हुआ–सा रहता है। दुसरी ओर नेत्रकाचाभ द्रव भरा रहता है। सिलियरी बाडी के ठीक पीछे इसका अन्त हो जाता है। यह अण्डाकार होता है। रेटिना मे एक मोटी परत तन्त्रिका ऊतक की होती है जिसे न्यूरोरेटिना कहा जाता है। यह आप्टिक तन्त्रिका से जुडती है। इसके पीछे वर्णक युक्त उपकला की एक पतली परत होती है। जो कोराइड से सलग्न करती है और रेटिना के पीछे से रिफ्लेक्सन को रोकती है। न्यूरोरेटिना मे लम्बी छड के आकार की कोशिकाए राइस एवं शंकु के आकार की कोशिकाए–कोन्स रहती है जो अपने भीतर विद्यमान प्रकाश सुग्राही पिग्मेन्टो के कारण प्रकाश के प्रति अति संवेदनशील होते है। इसके अतिरिक्त न्यूरोरेटिना मे बहुत से अन्य न्यूरान्स भी रहते है। प्रत्येक आँख मे लगभग 125 मिलियन राइस एवं 7 मिलियन कोन्स होती है। जिनके कार्य अलग–अलग होते है अधिकांश कोन्स रेटीना के मध्य मे लेन्स के ठीक पीछे के क्षेत्र जिसे पीत बिन्दु या मैक्यूला ल्यूटिया कहते है में अवस्थित रहते है। मैक्यूला ल्यूटिका के केन्द्र मे एक छोटा सा गडढ़ा रहता है। इसे गर्तिका अथवा केन्द्रिय गर्तिका या फोबिया सेन्टेलिस कहते है रेटिना के शेष भाग जिसे परिसरीथ रेटिना कहते है मे राइस एवं कुछ कोन्स अवस्थित रहते है। मैक्यूला ल्यूटिया रेटिना का वह स्थान है जहा पर सर्वाधिक स्पष्ट बिम्ब बनता है। कोन्स रंग–बोध कराते है जबकि राइस काली–सफेद छायाओ का बोध कराते है इनके ही माध्यम से हम क्षीण प्रकाश मे भी वस्तुओ को देख पाते है।

मैक्यूला ल्यूटिया के नाक वाले भाग की ओर लगभग 3 मिली० की दूरी पर से आप्टिक तन्त्रिका नेत्रगोलक से बाहर निकलती है। वह छोटा सा स्थान दृष्टि–चक्रिका या आप्टिक डिस्क कहलाता है और चूँकि यह प्रकाश के प्रति असंवेदनशील होता है इसलिए इसे अन्ध बिन्दु भी कहते है। अन्ध बिन्दु पर बिम्ब न बनने का कारण यह है कि इस स्थान पर राड्स एवं कोन्स का पूर्णतः अभाव रहता है।

राइस एवं कोन्स दृष्टि के वास्तविक संग्रहक अंग होते है तथा प्रकाश जो उन पर पहुचता है, आवेग उत्पन्न करता है, जिनका संचारण आप्टिक तन्त्रिका के द्वारा मस्तिष्क के केन्द्र मे होता है, जहा दृष्टि–प्रभाव उत्पन्न होते है।

नेत्रगोलक की गुहाएँ:– नेत्रगोलक को तीन गुहाओ मे विभक्त किया गया है:–

1– अग्र कक्ष या एन्टीरियर चैम्बर (Anteriar chamber):– काार्निया एवं आइरिस के बीच का क्षेत्र।

2– पश्च कक्ष या पोस्टीरियर चैम्बर (Posterior chamber):– आइरिस एवं लेन्स के बीच का क्षेत्र।

3– नेत्रकचाभ या विद्रीयस चैम्बर (Vitreous chamber):– यह नेत्रगोलक के लगभग 80 प्रतिशत भाग को भरती है। यह लेन्स के पीछे के सम्पूर्ण स्थान को भरती है।

लेन्स (Lens):– लेन्स नेत्रगोलक मे आइरिस के एकदम पीछे स्थित रहता है। यह पारदर्शी, दृढ़ किन्तु लचीली, वृत्ताकार द्विउत्तल रचना है, जिसमे एक वाहिकाए होती है यह एक पारदर्शक लचीले कैप्सूल मे बन्द रहता है तथा ससपेन्सरी लिगामेन्टस द्वारा सिलियरी बाडी से जुड़ा होता है। ये ससपेन्सरी लिगामेन्टस लेन्स के स्थिति मे बनाये रखते है और दूर या समीप की वस्तुओ देखने के लिए लेन्स की आकृति को परिवर्तित करती है। ससपेन्सरी लिगामेंन्टस के शिथिलन से लेन्स दोनो ओर उठ जाता है अर्थात लेन्स की उत्तलता बढ़ जाती है तथा इनके तनाव से लेन्स की उत्तलता कम हो जाती है और वह चुपटा सा हो जाता है ऐसी क्रिया विभिन्न दूरियो की दृश्य वस्तुओ के अनुसार स्वतः होती है जिसे '' नेत्रो का समायोजन '' कहते है।

आँख की सहायक संरचनाएँ:– आँख अत्यन्त नाजुक अंग है जो सहायक संरचनाओं के द्वारा सुरक्षित रहती है, ये रचनाएँ निम्नलिखित है–

1– नेत्रगुहा :– यह लगभग गोलाकार होती है। आँखे दायी बायी दोनो ओर एक–एक नेत्रकोटरीय गुहा मे स्थित रहती है।

2– भौंहे :– यह माथे पर आने वाले पसीने को आँखो मे आने से रोकते है तथा अत्यन्त धूप से बचाते है।

3– पलकें :– ये प्रत्येक आँख के सामने ऊपर एक नीचे पतली त्वचा से आच्छद्रित अवकाशी ऊतक की दो गतिशील तहे होती है ऊपर एवं नीचे वाली पलको के संगम स्थल को '' कैन्थाइ '' कहा जाता है। पलको को चार परतो मे विभाजित किया जा सकता है। पलके धूल एवं अन्य वाहृय वस्तुओ से आँखो मे प्रवेश रोकने के अतिरिक्त आँखो मे अत्यधिक तीव्र प्रकाश को एकाएक प्रवेश करने से रोकती है। पलको के प्रत्येक कुछ सेकेण्डो पर झपकने रहने से ग्रन्थिल द्रव्य (आसू) नेत्रगोलक पर फैल जाते है जिससे कार्निया तह बनी रहती है। निद्रा के दौरान बन्द पलके स्रावो को वास्पीकरण होने से रोकती है।

4– बरौनियाँ :– ये बाहृ पदार्थो को आँखो मे प्रवेश करने से रोकते है। प्रत्येक आँख की पलक मे लगभग 200 बरौनिया होती है प्रत्येक बरोनी 3 से 5 माह मे स्वतः गिरकर नवीन बरौनी उग जाती है।

5– नेत्रश्लेष्मा :– यह एक पतली पारदर्शक म्यूकस मेम्ब्रेन है जो पलको आन्तरिक भाग को अस्तरित करती है तथा पलट कर नेत्रगोलक के ऊपर आकर सतह को आच्छादित करती है। पारदर्शक कार्निया पर आकर समाप्त हो जाती है।

6– अश्रुप्रवाही उपकरण :– इसमे अश्रुग्रन्थि, अश्रुकोष, अश्रु वाहिनिया तथा नासा अश्रुवाहिनी से बनता है।

अश्रुग्रन्थिया मे आँसुओ का निर्माण होता है।

आँसू :– आँखे प्रत्येक 2 से 10 सेकण्ड पर झपकती रहती है, जिससे अश्रुग्रन्थि उददीप्त होकर एक निर्जीवाणुक तरल स्रावित करती है, जिसे आँसू कहते है। आँसुओं मे तरल, श्रवण, म्यूसिन तथा एक जीवाणुनाशक एन्जाइम रहता है।

कार्य :– (1) आँसू आँखो को चिकना एवं नम रखते है जिससे पलको की गति सहजतापूर्वक हो सके।

(2) आँसू बाहृय वस्तुओ, शूलकणो आदि को धोकर साफ कर देते है।

(3) आँसूओ मे विद्यमान जीवाणुनाशक एन्जाइम लाइसोसाइम से जीवाणु नष्ट हो जाते है।

(4) आँसू कौनिया एवं लेन्स को जल एवं पोषण की आपूर्ति करते है।

(5) आँसू नेत्रगोलक को स्वच्छ नम चिकनी सतह प्रदान कराते है।

नेत्र पेशियाँ :– नेत्रगोलक की इसके साफेद मे गति निम्न 6 पेशियों के सेट द्वारा सम्पादित होती है। इनमे चार सीधी और दो तिरछी पेशिया होती है।

सीधी पेशियाँ :–

1. मीडियल रेक्टस
2. लेटरल रेक्टस
3. सुपीरियर रेक्टस
4. इन्फीरियर रेक्टस

तिरछी या तिर्यक पेशियाँ :–

1 – सुपीरियर आव्लिक पेशी

2 – इन्फीरियर आव्लिक पेशी

ये सभी पेशिया बाहृय पेशिया कहलाती है क्योकि ये नेत्रगोलक के बाहर रहती है। इन सभी पेशियो की गतियो से सम्बन्धित होने से ही आँखे घुमायी जाती है। जिससे दोनो आँखे एक ही वस्तु पर केन्द्रित होती है।

आँखो के अन्दर निम्न तीन चिकनी पेशिया रहती है, जिन्हे अन्तरस्थ पेशिया कहा जाता है।

1 सिलियरी पेशी

2 सरकुलर पेशी या स्फिक्टर प्यूपिला

3 रेडियल पेशी या डाइलेटर पेपीला

दृष्टि तन्त्रिका एवं दृष्टि पथ :– देखने का कार्य दृष्टि तन्त्रिकाओ द्वारा होता है दृष्टि तन्त्रिकाए प्रकाश संवेद की तन्त्रिकाए होती है। इन तन्त्रिका तन्तुओ की उत्पत्ति आँखो के रेटिना मे होती है जो मैक्यूला ल्यूमिया से लगभग 0.5 सेमी नाक की ओर अभिबिन्दु होकर आप्टिक तन्त्रिका बनाते हे। यह तन्त्रिका नेत्रगोलक के पिछले भाग से निकलती है और पिटयूटरी ग्रन्थि के पास आकर दूसरी ओर की आस्टिक तन्त्रिका से मिल जाती है। इस क्रासिगं स्थल को आप्टिक चेस्मा कहते है। इस स्थान पर आकर दोनो आँखो की आप्टिक तन्त्रिका के नाक की ओर के आधे'–आधे तन्तु एक–दूसरे को क्रास कर सीधे आगे की ओर बढ़ जाते है। लेटरल सण्ड के शेष प्रत्येक रेटिना के तन्त्रिका तन्तु बिना एक–दूसरे को क्रॉस किए दोनो तरफ अग्रसर होते हुए मध्य मस्तिष्क में पहुँच जाते है। आप्टिक चियारूम से होकर गुजरने के उपरान्त तन्त्रिका तन्तुओ के '' दृष्टिपथ '' कहा जाता है। प्रत्येक दृष्टिपथ में दूसरी में दूसरी ओ की आँख के रेटिना के नासा तन्तुओ एवं उसी ओ की आँख की रेटिना के लेटरल तन्तुओ का समावेश होता है।

प्रत्येक दृष्टिपथ सेरीब्रम से होकर पीछे की ओर जाता है तथा थैलेमस मे के न्यूक्तियस मे के न्यूरान्स जिन्हे '' लेटरल जेनिकुलेट बाडी '' कहा जाता है के साथ तन्तु मिलन करता है। वहाँ से लेटरल सेनिकुलेट बाडी में के न्यूरान्स के अक्ष तन्तु प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स के आक्सिपिटल लोब में प्राथमिक दृष्टिपरक कार्टेक्स में प्रक्षेपित होते है। जहाँ दृष्टि आवेगों की व्याख्या एवं विश्लेषण होता है।

दृष्टि की क्रियाविधि :– प्रकाश दृीष्टिमान ऊर्जा के एक रूप है, जो वायु के माध्यम से लगभग 3,00,000 किमी० प्रति सेकण्ड की गति से तरंगोंमें गमन करता है।

प्रकाश की किरणे समान्यतः सामान्तर रेखा मे चलती है, किन्तु जब ये एक घनत्व वाले माध्यम से भिन्न घनत्व वाले माध्यम मे गुजरती है तो ये झुक जाती है, इस झुकाब को अपवर्तन कहा जाता है। बाहृय वायु से आँख मे प्रवेश करने वाली प्रकाश किरणे अपवर्तित हो जाती है और अभिबिन्दुग होकर अर्थात एक बिन्दु पर मिलकर रेटिना के फोकस बिन्दु पर केन्द्रित हो जाती है।

रेटिना पर पहुँचने से पूर्व प्रकाश की किरणे आँखो के पारदर्शी अपवर्तक माध्यमों कार्निया, एम्वीयस हयूमर लेन्स एवं विद्रीयस हयूमर से होकर गजरती है। इनमे लेन्स ही एक ऐसी रचना है जिसमे प्रकाश की किरणो को झुकाने या अपवर्तन करने की क्षमता रहती है जिससे वे अभिबिन्दुग होकर लेन्स के पीछे रेटिना पर बिम्ब बनाती है।

रचना की दृष्टि से आँखो की तुलना कैमरे से की जाती है जिसमे पलके कैमरे के समान आँखो के लिए शुटर का काम करती है प्रकाश के प्रवेश के खिड़की '' कार्निया '' के रूप मे रहती है आइरिस भीतर प्रवेश

करने वाले प्रकाश की मात्रा को नियन्त्रित करता है क्रिस्टेलाइन लेन्स से प्रकाश की किरणे फोकस होती है अभिमध्य वाहिकामयी परत कैमरे के प्रकाशरोधक बाक्स का काम करती है तथा रेटिना कैमरे के समान प्रकाश के प्रति संवेदनशील प्लेट का काम करती है।

कैमरे के सामने जो वस्तु रहती है कैमरे की प्लेट पर उसका उल्टा प्रतिबिम्ब बनता है। ठीक उसी प्रकार आँखो से देखी जाने वाली वस्तुओ का उल्टा प्रतिबिम्ब रेटिना पर बनता है। वस्तु से प्रकाश की किरणे निकलती है और एक्वीयस हृयूमर लेन्स एवं विट्रीयस हयूमर को पार करके रेटिना पर पड़ती है। लेन्स तथा कार्निया प्रकाश की समान्तर किरणो को रेटिना पर केन्द्रीभूत करते हैं। कैमरे मे लेन्स से फोकस–बिन्दु की दूरी निश्चित होती है और लेन्स को आगे–पीछे खिसका कर फोटोग्राफी प्लेट पर वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिम्ब लिया जाता है। आँख मे भी लेन्स तथा रेटिना की दूरी निश्चित होती है। अतः आँख में लेन्स से फोकस बिन्दु की दूरी को सिलियरी पेशियो की संकुचन क्रिया द्वारा बदल कर वस्तु के स्पष्ट प्रतिबिम्ब को रेटिना पर प्राप्त किया जाता है।

आप्टिक तन्त्रिका द्वारा प्रतिबिम्ब की विस्तृत सूचना प्रमस्तिस्कीय कार्टेक्स के आक्सिपिटल लोब मे पहुँचती है जहाँ यह चेतना मे विकसित होती है। इस प्रकार आप्टिक तन्त्रिकाओ द्वारा संवेदनाए मस्तिष्क के दृष्टि क्षेत्र मे पहुँचती है, फलतः मस्तिष्क को देखने की अनुभूति होती है। रेटिना के उल्टे बिम्ब को सीधा दिखाना मस्तिष्क का काम है।

11.9 प्रतिरक्षा तंत्र

बाह्म वायुमण्डल में लाखों–करोड़ों की संख्या में सूक्ष्म जीव उपस्थित होते हैं। ये सूक्ष्म जीव प्रतिक्षण मानव शरीर पर आक्रमण करते रहते हैं। यद्यपि त्वचा एक प्रमुख सुरक्षा आवरण के रूप में शरीर की रक्षा करती रहती है, किन्तु फिर भी बाह्म वातावरण से बहुत सारे सूक्ष्म जीव श्वास के माध्यम सें अथवा भोजन और जल के द्वारा अथवा अन्य माध्यमों से मानव शरीर के अन्दर चले जाते है। इन सूक्ष्म रोगाणुओं से शरीर की सुरक्षा करने के लिए ईश्वर द्वारा मानव शरीर को एक विशेष तंत्र दिया है, जिसे शरीर प्रतिरक्षा तंत्र अथवा लसीका तंत्र की संज्ञा दी जाती हैं इस तंत्र का महत्वपूर्ण कार्य रोगाणुओं से शरीर की सुरक्षा करना होता हैं। इस तंत्र को इस प्रकार समझा जा सकता है–

''शरीर का वह महत्वपूर्ण तंत्र जो बाह्म जीवाणुओं, विषाणुओं एवं रोगाणुओं से शरीर की सुरक्षा करता हुआ शरीर को स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य करता है, प्रतिरक्षा तंत्र कहलाता है।'' इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से लसीका ग्रन्थियों एवं लसीका ऊतकों की संरचना एवं कार्यों का अध्ययन किया जाता है।

लसीका (Lymph)

लसीका रक्त प्लाज्मा के समान स्वच्छ जल जैसा द्रव पदार्थ होता है। इस द्रव में लसिका ग्रन्थियों से उत्पन्न लिम्फोसाइट्स(Lymphocytes) उपस्थित होती है। लिम्फोसाइट्स को मानव शरीर की गस्ती सेना की जाती है क्योंकि लिम्फोसाइट्स सम्पूर्ण शरीर में परिभ्रमण करती हुई शरीर की सुरक्षा का कार्यभार संभालती है। लिम्फोसाइट्स में प्रमुख रूप से श्वेत रक्त कोशिकाएं (ल्यूकोसाइट्स) पायी जाती है। जिनका कार्य शरीर में उपस्थित विषाणु अथवा रोगाणु का भक्षण करना होता हैं जहां पर भी अथवा जिस अंग में श्वेत रक्त कोशिकाओं को विषाणु या रोगाणु मिलता है, यह उसके चारों और घेरा बना देती है तथा उससे युद्ध करती हैं। इस युद्ध की अवस्था में शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है। प्रायः यह अनुभव भी होता है कि शरीर में संक्रमण होने पर शरीर का तापक्रम बढ़ा हुआ रहता है।

श्वेत रक्त कोशिकाएं रोगाणुओं से तब–तक करती रहती है, जब–तब की श्वेत रक्त कोशिकाओं की विजय नहीं हो जाती। ऐसी अवस्था में श्वेत रक्त कोशिकाएं अपनी संख्याएं बढ़ाती है तथा रूक–रूक कर रोगाणुओं के विरूद्ध युद्ध करती रहती है। हम व्यावहारिक रूप में प्रायः यह देखते है कि हमें एक निश्चित अन्तराल पर ही बुखार आदि आता है तथा कुछ समय शरीर का तापक्रम सामान्य होने के बाद तीन से छः घण्टे बाद पुनः तापक्रम बढ़ जाता हैं इसका कारण यह है कि युद्ध में हार होने पर श्वेत रक्त कोशिकाएं पुनः अपनी संख्याएं बढ़ाती है तथा संख्या अधिक होने पर रोगाणुओं के विरूद्ध युद्ध करती है।

लसीका द्रव सम्पूर्ण शरीर में वाहिकाओं के माध्यम से परिभ्रमण करता रहता है। इन वाहिकाओं के मार्ग में कुछ निश्चित स्थानों पर छोटे–छोटे उतक के पिण्ड उपस्थित होते है। इन पिण्डों को लसीका एवं कहा जाता है। यह लसीका पर्व गर्दन, पार्श्व भुजा (बगल), वक्ष उदर आदि स्थानों पर प्रमुख रूप से होते हैं। लसीका पर्व छलनी का कार्य करती है और लसीका द्रव को छानती रहती है। इस कारण लसिका में उपस्थित हानिकारक पदार्थ यहां पर छनकर अलग हो जाता है। यही कारण होता है कि शरीर मे संक्रमण होने पर इन स्थानों पर सूजन के साथ तीव्र वेदना प्रारम्भ हो जाती है।

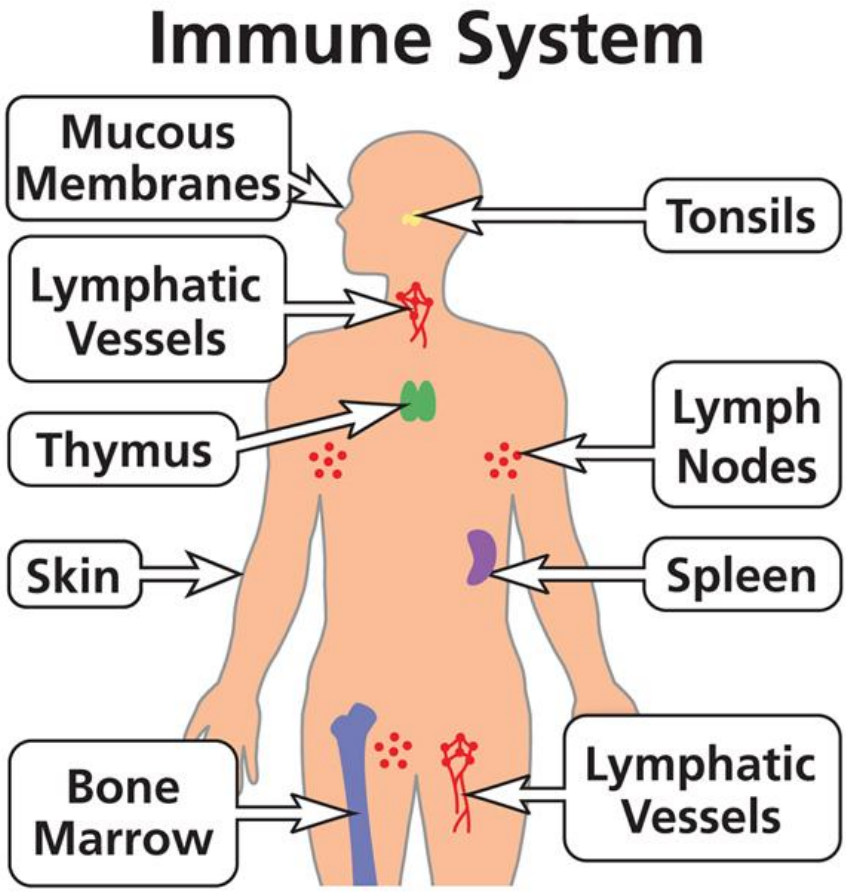

मानव शरीर के लसीका तंत्र में निम्न तीन महत्वपूर्ण अंगों का समावेश होता है–

1 प्लीहा (spleen)

2 थायमस ग्रन्थि (Thymus Gland)

3 टॉसिल्स (Tonsil)

1 प्लीहा (Spleen)

प्लीहा एक प्रमुख लसिका अंग होता हैं। यह डायाफ्राम के नीचे और पेन्क्रियाज के साथ स्थित होता है। इसका वजन 200 ग्राम तथा रंग बैगनी होता है। प्लीहा रक्त को छानने का कार्य करती हैं इस अंग में भक्षण कोशिकाएं पायी जाती है जो सुक्ष्म जीवाणुओं का भक्षण करती है। इसके साथ–साथ मृत लाल रक्त कोशिकाएं भी यहीं पर रक्त से अलग कर दी जाती हैं। मृत लाल रक्त कोशिकाओं के हिमोग्लोबिन से लौह तत्व को अलग कर पुनः रक्त कण बनने हेतु अस्थि मज्जा तक पहुंचा दिया जाता हैं इसके साथ–साथ लाल रक्त कणों एवं बिम्बाणुओं का भण्डारण भी प्लीहा में ही किया जाता है, जिस कारण प्लीहा को मानव शरीर का ब्लड बैंक भी कहा जाता हैं।

2 थायमस ग्रन्थि (Thymus Gland)

थायमस हृदय के समीप स्थित मानव शरीर की महत्वपूर्ण अन्तःस्त्रावी ग्रन्थि है जो लिम्फोसाइट्स का निमार्ण करती हैं। इस ग्रन्थि का सीधा सम्बन्ध मनुष्य की रोग प्रतिरोधक क्षमता के साथ होता है। जन्म से लेकर यौवनारम्भ तक इस ग्रन्थि का आकार बढ़ता रहता है जबकि आगे चलकर यह ग्रन्थि निष्क्रिय हो जाती है।

3 टॉंसिल्स (Tonsil)

मनुष्य के गले में एक जोड़ी अर्थात् संख्या में दो टॉंसिल उपस्थित होते हैं। इनका कार्य मनुष्य पाचन एवं श्वसन क्रिया में उपस्थित रोगाणुओं को नष्ट करना होता है। विकृत आहार–विहार एवं मौसम परिवर्तन के फलस्वरूप गले में स्थित टॉंसिल को अधिक कार्य करना पड़ता है जिस कारण इनका आकार बढ़ जाता है और इनमें सूजन के साथ वेदना उत्पन्न हो।

रोगक्षमता (Immunity)

किसी रोग विशेषकर किसी संक्रामक रोग के प्रति प्रतिरोधशक्ति के होने अथवा उससे सुरक्षित होने की अवस्था को रोगक्षमता या इम्यूनिटी (Immunity) कहते है। प्रतिजन–प्रतिपिण्ड या एन्टिजन–एन्टीबॉंडी प्रतिक्रिया इम्यूनिटी का आधार बनती है। किसी रोग के प्रति इम्यूनिटी उत्पन्न हो जाने से उस रोग से लड़ने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिससे उस रोग के जीवाणुओं अथवा बिषाणुओं आादि का कोई प्रभाव नहीं होता। चिकित्साशास्त्र की वह शाखा जिसमें रोगों के प्रति रोगक्षमता या इम्यूनिटी का अध्ययन किया जाता है रोगक्षमता–विज्ञान या इम्यूनोलॉंजी (Immunology) कहलाती है। इसमें एन्टिजन–एन्टीबॉंडी प्रतिक्रयाओं का तथा असामान्य रोगक्षमता प्रतिक्रियाओं (एलर्जीजन्य प्रतिक्रियाओं) का भी अध्ययन किया जाता है। जब रोगों के प्रति रोगक्षमता का अध्ययन करके उनका निदान किया जाता है तो यह नैदानिक रोगक्षमता–विज्ञान (Diagnostic immunology) कहलाता है।

प्रतिजन या एन्टिजन (Antigen) क्या है ?

शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाला या उसमें उत्पन्न होने वाला ऐसा पदार्थ जो प्रतिपिण्ड या एन्टीबॉंडी के बनने को प्रेरित करता है जो विशेष रूप से उसी के साथ प्रतिक्रिया करती है एन्टिजन कहलाता है। एन्टिजन–एन्टीबॉंडी निर्माण को प्रेरित करने के लिए एन्टिजन का अणु–भार (Molecular weight) 10,000 या इससे अधिक होना आवश्यक है एन्टिजन प्रायः प्रोटीन होते है। कोई एन्टिजन शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाला जैसे जीवाणु विषाणु कवक जीवविष (Toxin) बाह्म रक्त कोशिकाएँ आदि होती है तथा वैक्सीन के रूप में इन्जैक्शन द्वारा शरीर में पहुँचाये जाने वाले कृत्रिम एन्टिजन होते है।

प्रतिपिण्ड या एन्टीबॉंडी क्या है ?

प्रतिपिण्ड या एन्टीबॉडी एक प्रोटीन पदार्थ होती हैं जो विशिष्ट रूप से किसी एन्टिजन की अनुक्रिया में लिम्फोसाइटों एवं प्लाज्मा कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न होता है और एन्टिजन के साथ ही प्रतिक्रिया करता हैं एन्टिजन–एन्टीबॉडी प्रतिक्रया इम्यूनिटी का आधार बनती है। एन्टीबॉडियों को उत्पन्न करने वाली कोशिकाएँ इम्यूनोसाइट कहलाती है जो एन्टिजनों द्वारा उत्तेजित होकर एन्टीबॉडियाँ उत्पन्न करती हैं स्वस्थावस्था को कायम रखने के लिए इम्यूनोसाइटों को स्वस्थ एवं सक्रिय होना चाहिए। एन्टीबॉडियों पूर्व में हुए जीवाणुज विषाणुज अथावा कवक संक्रमण टीकाकरण अथवा गर्भाशय में माता से शिशु में स्थानान्तरित होने के परिणामस्वरूप पायी जाती है या किसी ज्ञात एन्टिजन–उत्तेजन के अभाव में भी एन्टीबॉडियाँ उत्पन्न हो सकती है। इनके अतिरिक्त शरीर में ऐसी एन्टीबॉडियाँ होती हैं जो विशेष रूप से उन एन्टिजनों के साथ प्रतिक्रिया करती है जिनके प्रतिअनावृत्त होने का कोई इतिवृत्त नहीं मिलता। ये स्वाभाविक या प्राकृतिक एन्टीबॉडियों कहलाती है। सभी एन्टीबॉडियों प्लाज्मा प्रोटीनों के एक विशेष वर्ग इम्यूनेाग्लोबिन की होती है। मानव वयस्क में सामान्यतः निम्न पाँच प्रकार की इम्य्यूनोग्लोबिन पाई जाती हैं जिन्हें संक्षेप में lg लिखा जाता है।

1.Immunoglobulin gamma A {lgA}

यह बहिःस्त्रावी ग्रन्थियेां (Exocrine glands) के स्त्रावों जैसे दूध श्वसनीय पथों एवं आँत की श्लेष्मा तथा आँसुओं आदि में पई जाने वाली मुख्य इम्यूनोग्लोबुलिन है जो श्लेष्मिक कला की सतह की जीवाणुज एवं जीवाणुज एवं विषाणुज संक्रमण से रक्षा करती है।

2.Immunoglobulin gamma D {lgD}

यह सामान्य मानव प्लाज्मा में बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में पायी जाने वाली एक प्रोटीन है जिसका कार्य अज्ञात है।

3.Immunoglobulin gamma E {IgE}

यह श्वसन'–पथों एवं आन्त्र–नली को आस्तरित करने वाली श्लेष्मिक कला की कोशिकाओं से उत्पन्न होने वाली एक गामा ग्लोबुलिन है जो एलर्जी के बहुत से रोगियों में बढ़ जाती है।

4. Immunoglobulin gamma G {IgG}

यह प्लाज्मा में पायी जाने वाली एक प्रमुख इम्यूनोग्लोबुलिन है जो प्रसव से पूर्व अपरा से होकर शिशु में पहुँच जाती है और उसमें जन्म से पूर्व इम्यूनिटी उत्पन्न कर देती है। यह एन्टीटॉक्सिन विषाणुओं एवं जीवाणुओं के लिए मुख्य एन्टीबॉडी है।

5. Immunoglobulin M {IgM}

यह प्रायः प्रत्येक रोगक्षम अनुक्रिया में संक्रमण के प्रारम्भिक काल में बनने वाली इम्यूनोग्लोबुलिन हैं।

सभी इम्यूनोग्लोबुलिनों में से IgG तथा IgM ही सीरमी परीक्षण में महत्वपूर्ण है। सूक्ष्माणु के प्रारम्भिक सम्पर्क से सबसे पहले तुरन्त ही Igm एन्टीबॉडी बनती है।

रोगक्षमता {Immunity} निम्न प्रकार की होती है–

1. प्राकृतिक या स्वाभाविक रोगक्षमता {Natural immunity}

यह किन्ही प्राकृतिक वंशागत कारकों की विद्यमानता के परिणामस्वरूप किसी रोग के प्रति जन्म से ही होने वाली स्थायी रोगक्षमता हैं।

2. उपार्जित रोगक्षमता {Acquired immunity}

यह जन्म के बाद उत्पन्न होने वाली रोगक्षमता होती है तथा सक्रिय तथा निष्क्रिय दो प्रकार की होती हैः–

A सक्रिय रोगक्षमता {Active immunity}

सक्रिय रोगक्षमता का अर्थ होता है कि व्यक्ति में किसी एन्टिजन के प्रति अनुक्रिया हुई और उसमें उसकी अपनी एन्टीबॉड़ियाँ उत्पन्न हो गयी है यह उपार्जित इम्यूनिटी किसी विशिष्ट एन्टिजन के प्रति होती हैं। इसका अभिप्राय हुआ कि एन्टीबॉडियाँ किसी एक रोगाणु के प्रति विशिष्ट होती है क्योकि विभिन्न रोगाणुओं में विभिन्न एन्टिजन के गुण होते हैं सक्रिय रोगक्षमता भी दो प्रकार की होती है–

1 स्वाभाविक सक्रिय रोगक्षमता {Natural active immunity}

यह स्वाभाविक रूप से वायुमण्डल में विचरण करते हुए जीवाणु विषाणु आदि के शरीर में प्रवेश कर जाने के कुछ समय पश्चात् उत्पन्न होने वाली रोगक्षमता या इम्यूनिटी होती है जो जीवन भर बनी रहती है जिससे भविष्य में उस जीवाणु या विषाणु विशेष से लड़ने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है और फिर उसका शरीर पर कोई प्रभाव नहीं होता जैसे चेचक या बड़ी माता (Small pox) एक विषाणु द्वारा उत्पन्न होने वाला रोग हैं। किसी व्यक्ति में एक बार चेचक निकल आने के बाद जिन्दगी भर वह चेचक का रोगी नहीं बनता। इसका कारण यह है कि चेचक की बीमारी के दौरान एक बार चेचक के विषाणुओं के शरीर में प्रविष्ट हो जाने के पश्चात् प्लाज्मा में B-लिम्फोसाइट विकसित होती है जो संक्रमण फैलाने वाले रोगाणुओं का मुकाबला करने के लिए पर्याप्त मात्रा में एन्टीबॉड़ियाँ उत्पन्न करती है जिससे शरीर में चेचक के प्रति इम्यूनिटी उत्पन्न हो जाती है। रोगी के स्वस्थ हो जाने पर लिम्फासाइटों में विशिष्ट एन्टीबॉडियाँ उत्पन्न करने की क्षमता बनी रहती है जिससे भविष्य में चेचक के विषाणु के संक्रमण के प्रति इम्यूनिटी उत्पन्न हो जाती है तथा चेचक के विषाणु शरीर में प्रविष्ट हो जाने के पश्चात् निष्क्रिय हो जाते है और उनका शरीर पर कोई प्रभाव नही होता। इसी प्रकार लघुमसूरिका या छोटी माता (Chicken pox) भी एक बार होने के बाद फिर नहीं होती। इसके साथ ही हर्पीजजॉस्टर (जिसे आम भाषा में मकड़ी फलना कहा जाता है जिसमें जनेऊ की सीध में दाने निकल आते हैं।) भी कभी नहीं होता क्योंकि दोनों रोगों को उत्पन्न करने वाला विषाणु एक ही होता है।

2 कृत्रिम सक्रिय रोगक्षमता (Artificial active immunity) किसी रोग जैसे चेचक खसरा (Measles) कर्णपूर्वग्रन्थिशोध या गदूद (Mumps) डिफथीरिया टेटनस तथा काली खाँसी आदि के प्रति टीका (वैक्सीन का इन्जैक्शन) लगााकर कृत्रिम रूप से इम्यूनिटी उत्पन्न की जाती हैं वैक्सीन में सम्बन्धित रोग के निष्क्रियकृत

जीवाणु या विषाणु होते हैं जो शरीर में पहुँच कर रोग तो उत्पन्न नहीं करते या संक्रमण तो नहीं फैलाते है परन्तु इनमें एन्टिजन गुण होने के कारण इनसे एन्टीबॉडियाँ उत्पन्न होने के परिणामस्वरूप इम्यूनिटी उत्पन्न हो जाती है। वैक्सीन का इन्जैक्शन लगााने के पश्चात् डिफ्थीरिया,काली खाँसी तथा गदूद (Mumps) में सम्पूर्ण जीवन के लिए तथा अन्य रोगों मे कुछ ही वर्षो या केवल कुछ सप्ताहों के लिए इम्यूनिटी उत्पन्न होती है और रोगी को दूसरी या तीसरी बार टीका लगवाने की आवश्यकता होती है। इम्यूनिटी उत्पन्न होने और उसके कायम रहने के लिए आयु एवं पोषण का बड़ा महत्व है। वृद्ध लोगों में तथा जिनमें पोषण की कमी होती है उनमें लिम्फोसाइट विशेष रूप से B– लिम्फोसाइटों का उत्पन्न कम हो जाता है जिससें उनमें इम्यूनिटी उत्पन्न नहीं हो पाती।

B निष्क्रिय रोगक्षमता (Passive immunity)–

1– निष्क्रिय कृत्रिम रोगक्षमता (Passive artificial immunity)

यह किसी व्यक्ति के शरीर से बाहर अन्य व्यक्ति या जन्तु के सीरम में बनी बनाई एन्टीबॉडियों को उस व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट करके उसमें उत्पन्न की गई इम्यूनिटी होती है। इस प्रकार की एन्टीबॉडियों संक्रमण से ग्रस्त रह चुके व्यक्ति के सीरम में विद्यमान होती हैं या किसी रोग के प्रति जन्तुओं में सामान्यतः घोड़ो के सीरम में एन्टीबॉडियाँ उत्पन्न की जाती हैं घोड़ो से एन्टीबॉडी युक्त सीरम (Anti serum) उपलब्ध करके रोग की रोकथाम के लिए इसे इन्जैक्शन द्वारा उस व्यक्ति में प्रविष्ट किया जाता हैं इससे कुछ समय के लिए सम्बन्धित रोग से रक्षा हो जाती है, सम्पूर्ण जीवन भर रक्षा नहीं हो पाती क्योंकि थोड़ी सी समयावधि के पश्चात् ऐसी इम्यूनिटी समाप्त हो जाती है।

2 देहद्रवी रोगक्षमता (Humoral immunity)

यह शरीर के तरलों जैसे रक्त सीरम एवं दूध आदि में भ्रमण करती हुई अस्थि मज्जा की लिम्फोसाइटों (B-Lymphocytes) द्वारा उत्पन्न एन्टीबॉडियों से उत्पन्न होने वाली उपार्जित रोगक्षमता (Acquired immunity) होती है जो आक्रामक रोगाणुओं से शरीर की रक्षा करती है। सीरम परीक्षणों में हमारा सम्बन्ध मुख्य रूप से देहद्रवी रोगक्षमता तथा सीरम में विद्यमान एन्टीबॉडियों का अध्ययन करने से हैं जब रोगाणु प्रथम बार शरीर में प्रवेश करते हैं तो प्राथमिक रोगक्षम प्रतिक्रिया के रूप में लगभग 2 सप्ताह बाद रक्त में थोडी सी एन्टीबॉडियाँ पायी जाती है। यह इम्यूनिटी केवल तभी कायम रहती है जब कुछ ही दिनों के भीतर (2 से 4 सप्ताहों के भीतर) पुनः शरीर में एन्टिजन से सामना होता हैं एन्टिजन से दुबारा सामना होने पर द्वितीयक रोगक्षम प्रतिक्रिया (Secondary immune response) उत्पन्न होती है और अबकि बार शरीर में एन्टीबॉडियाँ उत्पन्न होती हैं जिनसे उत्पन्न इम्यूनिटी अधिक शक्तिशाली एवं रोग के प्रति विशेष रू॰ से कार्य करने वाली होती हैं अन्त में एन्टीबॉडियों का उत्पन्न अधिकतम हो जाता है जिसके पश्चात आगे एन्टिजन से सामना होने पर और अधिक एन्टीबॉडियाँ उत्पन्न नहीं होती। संक्रामक रोगों के प्रति सक्रिय रोगक्षमीकरण

(Active immunisation) करने में इस सिद्धान्त का उपयोग किसा जाता हैं।

3 कोशिकीय रोगक्षमता (Cellular immunity)

थाइमस से सम्बद्ध ऊतकों के लिम्फोसाइटों (T-Lymphocytes) से उत्पन्न होने वाली एन्टीबॉडियों से कोशिकीय रोगक्षमता उत्पन्न होती हैं इससे कुछ जीवों जैसे कवकों (Fungi) एवं अन्तकोंशिकीय रोगाणुओं से शरीर की रक्षा होती हैं।

4 स्थानीय रोगक्षमता

ऐसी रोगक्षमता जो शरीर के किसी सीमित क्षेत्र अथवा ऊतक में होती है।

5 हर्ड इम्यूनिटी (Herd immunity)

यह लोगों के एक समूह अथवा आबादी में विशिष्ट रोगों के प्रति होने वाली रोगक्षमता होती है।

स्वरोगक्षमता (Autoimmunity)

शरीर की रोगक्षम–प्रतिक्रियायें सामान्यतः बाह्य एन्टिजन या संक्रामक वस्तु के प्रति प्रतिक्रिया होती है। सामान्यतः इम्यूनोसाइट अपनी प्रोटीन के प्रति सहनशील होती है जिससे उनका बचपन से ही वास्ता पड़ रहा है परन्तु कुछ रोगत्मक दशाओं में ह्रास करता हुआ कोई ऊतक रक्त परिसंचरण में अपनी प्रोटीन को मुक्त करता है जहाँ पर सामान्यतः उसे नहीं होना चाहिए था और यह ''बाह्य'' प्रोटीन एक एन्टिजन के रूप में कार्य करके स्वयं ऊतक को नष्ट करने वाली ऑटोएन्टीबॉडियों को उत्पन्न करता है जिसके परिणामस्वरूप शरीर में स्वक्षम रोग (Autoommune diseases) उत्पन्न हो जाते हैं अथवा एलर्जीजन्य प्रतिक्रियायें या अतिसुग्राहिता (Hypersensitivity) उत्पन्न हो जाती हैं सामान्य रूप से उत्पन्न होने वाला स्वक्षम रोग रक्तिमल्यूपस (Lupus erythematosus) है जो संयोजी ऊतक का एक रोग है जिसमें ह्रास करती हुई पेशी से एक प्रोटीन मुक्त होती है।

असामान्य इम्यून प्रतिक्रियायें (एलर्जीजन्य प्रतिक्रियायें)

इम्यून प्रतिक्रिया के निम्न तीन हानिकारक रूप होते हैं दूसरी बार तथा बाद में एन्टिजनों से सामना होने पर उत्पन्न होते हैं–

1 एन्टीबॉडी–मध्यस्थ (Antibody-mediated) अर्थात् तुरन्त होने वाली प्रतिक्रियायें

2 कोशिका–मध्यस्थ (Cell-mediated) अर्थात् देर से उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रियायें

3 एन्टीबॉडी–मध्यस्थ एवं कोशिका–मध्यस्थ मिश्रित प्रतिक्रियायें

1 एन्टीबॉडी–मध्यस्थ अर्थात् तुरन्त उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रियायें

प्लाज्मा कोशिकाओं से बनी एन्टीबॉडियाँ अपने एन्टिजनों के साथ संयोजित होकर एन्टिजन/एन्टीबॉडी कॉम्प्लैक्स (Ag/Ab या इम्यून कॉम्प्लैक्स) बनाती हैं जिससे तीव्रग्राही या अतिसुग्राही प्रतिक्रिया (Anaphytactic

reaction) उत्पन्न हो जाती है।

तीव्रग्राही या अतिसुग्राही प्रतिकियायें (Anaphylactic reactions)

एन्टिजन/एन्टीबाँडी (Ag/ab) संयोजन एलर्जन (Allergen) के रूप में (एलर्जी उत्पन्न करने वाला कोई भी पदार्थ एलर्जन कहलाता हैं।) कार्य करते हैं। एलर्जन मास्ट कोशिकाओं (मास्ट कोशिकाएँ संयोजी ऊतक कोशिकाएँ होती हैं जिनकी कण्किाओं में हिस्टामीन होता है जिससे एलर्जी उत्पन्न होती हैं।) को उद्दीप्त करते है जिससे उनसे हिस्टामीन एवं हिस्टामीन के समान पदार्थ मुक्त हाते हैं। जब ये पदार्थ अधिक मात्रा में मुक्त होते हैं जो अत्यन्त गम्भीर एलर्जीजन्य प्रतिकिया अथवा तीव्रग्राही प्रतिकिया उत्पन्न हो जाती है जिसमें स्तब्धता या शाँक (Shock) की दशा उत्पन्न हो जाती है जिसमें स्तब्धता (Anaphylactic shock) कहा जाता हैं। ऐसी दशा उत्पन्न हो जाने पर रोगी एकदम से बेहोश हो जाता है, उसकी त्वचा पीली पड़ जाती है और उसे ठण्डे पसीने आते हैं, उसका ब्लड प्रेशर एकदम से बहुत कम हो जाता है, तापमान भी कम हो जाता है, नाड़ी गति तीव्र हो जाती है, पुतलियाँ चौड़ी हो जाती हैं और प्रकाश के प्रति इनमें बहुत धीमी प्रतिकिया होती है, साँस लेने में बहुत कठिनाई होती हैं। अत्यन्न गम्भीरावस्था में पहुँच जाने पर रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। तीव्रग्राही प्रतिकिया अक्सर पेनीसिलीन, एन्टीटेटेनिक सीरम (Antitetanic serum-A.T.S), लीवर एक्सट्रैक्ट आदि का इन्जैक्शन लगने के तुरन्त बाद उत्पन्न हो जाती है जो एलर्जन के रूप में कार्य करते है। इनके अतिरिक्त किसी कीड़े जैसे बिच्छू और कभी–कभी मधुमक्खी के काटने के बाद भी यह दशा उत्पन्न हो जाती है। कभी– कभी किसी विशेष प्रकार का भोज्य पदार्थ ग्रहण कर लेने पर भी एलर्जी या तीव्रगाही प्रतिकिया उत्पन्न हो जाती है।

कोशिका–मध्यस्थ अर्थात् देर से उत्पन्न होने वाली प्रतिकियायें :–ये प्रतिकियाये एन्टिजन से दुबारा मुकाबला होने के पश्चात धीरे–धीरे 24 से 48 घण्टो के भीतर उत्पन्न होती है। ये विशिष्ट रूप से सकियित टी–लिम्फोसाइटों तथा भक्षक कोशिकाओं की कियाशीलताओं के कारण होती है। लिम्फोसाइटों से लिम्फोकाइन नामक पदार्थ उत्पन्न होते है जो एन्टीबाडियाँ नही होते और इम्यून प्रतिकिया को बढा देते है और रोगग्रस्त क्षेत्र की ओर की बृहतभक्षककोशिकाओं को आकर्षित करते है एवं उन्हे उसमें रोक लेते है और भक्षणकोशिकाकिया को प्रोत्साहित करते है। इस प्रकार की एलर्जीजन्य प्रतिकियाओं को उत्पन्न करने वाले एन्टिजन क्षय रोग (तपेदिक), खसरा तथा कर्णपूर्वग्रन्थिशोध या गदूद आदि रोगों के रोगाणु, कुछ वैक्सीन जैसे चेचक के प्रति बनी वैक्सीन आदि होते है। इनके अतिरिक्त कुछ धातु और रासायनिक यौगिक होते है जो त्वचा मे पहुँच कर प्रोटीन से संयोजित होकर एलर्जीजन्य संस्पर्श त्वक्शोथ उत्पन्न करते है।

एन्टीबाँडी–मध्यस्थ एवं कोशिका–मध्यस्थ मिश्रित प्रतिकियायें :– इनके अन्तर्गत असंयोज्य या असंगत रक्त के आधान के परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रतिकिया तथा बहुत से स्वक्षम रोगों का समावेश होता है। असंयोज्य रक्त आधार में दाता के रक्त की लाल कोशिकाओ पर विद्यमान एन्टिजन प्रापक के रक्त प्लाज्मा में विद्यमान

एन्टीबॉडियों के साथ प्रतिक्रिया करते है जिससे लाल कोशिकाओं का समूहन हो जाता है और उनका रक्तापघटन हो जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न —

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1- _____ज्ञानेन्द्रियाँ का संबंध शरीर संतुलन से होती है।

2. बाहय जगत के ज्ञान की प्राप्ति विभिन्न प्रकार की_____के द्वारा ही संभव होती है।

3. मानव जीव का_____भाग कड़वे रस के प्रति संवेदनशील होता।

4. मानव नेत्र का आंतरिक भाग _____ कहलाता है

5. घ्राणेन्द्रियाँ _____का ज्ञान कराती है।

6. प्रतिरक्षा तंत्र को_____भी कहा जाता है।

7. रोगछमता (इम्यूनिटी) का अध्ययन____कहलाता है।

8. मानव शरीर में____प्रकार कि इम्यूनोग्लोबिन पाई जाति है।

9. एंटीजन की अनुक्रिया से___ उत्पन्न होते हैं।

11.10 सारांश – प्रिय पाठको उपरोक्त विवरण से आप जान चुके हैं कि ज्ञानेंद्रियाँ क्या है इन के कितने प्रकार हैं तथा प्रत्येक ज्ञानेंद्रिय की संरचना तथा कार्य विधि क्या है वस्तुतः शरीर के अंगों के मध्यम से बाहय जगत का ज्ञान होता है, उन्हें ज्ञानेंद्रियाँ कहा जाता है, प्रत्येक रानी ज्ञानेंद्रियाँ की अपने विशेष संरचना एवं कार्य होते हैं। त्वचा स्पर्श का ,नाक गंध का,जिछा स्वाद का ,आंख दृश्य का तथा कान ध्वनि (शब्द) का अनुभव एवं जानकारी उपलब्ध करवाते हैं । अतः स्पष्ट है कि अन्य संस्थानों की तरह ही ज्ञानेंद्रिय का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है

उपरोक्त विवरण से आप जान चुके होंगे कि प्रतिरक्षा तंत्र क्या है? इस के कितने भाग होते हैं। तथा रोग क्षमता क्या होती है? वस्तुतः शरीर में आक्रमण करने वाले सूक्ष्म रोगाणुओं से शरीर की सुरक्षा करने के लिए ईश्वर मानव शरीर को एक विशेष तंत्र दिया है जिसे शरीर प्रतीक्षा तंत्र की रक्षा दी जाती है। इस तंत्र का महत्वपूर्ण कार्य रोगाणुओं से शरीर की सुरक्षा करना होता है। तो पाठ़को इस प्रकार स्पष्ट है कि शरीर का वह महत्वपूर्ण तंत्र जो बाहय जीवाणुओं, विषाणुओ एवं रोगाणुओं से शरीर की सुरक्षा करता हुआ शरीर को स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाए रखने का महत्वपूर्ण कार्य करता है, प्रतिरक्षा तंत्र कहलाता है।

11.11 शब्दवाली –

- रिसेप्टर्स – तांत्रिका तंतु के अंतिम भागों की एक जाल जैसी संरचना जो संवेदना ओ को ग्रहण कर मस्तिष्क में पहुंचाने का कार्य करती हैं।
- द्विध्रुवीय – दो ध्रुव वाली
- ऑप्टिकल – आंख से संबंधित
- ऑल फेक्टरी – नाक से संबंधित
- उद्दीपक – जिसके कारण किसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न हो।
- लिम्फ (लसिका) – रक्त प्लाज्मा के सामान जल जैसे द्रव पदार्थ
- प्लीहा – एक प्रमुख लसिका अंग होता है, जो डायफ्राम के नीचे और पोन्क्रियाज के साथ स्थित होता है।
- थाइमस ग्रंथि – मानव शरीर की महत्वपूर्ण अंतः स्रावी ग्रंथि है,जो लिम्फोसाइट्स का निर्माण करती है।
- टॉंसिल्स – मनुष्य के गले में एक जोड़ी अर्थात संख्या में डोर टॉंसिल उपाधित होते हैं। जो मनुष्य पाचन व स्वसन क्रिया में उपस्थित रोगाणुओं को नष्ट करते हैं।
- रोग छमता – रोग के प्रति प्रतिरोधकशक्ति

11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर —

1.कर्ण(कान)

2. संवेदनाओ

3. पिछला भाग

4. रेटिना

5. गंध

6. लसिका तंत्र

7. रोग छमता विज्ञान

8. इम्यूनोलॉजी

9. 5

10. एंटीबॉडी

11.13 संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. रस्तोगी , डॉक्टर वीर बाला , (2016) जेब रसायन तथा कार्य की , केदार नाथ राम नाथ
2. गुप्ता , प्रो° अनन्त प्रकाश (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान , समित प्रकाशन आगरा
3. सक्सेना , ओ° पी° (2009) एनाटामी एंड फिजियोलॉजी , भासा भवन मथुरा
4. शर्मा , ड्रा° तारा चंद्र (1999) आयुर्वेदिय शरीर रचना विज्ञान , नादा पुस्तक भंडार रेलवे रोड रोतक
5. दीक्षित राजेश (2002) शरीर रचना क्रिया विज्ञान , भासा भवन मथुरा
6. गौड़ शीव कुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान , नाथ पुस्तक भंडार , रेलवे रोड रोटक

11.14 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न 1 – दृश्य इंद्रिय कर्णेन्द्रिय की रचना एवं क्रियाविधि को समझाइये

प्रश्न 2 – ज्ञानेंद्रिय क्या है? किन्हीं तीन ज्ञानेंद्रियों की संरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3 – प्रतिरक्षा तंत्र क्या है? इसके सहायक अंगों को समझाइए।

प्रश्न 4 – रोग प्रतिरोधक क्षमता का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई 12 मानव तंत्रिका तंत्र

इकाई की सरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 तंत्रिका तंत्र

12.4 सिनेप्य

12.5 केन्द्रीय तंत्रिका

- 12.5.1 मानव मस्तिष्क
- 12.5.2 सुषुम्ना या मेरुदंड

12.6 परिसरीय तंत्रिका तंत्र

- 12.6.1 कपालीय तंत्रिकाए
- 12.6.2 स्पाइनल तंत्रिकाएं

12.7 स्वायत्त तंत्रिका तंत्र

- 12.7.1 अनुकम्पी या सिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र
- 12.7.2 परानुकम्पी या पैरासिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र

12.8 सारांश

12.9 शब्दावली

12.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

12.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना –

प्रिय शिक्षार्थी इस इकाई में हम मानव तंत्रिका तंत्र के विषय में जानेंगे तथा केंद्रीय तंत्रिका तंत्र जो शरीर के सभी संस्थानों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है तथा सभी तंत्रों का नियंत्रणकर्ता माना जाता है। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में मस्तिष्क तथा सुषुम्ना का अध्ययन किया जाता है यह हमारे शरीर की महत्वपूर्ण गतिविधियों का नियमन नियंत्रण तथा संचालन करता है।

12.2 उद्देश्य – प्रिय विद्यार्थी प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- तंत्रिका तंत्र का अध्ययन कर सकेंगे।
- केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को स्पष्ट कर सकेगे ।
- मस्तिष्क के विभिन्न भागों को जान सकेंगे ।
- मेरुरज्जु की संरचना व कार्य प्रणाली का अध्ययन कर सकेंगे ।

12.3 तंत्रिका तंत्र – संरचना व कार्य

तंत्रिका तंत्र शरीर का एक महत्वपूर्ण तंत्र है जो संपूर्ण शरीर की तथा उसके विभिन्न भागों एवं अंगों की समस्त क्रियाओ का नियंत्रण नियमन तथा समन्वयन करता है। और समस्थिति (Homeostasis) बनाएं रखता है। शरीर के सभी ऐच्छिक एवं अनैच्छिक कार्यो पर नियंत्रण तथा समस्त संवेदनाओ को ग्रहण कर मस्तिष्क में पहुंचाने का कार्य इसी तंत्र का है। यह शरीर के समस्त अंगों के आंतरिक एवं बाह्य वातावरण के परिवर्तनों के अनुसार द्रुत समंजन संभव बनाता है तथा तंत्रिका आवेगों (Nerve impulse's) का संवहन करता है ।

तंत्रिका तंत्र शरीर की असंख्य कोशिकाओं की क्रियाओं में एक प्रकार का सामजंस्य उत्पन्न करता है ताकि संपूर्ण शरीर एक इकाई के रूप में कार्य कर सकें ।

तंत्रिका तंत्र तंत्रिका ऊतकों (Nervous Tissues) से बना होता है । जिनमें तंत्रिका कोशिकाओं या न्यूरॉन्स (Neurons) और इनसे संबंधित तंत्रिका तंतुओ (Nerve fibrè) तथा एक विशेष प्रकार के संयोजी उत्तक जिसे न्यूरोग्लिया (Neuroglia) कहते हैं, का समावेश होता है ।

- **Neuron न्यूरॉन (तंत्रिका कोशिका)** – एक तंत्रिका कोशिका अपने समस्त प्रवर्धित तंतुओ सहित न्यूरॉन (Neuron) कहलाती है। न्यूरॉन ही तंत्रिका तंत्र की

Structure of Neuron Anatomy

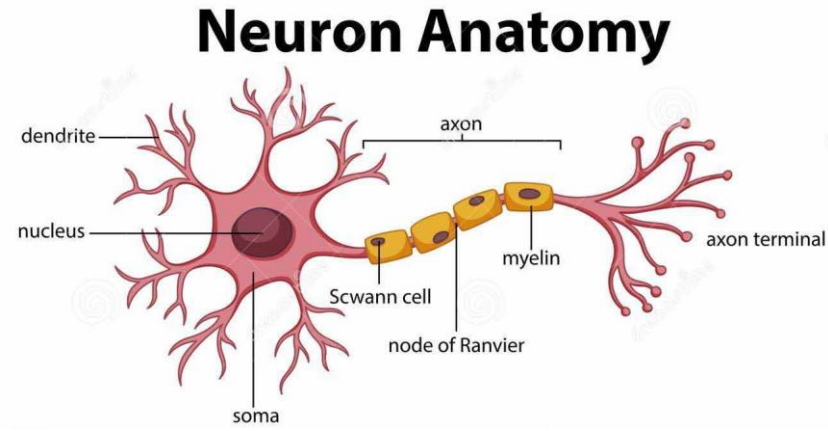

कार्यात्मक एवं रचनात्मक इकाई होती है प्रत्येक तंत्रिका कोशिका न्यूरॉन (Neuron) के मुख्यतः निम्न 2 भाग होते हैं रू–

1) पार्श्व तन्तु (Dendrites)

2) कोशिका काय (Cell body)

3) अक्ष तंतु (Axon)

4) पार्श्वतान्तु (Dendrites)

कोशिका काय (Cell Body / Cyton) – तंत्रिका कोशिका (न्यूरॉन) में एक बड़ा तथा अनियमित आकार का कोशिका काय (Cell Body) होता है, जिसके मध्य में एक बड़ा न्यूक्लियस होता है। इसके बाहर कणिकामय सरटोप्लाज्म रहता है। कोशिका काय में कई छोटे–छोटे प्रवर्ध होते हैं जिन्हें और पार्श्वत्न्तु (Dendrites) एवं अक्षतंतु (Axon) कहते हैं इन्हीं के द्वारा तंत्रिका आवेग कोशिका काम तक पहुंचते हैं अथवा उससे बाहर निकलते हैं l

अक्षतंतु (Axon) – अक्षतंतु चालक और अपवाही प्रवर्ध (effernt process) होता है तथा तंत्रिका आवेगो को कोशिका काय से दूर ले जाता है। इसका उदगम न्यूरॉन की कोशिका काय के विशेष स्थान (Axon & Hillock) से होता है, तथा अक्षतन्त्र को चारों ओर से माइलिनशीथ ढक कर रखती है।

अक्षतंतु या एक्सॉन में चारों ओर एक पतली झिल्ली होती है जिसे एक्सोलेमा कहते हैं यह कोशिका काय के साइटोप्लाज्म के प्रसार को बंद किए होती है एक्सॉन माइलिन से युक्त या माइलीन रहित, दो प्रकार का हो ता है। बड़े तथा परीसरीय तंत्रिकाओं के एक्सान के ऊपर श्वेत वसीय पदार्थ मायलीन का आवरण चढ़ा होता है। इसमें एक्सान की लंबाई में व्यवस्थित स्क्वैन कोशिकाओं की एक श्रृंखला होती है। स्क्वैन कोशिका

की सबसे बाहरी परत को तंत्रिकावरण या न्यूरिलेमा (neurolemma) कहा जाता है । मायलीन बीच–बीच में संकुचित होकर विभाजित हो जाता है। विभाजन के स्थान को नोड ऑफ रैनूवियर (Node Of Ranvier) कहते हैं। ये तंत्रिका आवेगो को शीघ्रता से संचालित होने में सहायता करते हैं। गंडिकापश्च (Postganglionic) तंतु तथा केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में कुछ छोटे तंतु माइलिन रहित होते हैं ।

पार्श्वतन्तु (Dendrite) – पार्श्वतन्तु (डेंड्राइट) सांवेदिनक तथा अभिवाही प्रवर्ध (Afferent) होते हैं l इनमें निसल कणिका (Nissl's gramules) विधमान रहते हैं l जबकि यह एक्सॉन में नहीं होते हैं l इस प्रकार के तंतु बहुत छोटे छोटे होते हैं, परंतु इनमें से बहुत सी शाखाएं फूटती हैं स तंत्रिका कोशिका (न्यूरॉन) में इनकी सत्यता भिन्न–भिन्न होती है l

तंत्रिका कोशिका में कई ध्रुव रहते हैं इनके अनुसार ही इनके नाम होते हैं जब इनमें एक भी ध्रुव नहीं रहता है, तो यह अध्रुवीय (Apolor) कहलाता है स एक ध्रुव वाले को एकध्रुवीय (Unipolor) कहते हैं दो ध्रुव वाले को द्विध्रुवीय (Bipolor) तथा अनेक ध्रुवो वाले को बहुध्रुवीय (Multipolor) कहते हैं स प्रत्येक प्रकार की कोशिका में एक एक्सान अवश्य रहता है, शेष सभी डेंड्राइड होते हैं l

12.4 सिनैप्स (Synapse) – दो न्यूरॉन के बीच के प्रकार्यक संबंध को सिनैप्स कहते हैं स्नैप्स पर एक अथवा अधिक न्यूरॉन के एक्सान के सिरे दूसरे न्यूरान के साइटोन या डेन्ड्राइट्स के संपर्क में रहते हैं l

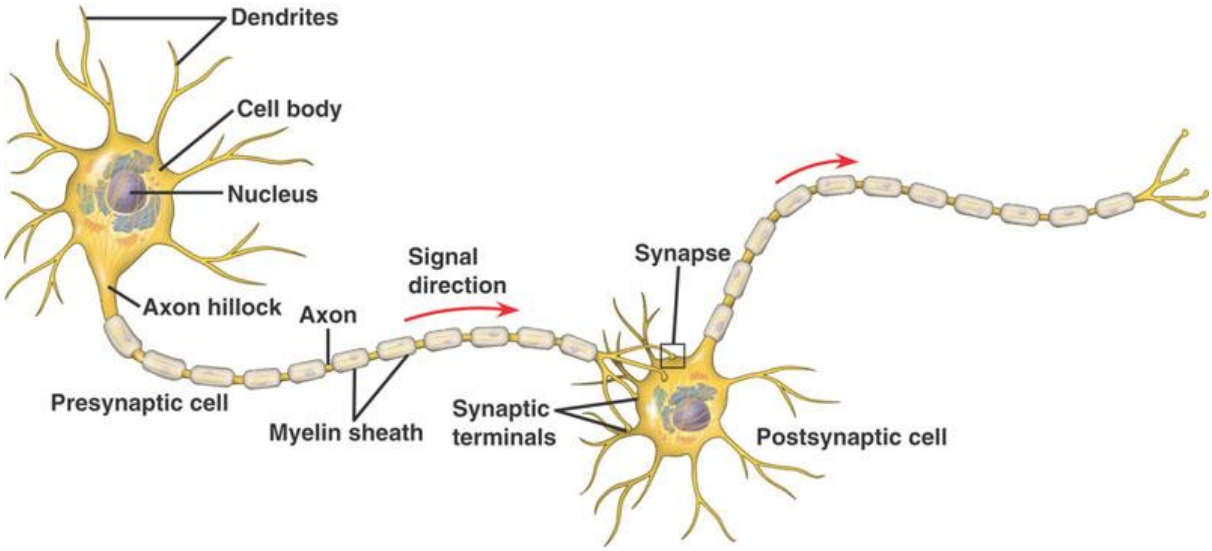

सिनैप्टिक संचारण की क्रियाविधि (Mechanism of synaptic Transmission) –सिनैप्स में से आवेग के संचारण को सिनेप्टिक् संचारण कहते हैं स यह रासायनिक या विधुत प्रेषण दोनों प्रकार से ही संपन्न होता है l

1– विधुत प्रेषण (Electrical Synapse) – विधुत प्रेषण में दो निकटवर्ती न्यूरॉन सिनेप्स करने वाले स्थान पर प्रत्यक्ष रूप से एक – दूसरे से पृथक होते हैं, किंतु फिर भी इनमें एक प्रकार का प्रभावी व स्थानीकृत परिपथ संयोजन होता है जिसके द्वारा आवेग एक न्यूरान से दूसरे न्यूरान में प्रेषित होते हैंl

2– रासायनिक प्रेषण (Chemical Synapse) – इसमें एक्सोन के सिरे द्वारा विशिष्ट प्रकार का रासायनिक पदार्थ संश्लेषण होता हैं जो तन्त्रिका आवेग के पहुॅचने पर विमुक्त होकर निकटवर्ती न्यूरॉन के डेण्ड्राइट की सतह पर स्थित एक विशिष्ट रसासयन ग्राही (Chemoreceptors) पर पहुॅच जाता हैं।

सिनैप्स पर होने वाले रासायनिक प्रेषण के अन्तगर्त दो प्रक्रियाये होती है :–

(i) तन्त्रिका स्राव (Neurosecretion) . इसके अन्तगर्त तन्त्रिका आवेग शीर्ष पर संग्रहित विशिष्ट रसायन संलग्न न्यूरॉन के बीच स्थान में विमुक्त हो जाता हैं।

(ii) रसायन अभिग्रहण (Chemoreceptor) . इसके अन्तगर्त प्रथम न्यूरॉन के एक्सोन द्वारा मुक्त विशिष्ट रसायन प्रेषित होकर दूसरे न्यूरॉन के डेण्ड्राइट पर स्थित आण्विक स्थानों पर आलाग्न होकर इसकी कोशिका कला के गुणों में परिवर्तन उत्पन्न कर देता हैं जिससे एक नया तन्त्रिका आवेग स्थापित हो जाता है।

तन्त्रिका तन्त्र के भाग :–

तन्त्रिका तन्त्र के निम्न तीन भाग होते है :–

(i) केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र (Central Nervous system)

(ii) परिसरीय तन्त्रिका तन्त्र (Peripheral Nervous system)

(iii) स्वायत्त तन्त्रिका त़न्त्र (Autonomic Nervous system)

12.5 केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र Central Nervous System (C.N.S.) – केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र, तन्त्रिका तन्त्र का वह भाग हैं जो बहुकोशिकीय जन्तुओं की सभी क्रियाओं पर नियन्त्रण नियमन करता है। इस भाग में मस्तिष्क (Brain) एंव सुषुम्ना/ मेरूदण्ड Spinal cord) का समावेश होता है तथा यह मस्तिष्कावरणों (Maninges) से पूर्णता ढका रहता है। इनमें वे केन्द्र भी स्थित हैं जहॉ से शरीर के भिन्न – भिन्न भागों के संचालन तथा गाति करने के लिए आवेग (Impulse) जाते हैं तथा वे आवेगी केन्द्र भी हैं जिनमें शरीर के आभ्यंतरंगो तथा अन्य भागों से भी आवेग पहुॅचते रहते है।

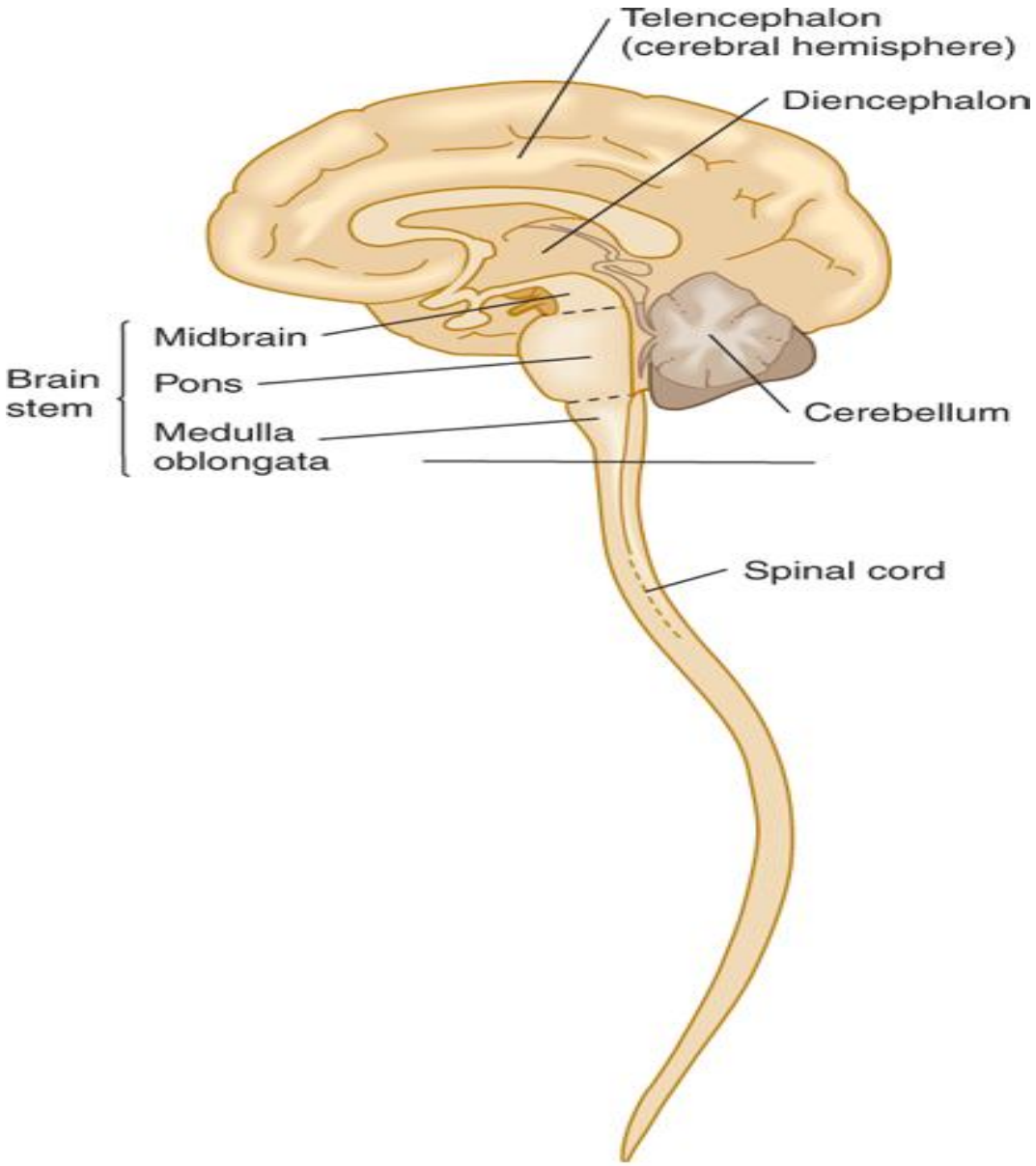

12.5.1 मस्तिष्क (Brain) . पूर्णरूप से विकसित मस्तिष्क शरीर के भार का लगभग 1/50 होता हैं, और कपाल गुहा में अवस्थित रहता है। विकास की आरम्भिक अवस्था में मस्तिष्क को तीन भागों में विभाजित किया गया है।

(i) अग्र मस्तिष्क (Forebrain)

(ii) मध्य मस्तिष्क (Midbrain)

(ii) पश्च मस्तिष्क (Hindbrain)

(i) अग मस्तिष्क (Forebrain) –यह मस्तिष्क का आगे का भाग हैं जिसमें निम्न रचनाएँ स्थित रहती है।

(i) प्रमस्तिष्क या सेरीर्ब्रम (Cerebrum) – यह केन्द्रीय प्रमुख भाग होता हैं। यह मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग होता है। प्रमस्तिष्क के ऊपर का भाग गुम्बज की तरह और नीचे का भाग समतल होता है। कपाल गुहा (cranial cavity) का अधिक भाग प्रमस्तिष्क से भरा रहता है। प्रमस्तिष्क एक गहरी लम्बवत् दरार या बिदर (longitudinal cerebral fissure) के द्वारा दाहिने एंव बायें अर्ध्दगोलाध्र (Hemisphore) में विभाजित रहता है। यह पृथक्करण आगे एंव पीछे के भाग पर पूर्ण होता है लेकिन मध्य में ये अर्ध्दगोलाध (Hemisphore) तन्त्रिक तन्तुओं की चौड़ी पट्टी के द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं। जिसे कार्पस कैलोसम (corpus callosum)कहते है। प्रमस्तिष्क की बाहरी सतह को प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स (cerebral cortex) कहते है। जो तन्त्रिका कोशिकाओं (nerve cells) का बना होता हैं और भूरे रंग का होता है। इसे ग्रे मैटर (grey matter) कहते है। प्रमस्तिष्क कार्टेक्स से नीचे का भाग तन्त्रिका तन्तुओं (एक्सॉन) से बना होता है और श्वेत रंग का होता है। जिसे व्हाइट मैटर (white matter) कहते है। प्रमस्तिष्क कार्टेक्स में बहुत से विभिन्न गहराइयों के खॉचे बने होते है। खॉचों के उभार को कर्णक (gyrus) कहते हैं और दवे हुए भाग को परिखा या विदरे (sulcus or fissure) कहते है। इससे प्रमस्तिष्क का सतह क्षेत्र अधिक बढ जाता है। सभी मनुष्यों में उभारों (gyrus) व दरारो (sulcus) की सामान्य रूप रेखा समान होती है। तीन मख्य दरारें (sulcus) प्रत्येक अर्धगोलार्ध को चार खण्डों (lobes) में विभाजित करती है। इनके नाम कपाल की उन अस्थिओं पर रखें गए है। जिनमें ये स्थित होते है। ये तीन दरारे निम्न है।

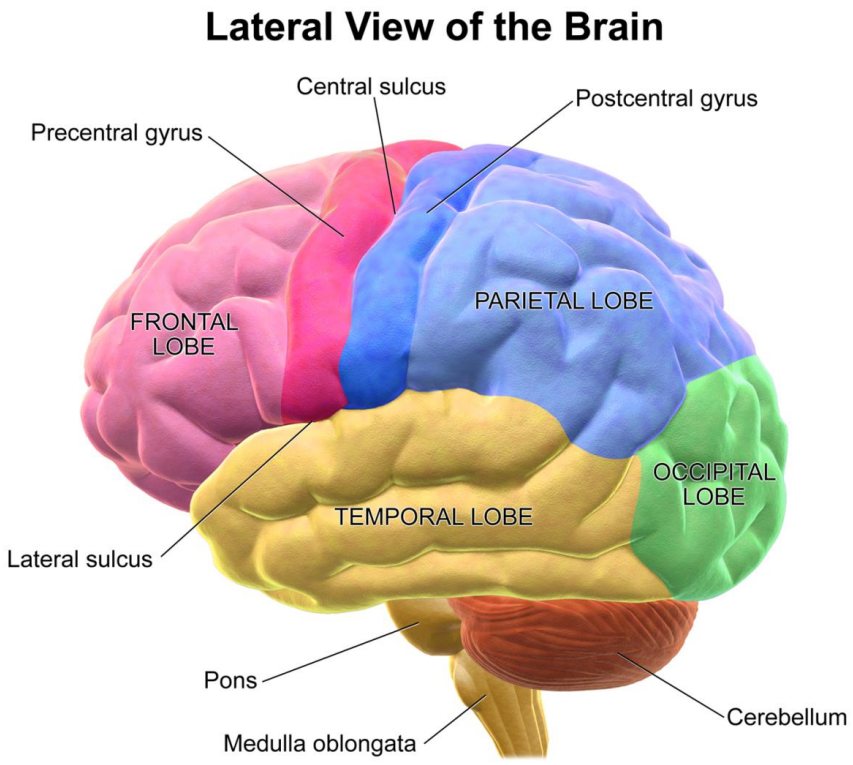

(।) **मध्य दरार (Central sulcus)** –यह अर्धगोलार्ध के ऊपरी भाग से नीचे एंव आगे की ओर पार्श्वीय के ठीक ऊपर तक फैली रहती है।

(ठ) **पार्श्वीय दरार (lateral sulcus**द्ध दृयह मस्तिष्क के सामने के निचले भाग के पीछे की ओर फैली रहती है

(ब) **पैराइटो ऑक्सीपिटल दरार (Parieto occipital sulcus) –** अर्धगोलार्ध के ऊपरी पिछले भाग के कुछ दूर तक नीचे और आगे की और फैली रहती है।

अर्धगोलार्ध के खण्ड (lobe) निम्न है

(i) फन्टल लोब (Frontal lobe) – यह मध्य दरार के समाने एंव पार्श्वीय दरार के ऊपर स्थित रहता है।

(ii) पैराइटल लोब (Parietal lobe) – यह मध्य दरार एंव पैराइटे ऑक्सिपिटल के बीच तथा पार्श्वीय दरार के ऊपर स्थित रहता है।

(iii) ऑक्सिपिटल लोब (Occipital lobe) – यह अर्धगोलार्ध का पिछला भाग बनाता है।

(vii) टेंम्पोरल लोब (Temporal lobe) – यह पार्श्वीय दरार के नीचे स्थित होता है और पीछे

ऑक्सिपिटल लोब तक फैली रहता है।

कार्य – प्रमस्तिष्क के दाहिने अर्धगोलार्ध द्वारा शरीर के बाएं भाग की तथा बाएं अर्धगोलार्ध द्वारा शरीर के दाहिने भाग की समस्त चेतन एवं अचेतन क्रियाएं संचालित एवं नियंत्रित होती हैं प्रमस्तिष्क बुद्धि, इच्छा, आवेश, स्मरणशक्ति जैसी उन अधिक विकसित क्षमताओं का स्थल है, जो मनुष्य को विशिष्ट रूप से संपन्न किए हुए हैं ।

प्रमस्तिष्क का विशिष्ट क्षेत्र विशेष प्रकार की क्रियाओं को संपादित करता है संज्ञानात्मक क्रियाओं का नियंत्रण एवं संपादन पैराइटल लोब एवं ऑक्सीपटल लोब द्वारा होता है तथा प्रेरक क्रियाओं का संचालन एवं नियंत्रण मध्य दरार (central sulcus) के अग्रभाग से लगे हुए पिरामिड के आकार की कोशिकाओं द्वारा होती है। सोचना, समझना, सीखना, चलना आदि का नियंत्रण एवं संचालन मस्तिष्क के कुछ विशेष संवेदी क्षेत्रों (sensory area) प्रेरक या गतिवाही क्षेत्र (motor area) एवं फ्रंटल साहचर्य क्षेत्र (frontal association area) द्वारा होता है ।

मध्य दरार(central sulcus) के ठीक सामने स्थित क्षेत्र को प्रिन्सेन्टरल गाइरस (precentral gyrus) कहते हैं, यह प्रेरक या गतिवाही क्षेत्र (motor area) है, जहां से केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के कई प्रेरक तंतु निकलते हैं मध्य दरार के ठीक पीछे संवेदी क्षेत्र (sensory area) स्थित होता है जिसे पोस्ट सेंट्रल गाइरस कहते हैं, इसकी कोशिकाओं में कई प्रकार के संवेदना का अर्थ समझा जाता है ।

2) बेसल गैंगलिया (Basal ganglia) – प्रत्येक प्रमस्तिष्कीय अर्धगोलार्ध में कॉपर्स कैलोसम के नीचे श्वेत द्रव्य (तंत्रिका तंतु) में धसे हुए भूरे द्रव्य (सेल बॉडीज) के कुछ छोटे–छोटे पिंड होते हैं,जिन्हें बेसल गैंगलिया कहा जाता है, यह है स

- कॉडेट (Caudate)
- लेन्टिकुलर(Lenticular)
- एमाइग्डैलॉइड न्यूक्लियाई(Amygdaloid nuclli)
- क्लौस्ट्रम(Claustrum)

इनमें से कॉर्डेट एवं लेन्टिकुलर न्यूक्लियाई मिलकर कॉपर एस्टीएटम (Corpus Striatum) का निर्माण करते हैं | इनका मुख्य कार्य गति(Motion) का समन्वय और शरीर की समस्थिति(Homeostocsis) बनाए रखना है इसमें विकार उत्पन्न होने से हाथ–पैरों में झटकेदार गतियॉ और अस्थिरता पैदा होती है |

3) थैलेमस (Thalamus) – प्रत्येक प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध के भीतर कॉपर्स कैलोसम के ठीक नीचे

तथा कॉडेट एवं लेन्टिकुलर न्यूक्लियाई के मध्यवर्ती और प्रत्येक तृतीय वेन्ट्रिकल के पार्श्व में तंत्रिका कोशिकाओं एवं तन्तुओ (Nerve bodies) का एक अंडाकार पिण्ड होता है | जिसे थैलेमस (thalamus) कहते हैं | यह प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स एवं स्पाइनल कॉर्ड (सुषुम्ना) के बीच एक महत्वपूर्ण पुनः प्रसारण केंद्र (relay station) के रूप में कार्य करता है | थैलेमस शरीर को प्राप्त होने वाली संवेदी आवेगो (sensory Impulses) का वर्गीकरण करने और प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स तक उन्हें पहुंचाने का कार्य करता है |

4) हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) – हाइपोथैलेमस, थैलेमस के नीचे और सामने तथा पिट्यूटरी ग्रंथि (Pituitary gland) के ठीक ऊपर स्थित तंत्रिका कोशिकाओं से बनी एक रचना है | यह तृतीय वेंट्रीकल की पार्श्वीय भित्ति और तल (floor)को बनाता है | हाइपोथैलेमस को दो भागों में विभक्त किया गया है | जो निम्न है–

a) पोस्टीरियर एवं लेटरल भाग

b) इन्टिरियर एवं सेंट्रल भाग

पोस्टीरियर एवं लेटरल भाग अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र (Sympathatic nervous system) के कार्यो को संपन्न करने में पूर्ण सहयोग देते हैं। एंटीरियर एवं सेंट्रल भाग परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र (parasympathetic nervous system) के कार्यों को संपन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त यह तंत्रिका तंतु को मेड्यूला आब्लागेटा (medulla oblongata) की ओर भेजकर श्वसन कार्यों में सहायता करता है, शरीर के ताप को नियमित तथा नियंत्रित करता है , वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा जल की पाचन क्रिया को नियमित रखता है एवं भावना (emotions) को नियंत्रित करने में भूमिका निभाता है | पिट्यूटरी ग्रंथि (Pituitary gland) शरीर की समस्त अंतः स्रावी ग्रंथियों (endocrinal glands) के कार्यों में सहायता करता है |

मस्तिष्क की गहराई में थैलेमस एवं बेसल गैंगलिया के बीच स्थिर उभरे हुए प्रेरक तन्तुओं (Motor fibres)से बना एक महत्वपूर्ण क्षेत्र होता है जिसे इंटरनल कैप्सूल कहा जाता है| जिसके माध्यम से समस्त तंत्रिका आवेगो (nerve Impulses) का संवहन होता है |

मध्यमस्तिष्क [Midbrain] – मध्यमस्तिष्क , अंर्ग–मस्तिक एवं पश्च – मस्तिक के बीच और मस्तिष्क स्तंभ (brain stem) के ऊपर स्थित रहता है। इसमें सरीबल पेड़नकल्स (cerebral penduncles) एवं कॉपोरा क्वार्डिजेमिना (Corpora quadrigemia) का समावेश होता है। यह मूल रूप से अग्र मस्तिष्क एवं पश्चमस्तिष्क को आपस में जोड़कर रखता है। सेरीबल पेडंकल्स डंठलनुमा रचनाएं होती है जो इसकी वेंडल सतह (ventral surface) पर स्थित होती है। कॉपेरा क्वाड्रीजेमीना डार्सल सतह पर चार गोलाकार उभार होते हैं जिन्हें दो जोड़ें संवेदी केंद्रों में विभक्त किया गया है एक को सुपीरियर कोलीकुली (superior coliculi) तथा दूसरों को

इन्फीरियर कोलीकुली (inferior colliculi) कहते हैं सुपीरियर कोलीकुली द्वारा किसी वस्तु को देखने की क्रिया संपन्न होती है तथा इन्फीरियर कोलीकुली द्वारा सुनने की प्रक्रिया संपन्न होती है। सेरीबल पेंडन्कलस के समीप लाल केंद्रक (red nucleus) स्थित रहता है। सुपीरियर कोलीकुली के बीच पीनियल बाड़ी (pineal body) स्थिर रहती है।

पश्च मस्तिष्क (**Hind brain**) – यह मस्तिक का सबसे पीछे का भाग होता है। जिसमें निम्न तीन भागों का समावेश रहता है।

1– पोन्स (Pons)

2– मेड्यूला आब्लांगेटा (medulla oblongata)

3–अनुमस्तिष्क (cerebellum)

1– पोन्स (**pons**)= यह अनुमस्तिष्क (cerebellum) के आगे मध्यमस्तिक के नीचे तथा मेड्यूला आब्लांगेटा के ऊपर स्थित रहता है। यह मस्तिक स्तंभ (brain stem) के बीच का भाग होता है।

इसके आधारी भाग को मिडील सेरीबेलर पेडन्कल (middle cerebellor peduncle) कहते है। इस भाग से होकर संवेदी एवं प्रेरक तंत्रिकाओं के तंतु गुजरते हैं, जो अनुमस्तिष्क को मध्य मस्तिष्क एवं मेड्यूला आब्लांगेटा से जोड़ते हैं। इसमें पांचवी, छठी और सातवीं कपालीय तंत्रिकाओ के न्यूक्लिआइ स्थित रहते हैं। यहीं से उनके कुछ तंतु कोशिकाओं से निकलकर तंत्रिका तंत्र के विभिन्न भागों में चले जाते हैं।

२– मेड्यूला आँब्लांगेटा (**medulla oblongata**) – यह मस्तिक स्तंभ (brain stem) का सबसे नीचे का भाग होता है, जो ऊपर की ओर पोन्स एवं नीचे की ओर स्पाइनल कार्ड(spinal cord) के बीच स्थित रहता है इसका आकार बेलनाकार दंड की तरह होता है, जो औसतन 2.5 सेमी लंबा होता है। इसका ऊपरी भाग कुछ फूला रहता है यह पोस्टीरियर क्रेनियल फोसा में स्थित होता है और ऑक्सीपिटल अस्थि के महा–रन्ध (foramen magnum) के ठीक नीचे स्पाइनल कार्ड से जुड़ जाता है । इसका बाह्य भाग श्वेत तथा भीतरी भाग भूरे द्रव्य का बना होता है।

कार्य =इसमें ह्रदय एवं श्वसनीय केंद्र स्थित होते हैं, जो ह्रदय एवं श्वसन क्रिया को नियंत्रित करते हैं। इसमें निद्रा , निगलने लारसाव (salivation) एवं बोलने की क्रियाओं के भी केंद्र होते हैं जो महत्वपूर्ण कार्यों का नियमन करते हैं।

3-अनुमस्तिष्क या सेरीबेलम (cerebellum)= यह प्रमस्तिष्क (cerebrum) के ऑक्सीपिटल लोब के नीचे पीछे की ओर उभरा हुआ भाग होता है, जो मेड्यूला आँब्लागेटा के ऊपर, पोन्स के पीछे कपालीप गुहा (crainal cavity) में स्थिर होता है तथा डॉर्सल सतह की और प्रमस्तिष्कीय अध्दगोलाध्दो से ढ़का रहता है। अनुमस्तिष्क दो अर्द्धगोलार्द्व मे विभक्त रहता है, परन्तु बीच में एक मध्यस्थ पट्टी जिसे वर्मिस कहते है, से

जुड़ा रहता है। इसमें प्रमस्तिष्क के समान भूरा द्रव्य बाहर की ओर और श्वेत द्रव्य भीतर की ओर स्थित होता है। अनुमस्तिष्क कार्टिक्स प्रमस्तिष्क कार्टेक्स की अपेक्षा अधिक पतला होता है। अनुमस्तिष्क का भार मस्तिष्क के कुल भार का 10वाँ भाग होता है।

अनुमस्तिष्क केन्द्रक श्वेत द्रव्य में गहराई में स्थित रहते है जो सुपीरियर सेरीबेलर पेडन्कल के द्वारा मध्य मस्तिष्क से मिडिल सेरीबेलर पेडन्कल के द्वारा पोन्स से तथा इन्फीरियर सेरीबेलर पेडन्कल के द्वारा मेडयूला आब्लांगेटा से जुड़े रहते है।

कार्य :– अनुमस्तिष्क ऐच्छिक पेशियों में समन्वय स्थापित करता है तथा शरीर की मुद्रा और उसके सन्तुलन को बनाएँ रखता है। यह पेशियो में तनाव की श्रेणी, सन्धियो की स्थिति और प्रमस्तिष्क कार्टेक्स से आने वाली जानकारी से सम्बन्धित संवेदी आवेगों को निरन्तर प्राप्त करता रहता है।

मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem) :– मध्य मस्तिष्क, पोन्स एवं मेडयूला आव्लांगेटा के एक साथ कई सामान्य कार्य है और इन्हे प्रायः सयुक्त रूप से मस्तिष्क स्तम्भ कहा जाता है। इस क्षेत्र में न्यूक्लिाई भी रहते है। जहाँ से कपालीय तन्त्रिकाएँ निकलती है।

मस्तिष्कावरण या मेनिन्जीस :– मस्तिष्कावरण या मेनिन्जीस सुरक्षात्मक झिल्लियाँ है, जो खोपड़ी एवं मस्तिष्क के बीच स्थित रहकर स्पाइनल कार्ड को पूर्ण रूप से ढ़के रहती है तथा इन्हे आघात से बचाती है। मेनिन्जीस तीन प्रकार की होती है, जो बाहर से भीतर की ओर निम्न प्रकार व्यवस्थित होती है–

1– ड्यूरामैटर (Duramater)

2– एराक्नॉइड मैटर (Arachnoid mater)

3– पाया मैटर (Piamater)

1– ड्यूरामैटर (Duramater):– डयूरामैटर सबसे ऊपरी आवरण होती है जो कठोर सघन संयोजी ऊपको की बनी होती है। इसमे दो परते होती है। बाह्य परत खोपड़ी की अन्दरूनी सतह का अस्तर है और पेरिआस्टियम बनाती है। फोरामन मैगनम के स्थान पर यह परत खोपड़ी की बाहरी सतह पर पेरिआस्टियम के रूप मे निरन्तर रहती है। इसकी आन्तरिक परत कुछ स्थानों पर अन्दर की ओर उभरी होती है और दोहरी परत बनाती है, जो मस्तिष्क के भागों को अलग करती है एवं उन्हे स्थिति मे बनाये रखने मे सहायता करती है। इससे चार शिरीय साइनस तथा चार वलय बनते है। फाक्स सेरेब्राइ एक ऐसा बलय है, जो दो प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धो के बीच स्थित रहता है। इसका ऊपरी सिरा सुपीरियर लोगिटयूडिनल या सैजाइटल शिरीय साइनस बनता है, जो मस्तिष्क से शिरीय रक्त उपलब्ध कराता है। इसका निचला सिरा इन्फीरियर

लेगिटयूडिनल शिरीय साइनस बनता है जो फाक्स सेरेब्राई से रक्त को खीच लेता है। टेन्टोरियम सेरेबेलाई वलय प्रमस्तिष्क एवं अनुमस्तिष्क के बीच स्थित रहता है। इस बलय से तीन साइनस बनते है। फाक्स सेरेबेलाई वलय दोनो अनुमस्तिष्क अर्द्धगोलार्द्धो के बीच में स्थित रहता है। डायफ्रैग्मा सेली वलय स्फैनाइड अस्थि में स्थित गड़ढे, जिसमें पिटयूटरी ग्रन्थि स्थित रहती है, जो ऊपर हाइपोथैलेमस से जुड़ी रहती है।

2– एराक्नॉइड मैटर (Arachnoid matter) :.. यह डयूरामैटर के ठीक नीचे स्थित पतला और कोमल आवरण होता है, जो तन्तु एवं लचीले ऊतको का बना होता है। यह एक संकरे सबडयूरल अवकाश द्वारा डयूरामैटर से पृथक रहता है। एराक्नाइड मैटर एवं पाया मैटर के बीच सब एराक्नाइड अवकाश रहता है। पायामैटर से जुड़ने के लिए एराक्नाइड से सब एराक्नाइड अवकाश से होते हुए बारीक ट्रैबीकुली निकलते है। सब एराक्नॉइड अवकाश में सेरिब्रोस्पाइनल द्रव विद्यमान रहता है जो मस्तिष्क एवं स्पाइनल कार्ड को आघातो से बचाता है।

3– पाया मैटर (Piamatter):– पायामैटर एराक्नाइड के नीचे वाला आवरण है। यह संयोजी ऊतक की एक पतली झिल्ली होती है। यह मस्तिष्क एवं स्पाइनल कार्ड की सतह के सम्पर्क में रहती है और मस्तिष्क के सभी मोड़ो को ढ़कती हुई प्रत्येक दरार में धँसी होती है।

मस्तिष्क के वेन्ट्रिकल्स :– मस्तिष्क में स्थित आन्तरिक गुहाये को वेन्ट्रिकल या निलय कहते है जिनमे सेरिब्रो–स्पाइनल द्रव भरा होता हैं ये निम्नलिखित प्रकार होते है ––

1– दो लेटरल वेन्ट्रिकल्स
2– तृतीय वेन्ट्रिकल्स
3– चतुर्थ वेन्ट्रिकल्स

दोनो दाँए एवं बाँए वेन्ट्रिकल्स बृहदाकर होते है, जो प्रमस्तिष्कीय अर्धगोलार्धो में स्थित रहते है। लेटरल वेन्ट्रिकल का मुख्य भाग प्रत्येक अर्धगोलार्धो के पैराइटल लोब में स्थित रहता है और वहाँ से एन्टीरियर हॉर्न के रूप मे फ्रन्टल लोब के अन्दर, पोस्टीरियर हार्न के रूप में आक्सिपिटल क्षेत्र के अन्दर तथा इन्फीरियर हॉर्न के रूप में टेम्पोरल लोब मं उभरा रहता है। प्रत्येक में लेटरल वेन्ट्रिकल इन्टरवेन्ट्रिकुलर फोरामन द्वारा नीचे थैलेमस के बीच में मध्य रेखा मे स्थित तृतीय वेन्ट्रिकल से सम्बन्धित रहते है। तृतीय वेन्ट्रिकल दाँए एवं बाए थैलेमस के बीच में लेटरल वेन्ट्रिकल के नीचे स्थित रहता है यह एक नलिका है जिसे प्रमस्तिष्कीय कुल्या कहते है द्वारा, चतुर्थ वेन्ट्रिकल से जुडता है। चतुर्थ वेन्ट्रिकल तृतीय वेन्ट्रिकल के नीचे पोन्स एवं मेडयूला तथा

सेरीबेलम के बीच में स्थित चौरस पिरामिडी गुहा होती हे। चतुर्थ वेन्ट्रिकल के पार्श्व में दो छिद्र होते है, जिन्हे फोरामिना ऑफ लुस्चका कहते है। मध्य रेखा में एक छिद्रं होता है जिसे फोरामेन ऑफ मैगेण्डी कहते है। इन तीनो छिद्रो के द्वारा वेन्ट्रिकल्स एवं सब एराक्नाइड अवकाश के बीच सम्बन्ध होता है। मेडयूला ऑब्लागेटा के अन्त सिरे पर चतुर्थ वेन्ट्रिकल्स पर चतुर्थ वेन्ट्रिकल एकदम सकरा हो जाता है और स्पाइरल कार्ड की केन्द्रीय नलिका के रूप मे जारी रहता है। ये सभी वेन्ट्रिकल्स सेरिका–स्पाइनल द्रव से भरे रहते है।

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव (carebrospinal fluid-CSF) :– सेरिब्रोस्पाइरल द्रव प्लाज्मा से मिलता–जुलता एक स्वच्छ, रंगहीन द्रव है जो सबएराक्नाइड अवकाश एवं मस्तिष्क के वेन्ट्रिकल्स में भरा रहता है। यह मस्तिष्क के वेन्ट्रिकल्स के ऊपरी भागों में स्थित कोशिकाओ की जालिका कोराइड प्लेक्सेस द्वारा स्रावित होता है। औसतन व्यक्ति में यह 720 मिली० प्रतिदिन की दर से स्रावित होता रहता है इसका दाब 60 से 140 मिली० जल तथा आपेक्षिक घनत्व 1005 होता है। दोनो लेटरल वेन्ट्रिकल्स से स्रावित होने के बाद यह द्रव इन्टर वेन्ट्रिकलर फोरामिन से होकर तृतीय वेन्ट्रिकल मे जाता है और इसके बाद एक संकरी नली एक्वीडक्ट ऑफ सिलवियस के माध्यम से चतुर्थ वेन्ट्रिकल मे जाता है। उसके बाद यह द्रव मैगेण्डी और लुस्चका के छिद्रो से होते हुए सब एराक्नाइड अवकाश में चला जाता है जिससे यह मस्तिष्क एवं स्पाइनल कार्ड की सम्पूर्ण सतह पर परिसंचरित होता रहता है। अंततः यह द्रव एराक्नाइड मैटर मे स्थित छोटे–छोटे उभारो जिन्हे एराक्नॉइड विल्लाइ या ग्रैन्यूलेशन्स कहते है, के माध्यम से मस्तिष्क शिरीय विवरो मे अवशोषित हो जाता है।

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव की संरचना :– सेरिब्रोस्पाइनल द्रव का संगठन निम्न प्रकार होता है

प्रोटीन :– 20–30 मिग्रा० प्रतिशत

ग्सूकोज :– 50–80 मिग्रा० प्रतिशत

यूरिया :– 10–30 मिग्रा० प्रतिशत

क्लोराइड :– 700–750 मिग्रा० प्रतिशत

इनके अतिरिक्त इसमें पोटैशियम, कैल्सियम, सोडियम, यूरिक अम्ल, सल्फेट, फास्फेट तथा क्रिएटिनिन भी मिले रहते है।

मस्तिष्क शोध आदि रोगों में इस द्रव की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे मस्तिष्क द्रव पर दबाव पड़ता है और ज्वर अधिक हो जाता है। ऐसी स्थिति मे लम्बर पंच्चर कर इस द्रव की थोड़ी मात्रा स्पाइनल कार्ड से निकाल कर जाँच की जाती है जिससे रोग का निदान करने में मदद मिलती है।

कार्य – सेरिब्रोस्पाइनल द्रव का मुख्य कार्य नाजुक तन्त्रिका ऊतकों एवं अस्थिल गुहाओ की भित्तियो के बीच पानी की गद्दीनुमा रचना बनाकर मस्तिष्क एवं स्पाइनल कार्ड की सुरक्षा करना है और आघात अवशोषक की भाति कार्य करता है। यह मस्तिष्क एवं स्पाइनल कार्ड के चारों ओर दबाव को स्थिर बनाये रखता है और व्यर्थ

एवं विषाक्त पदार्थो को वाहर ले जाता है। पोषक तत्व एवं ऑक्सीजन भी मस्तिष्क को इसी के द्वारा पहुँचाए जाते है।

12.5.2 सुषुम्ना या मेरुदण्ड (spinal cord)

शरीर के पृष्ठ भाग में ऊपर से देखने पर एक लंबी अस्थि करोटी से लेकर नितम्ब तक दिखाई देती है इसे रीढ़ भी कहते हैं यह केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का एक भाग है जो एक मोटी एवं दृढ़ रस्सी की भाति लम्बर वर्टिब्रा तक वर्टिब्रल कॉलम में सुरक्षित रहती हैं। वयस्क में इसकी लंबाई लगभग 45 सेमी होती है यह मेड्यूला ऑब्लांगेटा के निचले भाग से आरंभ होकर ऑक्सिपिटल अस्थि के महारंध्र – फोरमैन मैग्नम से निकल कर वर्टिब्रल कॉलम से होती हुई पहले लम्बर वर्टिब्रा के स्तर पर समाप्त होती हैं। यह अपने निचले सिरे पर शंकु आकार आकृति के रूप में संकरी हो जाती है तब इसे कोनस मेड्यूलेरिस (conus medullaris) कहते हैं, इसके सिरे से फाइलम टर्मिनेली (filum terminale) नीचे की और कॉक्सिक्स तक जाते हैं, जो तंत्रिका–मूलों (nerve roots) से घिरे रहते हैं कॉडा इक्विनि (cauda equine) कहते हैं।

स्पाइनल कार्ड (spinal cord) की सम्पूर्ण लंबाई से स्पाइनल तंत्रिकाओ के जोड़ें निकलते हैं। यह मोटाई में कुछ भिन्नता लिए रहती है सर्वाइकल (cervical) एवं लम्बर (lumbar) क्षेत्रों में यह अन्य भागो की अपेक्षा अधिक मोटी होती है जहाँ से यह हाथ पैरों को अत्यधिक तंत्रिका सम्पूर्ति करती है। स्पाइनल तंत्रिकाएं (spinal nerves) लम्बर फोरामेन एवं सैक्रल फोरामेन से होती हुई वर्टिब्रल कैनाल से बाहर निकलती है। स्पाइनल कार्ड में पीछे एवं सामने की और गहरी दरार (fissure) रहती है, जिससे यह प्रमस्तिष्क की भांति दाएं एवं बाएं भाग के रूप में पूर्णतरू रहती हैं।

मस्तिष्क के समान स्पाइनल कार्ड भी श्वेत एवं भूरे द्रव्य से बनी होती हैं परंतु इसमें श्वेत द्रव्य सतह पर तथा भूरा द्रव्य मध्य में रहता है। श्वेत द्रव्य स्पाइनल कार्ड एवं मस्तिष्क के बीच फैले हुए तंतुओ से बना होता है। इसमें प्रेरक एवं संवेदी तंतु (Motor and sensory fibres) होते हैं। प्रेरक तंतु प्रमस्तिष्क एवं अनुमस्तिष्क के प्रेरक केंद्रों से नीचे की ओर स्पाइनल कार्ड की प्रेरक कोशिकाओं तक फैले रहते हैं। संवेदी तंतु स्पाइनल कार्ड की संवेदी कोशिकाओं से कार्ड के ऊपर की और मस्तिष्क के संवेदी केंद्रों तक फैले रहते हैं। इन तंतुओ के द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों से मस्तिष्क को संवेदना पहुंचती है तथा मस्तिष्क से पेशियों को उत्तेजना पहुँचती है।

अनुप्रस्थ काट में स्पाइनल कार्ड का भूरा द्रव्य (groy matter) अंग्रेजी के 'H' अक्षर की आकृति में व्यवस्थित दिखाई देता है। भूरे द्रव्य के मध्य में ऊपर से नीचे तक एक छिद्र रहता है जिसे केंद्रीय नलिका (central canal) कहते हैं। यह नलिका मस्तिष्क के चतुर्थ वेन्द्रिकल से जुड़ी रहती है और इसमें सेरिब्रोस्पाइनल द्रव भरा रहता है। इस पूरे द्रव्य के 4 हॉर्न्स होते हैं दो आगे और दो पीछे। आगे की ओर

दोनों उभरे हुए भागो को एंटीरियर हॉर्न्स (anterior horns) कहते हैं। इनसे निकलने वाली तंत्रिकाए धड़, पैर एवं बाहुओ की पेशियों में जाती हैं, जो प्रेरक तंत्रिकाएं कहलाती हैं तथा पीछे की ओर उभरे दोनों भागो को पोस्टीरियर हॉर्न्स (posterior horns) कहते हैं। इनमें निकलने वाले तंतु शरीर के विभिन्न भागो की त्वचा में जाते हैं जो संवेदी तंत्रिकाएं (sensory nerves) कहलाती है। कॉर्टेक्स की भांति स्पाइनल कार्ड के भूरे द्रव्य में केवल तंत्रिका कोशिकाएं (Nerve cells) पाई जाती हैं।

1) स्पाइनल कार्ड में संवेदी तंत्रिका पथ (अभिवाही या आरोही) [sensory nerve tracts (afferent aur ascending) in the spinal card]

स्पाइनल कार्ड के माध्यम से मस्तिष्क में संवेदना मुख्यतः दो स्त्रोतों –(i) त्वचा, (i i) टेन्डन्स, पेशियों एवं संधियों से पहुंचते हैं । त्वचा में विघ्मान संवेदी रिसेप्टर्स या तंत्रिका अंत (nerve ending) को कुटेनियस रिसेप्टर्स कहा जाता है, जो दर्द, गर्मी, ठंड, स्पर्श एवं दबाव से उददीपित होते हैं । इनमें उत्पन्न तंत्रिका आवेग दो स्थानों पर पहुंचते हैं।

(i) तीन न्यूरॉन तंत्र द्वारा आवेग दूसरी ओर के प्रमस्तिष्क अर्धगोलार्ध के संवेदी क्षेत्र में पहुंचते हैं जहां इनकी अनुभूति और स्थिति (location) का पता चलता है तथा (ii) दो न्यूरॉन तंत्र द्वारा तंत्रिका आवेग उसी ओर के अनुमस्तिष्क की अर्धगोलार्ध में पहुंचते हैं ।

2) स्पाइनल कार्ड में प्रेरक तंत्रिका पथ (अपवाही या अवरोही) [motor nerve tracks (Efferent or descending) in the the spinal card]

न्यूरॉन जो तंत्रिका आवेगो को मस्तिष्क से दूर संचालित करते हैं प्रेरक न्यूरॉन्स (अपवाही या अवरोही) होते हैं प्रेरक न्यूरॉन के उद्दीपित होने से कंकालीय (रेखित, ऐच्छिक) एवं चिकनी (अनैच्छिक) तथा हृदपेशी में संकुचन होता है तथा ग्रंथियों के स्राव स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की तंत्रिकाओं द्वारा नियंत्रित रहते हैं।

- **ऐच्छिक पेशी गति (voluntary muscle movement) –**

अपवाही (efferent) या प्रेरक तंत्रिका आवेगो प्रमस्तिष्क से स्पाइनल कार्ड के तंत्रिका तंतु की पूलिकाओं (bundles of nerve fibres) से होकर शरीर की ऐच्छिक पेशियों में संचारित होते हैं जिनमें संकुचन होता है और संधियों में गति होती है यह मनुष्य की इच्छा पर निर्भर होती है।

मस्तिष्क से पेशियों तक जाने वाले प्रेरक पथ (motor pathways) दो प्रकार के न्यूरॉन्स से बने होते हैं जो निम्नलिखित हैं –

(i) पिरामिडल (कार्टिकोस्पाइनल) (pyramidal) – ये ऐच्छिक पेशियों के लिए आवेगों का मुख्य पथ होते हैं। ये इंटरनल कैप्सूल (internal capsule) से गुजरते हैं।

(ii) एक्स्ट्रा पिरामिड (extra pyramidd) – यह मस्तिष्क के कई भागों में बेसल न्यूक्लाई सहित एवं थैलेमस से जुड़े रहते हैं ये इंटरनल कैप्सूल से नहीं गुजरते हैं।

• **अनैच्छिक पेशी गति (involuntary muscle movement**) – ऊपरी प्रेरक न्यूरॉन की मध्यमस्तिष्क, मस्तिष्क स्तंभ, अनुमस्तिष्क अथवा स्पाइनल कार्ड में स्थित कोशिकाएं शरीर की मुद्रा (posture) एवं संतुलन को बनाए रखने से संबंधित पेशी सक्रियता (muscle activity) को प्रभावित करती है, पेशी गति में समन्वय बनाए रखती है तथा पेशी तान (muscle tone) को नियंत्रित करती हैं।

12.6 परिसरीय तंत्रिका तंत्र [peripheral nervous system]

यह तंत्रिका तंत्र का दूसरा महत्वपूर्ण भाग है इस भाग में मस्तिष्क से निकलने वाली 12 जोड़ी कपालिय तंत्रिकाओं एवं स्पाइनल कार्ड से निकलने वाली 31 जोड़ी स्पाइनल तंत्रिकाओं का समावेश होता है जिनमें शाखाएं निकलकर शरीर के विभिन्न अंगों एवं ऊतकों में पहुंचती है।

तंत्रिका (nerve)

तंत्रिका केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के बाहर मस्तिष्क एवं स्पाइनल कार्ड को शरीर के विभिन्न अंगों से संबंध करने वाली तंत्रिका तंतुओं की एक पूलिका '(बंडल) अथवा पूलिकाओं का एक समूह होता है । –

तंत्रिकाओं के प्रकार (**types of nervè**) – तंत्रिकाएं निम्न तीन प्रकार की होती हैं :–

1) संवेदी या अभिवाही तंत्रिकाएं (**sensory or Afferent nerves**) – इस प्रकार के तंत्रिकाएं आवेगो को शरीर के परिसर (Peripheri) स्पाइनल कार्ड और फिर वहां से मस्तिष्क में ले जाती है त्वचा में यह माइलिन रहित (non myelinated) है और बहुत बारीक सूत्रों (filament) में विभाजित हो जाती है यह सूत्र भी अनेकों शाखाओं में विभाजित हो जाते हैं जो संवेदी तंत्रिका अंत (sensory nerve endings) होते हैं उददीपित मिलने पर आवेग (impulse) उत्पन्न होता है जो मस्तिष्क को संचारित हो जाता है जहां पर अनुभूति का ज्ञान होता है।

2) प्रेरक या अपवाही तंत्रिकाएं (**motar or efferent nerves**) – इस प्रकार की तंत्रिका आएं मस्तिष्क स्पाइनल कार्ड तथा स्वायत्त गणिडकाओं (autonomic ganglia) में उत्पन्न होती हैं। ये तंत्रिकाएं आवेगो को मस्तिष्क एवं स्पाइनल कार्ड से परिसर या बाहर की ओर ले जाती हैं यह दो प्रकार की होती हैं l

(i)सोमैटिक तंत्रिकाएं(somatic nerves)

(ii)स्वायत्त तंत्रिका (autonomic nerves)

सोमेटिक तंत्रिकाए ऐच्छिक एवं प्रतिवर्त कंकालीय पेशी (reflex skeletal muscle) संकुचन में भूमिका निभाती हैं ग्रंथिल स्राव (glandular secretion) उत्पन्न करने में भूमिका निभाती हैं।

3) मिश्रित तंत्रिकाएं (mixed nerves) – स्पाइनल कार्ड में संवेदी एवं प्रेरक तंत्रिकाएं अलग–अलग वर्गों (group) या पथों (tracts) में व्यवस्थित रहती हैं स्पाइनल कार्ड से बाहर जब संवेदी एवं प्रेरक तंत्रिकाएं संयोजी ऊतक के उसी आवरण (same sheath of connective tissue) में बंद रहती हैं तो उन्हें मिश्रित तंत्रिकाएं कहा जाता है।

12.6.1 कपालीय तंत्रिकाएं [cranial nerves]

मस्तिष्क की इनफीरियर सतह में स्थित केंद्रकों से 12 जोड़ी कपालिय तंत्रिकाओं की उत्पत्ति होती है जिनमें से कुछ संवेदी कुछ प्रेरक तथा कुछ मिश्रित तंत्रिकाएं होती हैं उनमें नाम एवं संख्या निम्न क्रमानुसार है–

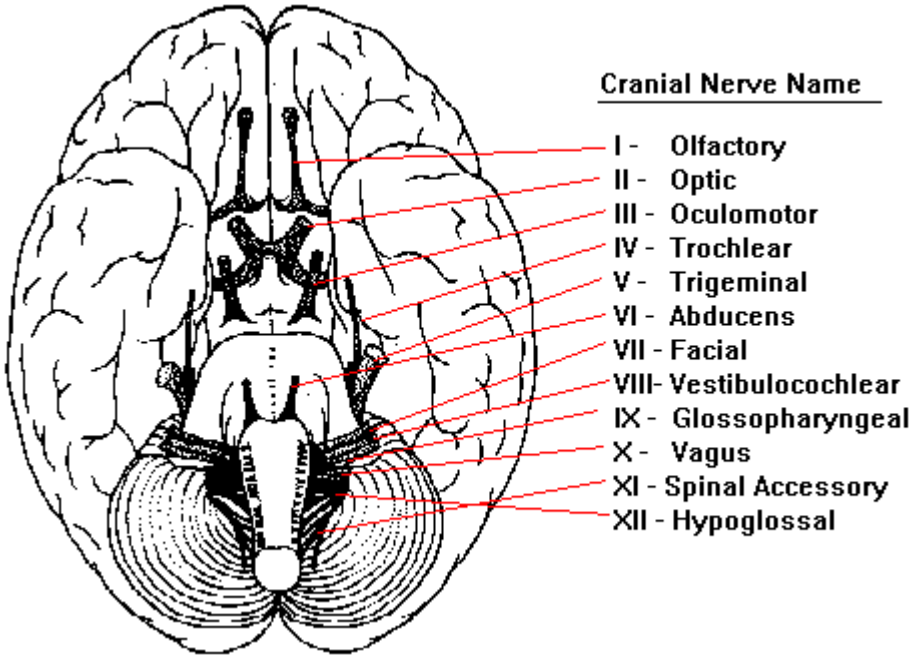

(i) ऑलफेक्टरी (olfactory)

(ii) ऑप्टिक (optic)

(iii) ऑक्यूलोमोटर (oculomotor)

(iv) ट्रॉक्लीयर (trochlear)

(v) ट्राइजेमिनल (trigeminal)

(vi) एब्ड्यूसेन्ट (Abducent)

(vii) फैशियल (facial)

(viii) वेस्टिब्यूकॉक्लीयर या ऑडिटरी (vestibulocochlear or auditory)

(ix) ग्लॉसोफैरिन्जियल (glossopharyngeal)

(x) वैगस (Vagus)

(xi) एक्सेसरी (accessory)

(xii) हाइपोग्लॉसल (hypoglossal)

इनमें से i , ii व viii तंत्रिका संवेदी होते हैं जो मस्तिष्क को केवल संवेदी आवेग(sensory impulses) पहुंचाती हैं। iii, iv ,vi, xi, xii नंबर की तंत्रिकाएं मस्तिष्क को केवल प्रेरक आवेग पहुंचाती हैं। v, vii, ix, x नंबर की तंत्रिकाओं में प्रेरक एवं संवेदी दोनों तरह के तंतु होते हैं अर्थात ये मिश्रित तंत्रिकाएं होती हैं।

12.6.2 स्पाइनल तंत्रिकाएं (**Spinal nerves**)

स्पाइनल कॉर्ड से 31 जोड़ी स्पाइनल तंत्रिकाएं निकलती हैं, जो सटी हुई वर्टिब्रीज से बने इंटरवर्टिब्रल रंध्रों से होकर वर्टिब्रल केनाल के बाहर निकलती हैं इनका नामकरण एवं वर्गीकरण उन्ही वर्टिब्री के अनुसार किया जाता है, जिनसे ये सम्बद्ध होती हैं। यह तंत्रिका निम्नलिखित हैं–

4. Spinal Nerves

- 31 nerves connecting the spinal cord and various body regions.
  - 8 paired cervical nerves
  - 12 paired thoracic nerves
  - 5 paired lumbar nerves
  - 5 paired sacral nerves
  - 1 pair of coccygeal nerves

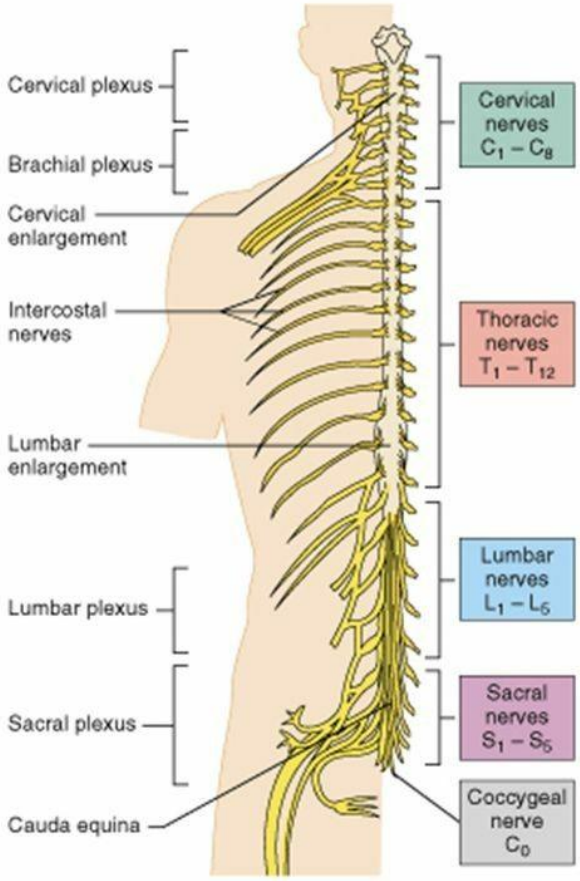

1) सर्विकल तंत्रिकाएं (cervical nerves) = 8 जोड़ी (8pair)

2) थॉरेसिक तंत्रिकाएं (thoracic nerves) = 12 जोड़ी(12 pair)

3) लम्बर तंत्रिकाएं (lumbar nerves) = 5 जोड़ी (5 pair)

4) सैक्रल तंत्रिकाएं (sacral nerves) = 5 जोड़ी (5 pair)

5) कॉक्सिजियल तंत्रिकाएं (coccygeal nerves) = 1 जोड़ी (1 pair)

स्पाइनल तंत्रिकाएं स्पाइनल कॉर्ड के दोनों ओर से उग्रमित होती है तथा इन्टरवर्टिब्रल रन्ध्रों से होकर बाहर निकल जाती है प्रत्येक तंत्रिका एक प्रेरक एवं एक संवेदी तंत्रिका मूल के संयोग से बनती है, इसलिए यह एक मिश्रित तंत्रिका होती है।

12.7 स्वायत्त तंत्रिका तंत्र {autonomic nervous system}

स्वायत्त या ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र, तंत्रिका तंत्र का स्वसंचालित या अनैच्छिक भाग होता है , जो शरीर में स्वतः (automatically) होने वाली क्रियाओं को नियंत्रित करता है। यह तंत्र शरीर के समस्त अंतरांगो(vescer), ग्रंथियों(glands) एवं रक्त वाहिकाओं की तंत्रिका आपूर्ति करता है । इसे अंतरांगी अपवाही या प्रेरक तंत्र (visceral efferent or motor system) भी कहा जाता है। इसका प्राथमिक कार्य शरीर का

होमियोस्टैसिस(homeostasis) बनाए रखने के लिए अंतरांगी क्रियाशीलता का नियमन करता है अंतरांगों का कार्य सामान्यतरू बिना संचेतना के होता रहता है ।

ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र का अधिकांश भाग अपवाही होता है, जिसकी अपवाही या प्रेरक तंत्रिकाएं मस्तिष्क में स्थित तंत्रिका कोशिकाओं (neurones) से उगमित होती है तथा मध्य मस्तिष्क(mid brain) एवं स्पाइनल कॉर्ड(spinal cord) के सैक्रल क्षेत्र के बीच विभिन्न स्तरों (levels) पर निकल आती है, जिनसे तंत्रिका तंतु निकलते हैं। इनमें से बहुत से उसी तंत्रिका आवरण में से होकर गुजरते हैं, जिसमें से होकर केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की परिसरीय तंत्रिकाएं उन अंगों तक पहुंचने के लिए गुजरती हैं जिनकी वे तंत्रिका आपूर्ति करती हैं। इनके अतिरिक्त ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र में बहुत सी गेंग्लिया–तंत्रिका कोशिकाओं के समूह होती हैं जो वर्टिब्रल कॉलम के पास अंतरांगों के पास में अथवा उनकी भित्तियों में पाई जाती हैं। मस्तिष्क एवं स्पाइनल कार्ड से निकलकर गेंग्लिया तक पहुँचने वाले तंत्रिका तंतु प्रीगेग्लियोनिक तंतु कहलाते हैं तथा गेंग्लिया से निकलकर अन्तरांगों की तंत्रिका आपूर्ति करने वाले तंतु पोस्टगेग्लियोनिक तंतु कहलाते हैं।

मस्तिष्क एवं स्पाइनल कार्ड में स्थित न्यूरॉन्स से ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र का केंद्रीय भाग तथा तंत्रिका तंतुओं एवं गेंग्लिया से परिसरीय भाग बनता है। ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र को दो भागों में विभाजित किया गया है ÷

1) अनुकम्पी या सिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र (sympathetic nervous system or thoracolumbar outflow)

2) परानुकम्पी या पैरासिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र (parasympathetic nervous system or craniosacral outflow)

उपरोक्त भागों में संरचनात्मक एवं क्रियात्मक दोनों तरह के अंतर होते हैं, ये सामान्यतरू एक–दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं, परंतु शरीर में समस्थिति (homeostasis) बनाए रखते हैं। सिम्पेथेटिक सक्रियता तनाव युक्त दशाओं(stressful situations) में प्रभावी होती है तथा पैरासिम्पेथेटिक सक्रियता विश्राम के दौरान होती है।

प्रत्येक भाग में इसके परिसरीय पथों (pathway) जो, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र एवं इफेक्टर अंगों (चिकनी पेशी, हृदपेशी एवं ग्रंथियों) के बीच होते हैं, में दो अभिवाही (efferent) न्यूरॉन्स होते हैं जो निम्नलिखित होते हैं÷

(i) प्रीगेंग्लियोनिक न्यूरॉन्स (Preganglionic neurones)

(ii) पोस्टगेंग्लियोनिक न्यूरॉन्स (postganglionic neurones)

प्रीगेंग्लियोनिक न्यूरॉन की कोशिका मस्तिष्क या स्पाइनल कार्ड में होती है। इसके एक्सॉन टर्मिनल केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के बाहर ऑटोनॉमिक गेंग्लियोंन में पोस्टगेंग्लियोनिक न्यूरॉन की कोशिका के साथ मिल जाते हैं। पोस्टगेंग्लियोनिक न्यूरॉन इफेक्टर अंगों को आवेगो का संचारण करते हैं।

गेंग्लिया (**ganglia**)

तंत्रिका कोशिकाओं के समूह को गेंग्लियोन कहा जाता है। शरीर में विभिन्न तरह की गेंग्लिया होती है। उदाहरण के लिये, पश्चमूल की गेग्लियोंन में प्राथमिक संवेदी न्यूरॉन्स की कोशिकाएं विद्यमान होती हैं किंतु गेंग्लियोन के अंदर कैसा भी तंतु मिल (synapsas) नहीं होता है। जबकि ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र की गेंग्लिया में अधिकांश तंतु जो गेंग्लिया में प्रवेश करते हैं वे वहाँ स्थित पोस्टगेंग्लियोनिक न्यूरॉन्स की एक या एक से अधिक कोशिकाओं के साथ सिनेप्सेस बनाते हैं । दूसरा अंतर यह है कि पश्च मूल गेंग्लियोन में संवेदी न्यूरॉन कोशिकाएं विधमान होती हैं , जबकि ऑटोनॉमिक गेंग्लिया में प्रेरक न्यूरॉन कोशिकाएं होती हैं।

1) सिम्पेथेटिक गेंग्लिया (sympathetic ganglia) – इनमें गेंग्लिया के निम्न दो वर्ग होते हैं –

(i) वर्टिब्रल (vertebral)

(ii) प्रीएओर्टिक (preaortic)

वर्टिब्रल गेंग्लिया, वर्टिब्रल कॉलम के साथ–साथ दोनों ओर स्थित होते हैं। यह गेंग्लिया तंत्रिका ऊतक के तंतुओं द्वारा एक–दूसरे से माला की तरह जुड़े रहते हैं इसलिए इसे 'वर्टिब्रल या सिम्पेथेटिक श्रंखला' भी कहते हैं। गेंग्लिया की यह श्रंखला कपाल के नीचे से प्रारंभ होकर कॉक्सिक्स के अंत तक फैली होती है।प्रीएरोर्टिक गेंग्लिया महाधमनी एवं इसकी मुख्य शाखाओ के निकट गुच्छों में स्थित होती है। वर्टिब्रल गेंग्लिया के समान प्रीएआर्टिक गेंग्लिया में पोस्टगेंग्लियोनिक सिम्पेथेटिक तंत्रिका कोशिकाओ का समावेश होता है।

2) पेरासिम्पेथेटिक गेंग्लिया (parasympathetic ganglia) – इनमें गेंग्लियाओं के दो वर्ग सम्बद्ध रहते हैं। पहले वर्ग में सिर में चार छोटी–छोटी गेंग्लिया होती हैं। दूसरे वर्ग की गेंग्लिया उन विशिष्ट अंगों के समीप या उनमें स्थित रहते हैं, जो उनकी आपूर्ति करती है।

 # आटोनॉमिक प्लेक्सेस (autonomic plexuses) –

कुछ विशिष्ट स्थानों पर पोस्टगेंग्लियोनिक तंत्रिका कोशिकाओं की गेंग्लिया से बेलनाकार तंत्रिका तंतु निकले होते हैं तथा शाखामयी जलिका में व्यवस्थित रहते हैं जिन्हें आटोनॉमिक तंत्रिका प्लेक्सस कहा जाता है। ये निम्नलिखित होते हैं–

कार्डियक प्लेक्सस (cardiar plexus) = यह ह्रदय के आघार (base) से निकालने वाली र्वहद रक्त वाहिकाओ मे तथा बाये एर्टियम की सतह पर स्थित है|

सीलियक प्लेक्सस (Celiac plexus) – इसे सोलर प्लेक्सस भी कहा जाता है। यह केंद्रीय तंत्रिका तंतु के बाहर तंत्रिका कोशिकाओं का सबसे बड़ा पिण्ड होता है। यह अमाशय के पीछे सीलियक धमनी एवं इसकी शाखाओं के चारों ओर महाधमनी पर स्थित होता है।

हाइपोगैस्ट्रिक प्लेक्सस (hypogastric plexuṣ) –यह सीलियक फ्लेक्सस को नीचे– नीचे पेल्विक फ्लेक्सस से जोड़ता है।

एन्टेरिक प्लेक्सेस (enteric plexus) – इस प्लेक्सस में सिम्पेथेटिक एवं पेरासिम्पेथेटिक दोनों तरह के तंतु होते हैं तथा ये पाचन तंत्र की लोंगिट्यूडिनल एवं सर्कुलर पेशियों के बीच स्थित होते हैं।

कैरोटिड प्लेक्सेस (carotid plexus) – ग्रीवा क्षेत्र में सर्वाइकल सिंपैथेटिक गेंग्लिया से तंतु निकलकर कैरोटीन धमनियाँ एवं उनकी शाखाओं के चारों ओर जालिका बनाते हैं।

12.7.1 सिंपैथेटिक (अनुकम्पी) ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र [sympathetic autonomic nervous system,

इस तंत्र को श्वक्ष–कटि–भाग भी कहा जाता है, इसमें अनुकम्पी तंत्रिकाओं का समावेश होता है, जो कि स्पाइनल कार्ड के सारे थॉरैसिक एवं लम्बर भाग के भूरे द्रव्य के लेटरल हार्न में स्थित कोशिकाओं से निकलकर वर्टिब्रल कॉलम के सामने दोनों ओर स्थित होती हैं। दोनों ओर वर्टिब्रल `कॉलम से बाहर आकर अनुकम्पी तंत्रिकाओं के तंतु सिंपैथेटिक श्रंखला के गेंग्लिया में प्रवेश करते हैं, जिन्हें प्रीगेंग्लियोनिक तंतु कहा जाता है। इन गेंग्लिया से फिर तंत्रिका तंतु निकलकर विभिन्न अंगों में पहुंचते हैं, जिन्हें पोस्टगेंग्लियोनिक तंतु कहा जाता है।

सिंपैथेटिक श्रंखला में विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार इसके सर्वाइकल् थॉरैसिक, लम्बर एवं पेल्विक 4 भाग होते हैं, जिनमें गेंग्लिया जोड़े के रूप में व्यवस्थित रहती हैं। सर्वाइकल भाग में 3 जोड़ी सर्वाइकल गेंग्लिया, थॉरैसिक भाग में 11 जोड़ी थॉरैसिक गेंग्लिया ,लम्बर भाग में 4 जोड़ी लम्बर गेंग्लिया एवं पेल्विक भाग में 4 जोड़ी सैक्रल गेंग्लिया होती है। इस प्रकार 22 जोड़ी गेंग्लिया सिंपैथेटिक श्रंखला में व्यवस्थित रहती हैं, जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से स्पाइनल कार्ड के माध्यम से जुड़ी रहती है। अन्य सिंपैथेटिक गेंग्लिया अपने तंतुओं द्वारा इसी सिंपैथेटिक श्रखला से जुड़ी रहती हैं और सिंपैथेटिक प्लेक्सस बनाती है।

शरीर के विभिन्न अंगों पर सिंपैथेटिक (अनुकम्पी) प्रभाव (**sympathetic effects on various parts of the body**) – सिंम्पैथेटिक तंत्रिकाओं द्वारा शरीर के अनेक अंगों की क्रियाओं का नियंत्रण एवं नियमन होता है । क्यूटेनियस तंत्रिकाओ के साथ मिलकर यह त्वचा की अनैच्छिक पेशियों से क्रिया कराती हैं। त्वचा स्थित रक्तवाहिकाएँ इनके उद्दीपन से ही संकुचित होती हैं। सिंपैथेटिक तंत्रिका की सक्रियता के फलस्वरूप शरीर के विभिन्न अंगों में निम्नलिखित प्रभाव होते हैं।

' नेत्र (eye)

उपतारा (Iris) – सिलियरी पेशियों का सी शिथिलन हो जाने के परिणाम स्वरूप पुतलियां फैल जाती हैं।

अश्रुस्रावी ग्रंथियां (lacrimal gland) – स्राव (आंसू)निकलना कम हो जाता है।

' लार ग्रंथियां (salivary glands) – गाढी, चिपचिपी (viscous) लार हो जाती है।

' मुख तथा नासिका की श्लेष्मकला (mucosa) – श्लेष्मा का स्राव होना कम हो जाता है।

' फेफड़े (श्वासनलीयाँ) (bronchial tubes) – श्वासनलिया फैल जाती हैं (bronchodilation)

' हृदय (heart) – हृदय गति तीव्र हो जाती है तथा रक्तदाब बढ़ जाता है, कॉरोनरी धमनिया विस्फारित(dilate) हो जाती हैं, ऐच्छिक पेशियों को रक्त आपूर्ति बढ़ जाती है।

' यकृत (liver) – ग्लाइकोजन ग्लूकोज में परिवर्तित हो जाता है जिससे शरीर को शक्ति मिलती है।

' आमाशय (stomach) – पाचक रस(gastric juice) का उत्पादन कम हो जाता है फलस्वरुप पाचन में विलम्ब होता है।

' अग्न्याशय (Pancreas) – अग्न्याशय रस एवं इंसुलिन हार्मोन का स्राव कम हो जाता है।

' आँन्त्र भित्तियां (intestinal walls) – शिथिल हो जाती है क्रमाकुंचक गतियां कम हो जाता है। संकोचिनियाँ संकुचित हो जाती है।

' एड्रीनल ग्रंथियाँ – एड्रीनेलिन एवं नॉरएड्रीनेलिन हार्मोन स्रावित हैं।

' मूत्राशय(urinary bladder) – मूत्राशयिक भित्तियां शिथिल हो जाती हैं तथा मूत्रमार्गीय संकोचिनी संकुचित हो जाती है। जिससे मूत्रण में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

' स्वेद ग्रंथियां (Sweat glands) – स्राव (पसीना) बढ़ जाता है।

' जननांग (sexual organs) – रक्तवाहिकाएं संकुचित हो जाती हैं जिससे उनकी कार्य क्षमता कम हो जाती है।

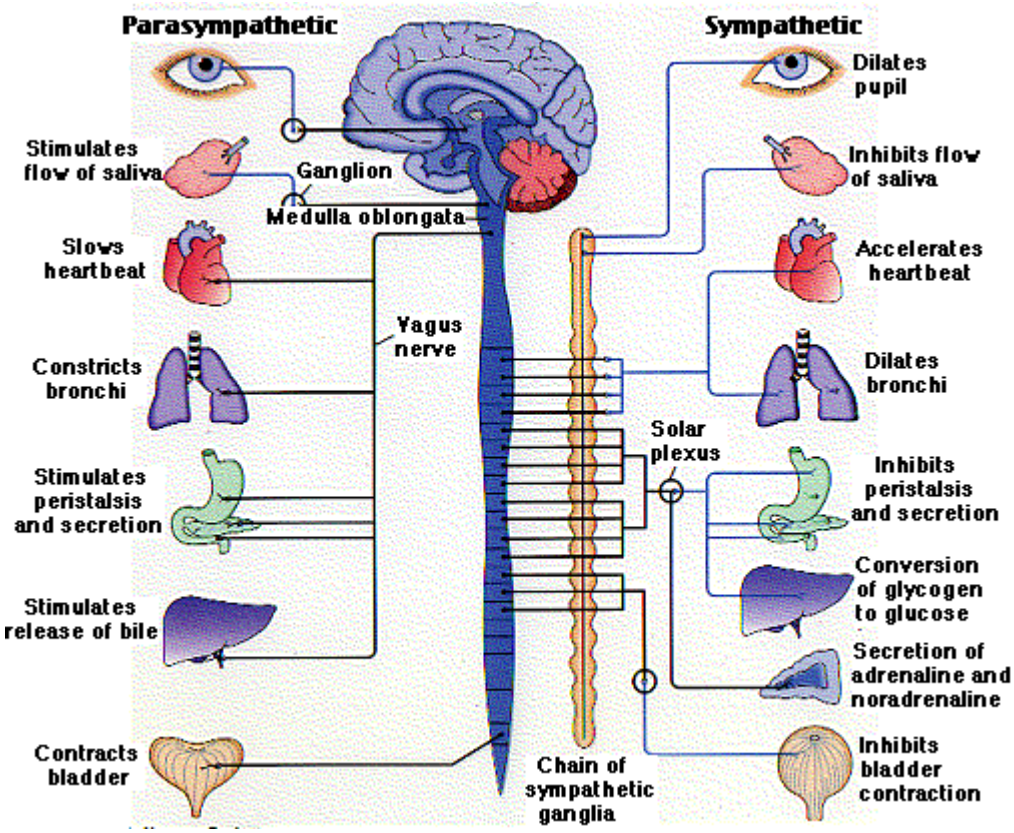

12.7.2 पैरासिंपैथेटिक (परानुकम्पी) ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र (parasympathetic autonomic nervous system)

इस तंत्र को श्कपालत्रिक विभाग (craniosacral division) भी कहते हैं। इसमें पराअनुकम्पी कोशिकाओं, तंत्रिका तंतुओं एवं गेग्लियाओं का समावेश होता है। परानुकम्पी कोशिकाएं मस्तिष्क स्तंभ (brain stem) तथा स्पाइनल कार्ड के सैक्रल भाग में स्थित होती हैं। कपालीय भाग(cranial portion) सिर, ग्रीवा, वक्ष एवं अधिकांश उदरीय अन्तरांगों की परानुकम्पी तंत्रिका आपूर्ति करता है तथा सैक्रल भाग निम्नोदर (lower abdomen) एवं श्रोणि(pelvis) के अन्तरांगों की आपूर्ति करता है।

पैरासिम्पेथैटिक डिवीजन के कपालिय भाग से निकलने वाले प्रीगेंग्लियोनिक तंन्तु तीसरी (iii), सातवीं (vii), नौवीं (ix), एवं दसवीं (x) कपालीय तंत्रिकाओं के भाग होते हैं। कपालीय तंत्रिकाओं के भाग होते है। ये कपालीय तंत्रिकाएं मध्य मस्तिष्क,पोन्स एवं मेड्यूला में स्थित केंद्रकों से उदगमित होती है और मस्तिष्क से बाहर शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचकर इनके तन्तुओ का अंत हो जाता है।सैक्रल भाग से निकलने वाले प्रीगेंग्लियोनिक तन्तु स्पाइनल कार्ड को दूसरी् तीसरी एवं चौथी स्पाइनल तंत्रिका के अग्रमूलो के रुप में छोड़ते हैं। वे अलग तंत्रिका के रूप में नहीं रहते।

मध्य मस्तिष्क में स्थित कोशिकाओं से आने वाले प्रीगेंग्लियोनिक तंतु तीसरी कपालीय या ओक्युलोमोटर तंत्रिका के केंद्र से निकलते हैं और सिलियरी गेंग्लियोन में मिलते हैं।पोस्ट गेंग्लियोनिक एक्सॉन टर्मिनल पुतली एवं सिलियरी पेशियों की आपूर्ति करती हैं, जिससे नेत्र की पुतली संकुचित और प्रसारित होती है। फेशियल तंत्रिका जो पोन्स में स्थित होती है, के परानुकंपी तंतु अवअधोहनुज (Submendibular) जीव्हा के नीचे स्थित लार ग्रंथियों, अश्रु प्रवाही ग्रंथियों जो आंसू स्रावित करती हैं, तथा अन्य ग्रंथियों, जो नासिका एवं मुखीय गुहाओं में स्थित रहती हैं, की तंत्रिका आपूर्ति करती है। मेड्यूला में स्थित सोफेरिंजियल तंत्रिका के परानुकम्पी तंतु पैरोडिक ग्रंथियों जो लार स्रावित करती है, की तंत्रिका आपूर्ति करते हैं। मेड्यूला ऑब्लांगेटा के डॉर्सल वेगस न्यूक्लियस से उगमित होने वाली वेगस तंत्रिका के परानुकम्पी तंतु हृदय, फेंफड़े,रक्त वाहिकाएं, पित्ताशय ,यकृत, अग्नाशय, गुर्दे, ग्रासनली, आमाशय ,छोटी आंत एवं बड़ी आंत के पहले आधे भाग की तंत्रिका आपूर्ति करते हैं।

स्पाइनल कॉर्ड के सैक्रल भाग से निचले वाले परानुकंपी तंतु तीसरी एवं चौथी सैक्रल स्पाइनल तंत्रिकाओं की कोशिकाओं से निकलते हैं, जो निचली बड़ी आंत, गर्भाशय, जननांगों, मूत्राशय एवं यूरेथ्रा की संकोचिनी पेशियों तथा गुर्दा की आंतरिक संकोचिनी की तंत्रिका आपूर्ति करते हैं।

पैरा सिंपैथेटिक तंत्रिका की सक्रियता के फलस्वरूप शरीर के विभिन्न अंगों में निम्नलिखित प्रभाव होते हैं।

' नेत्र (उपतारा या आइरिस) – वृत्ताकार पेशी तंतु संकुचित होने से पुतली संकीर्ण(constrict) हो जाती है। पलकों की लिवेटर पल्पीब्री (levator palpebrae) पर प्रभाव पड़ने से पलकें बंद होने लगती हैं।

' लार ग्रंथियाँ – स्राव बढ जाता है, पतली, पनीली लार हो जाती है।

' फेफड़े (श्वास नलियाँ) – श्वास नलियाँ संकीर्ण हो जाती है। (Bronchoconstriction)

' हृदय – हृदय गति घट जाती है, कॉरोनरी धमनियाँ संकीर्ण हो जाती हैं, कंकालीय या एच्छिक पेशियों की रक्त आपूर्ति घट जाती है।

' अग्न्याशय – अग्न्याशयी रस एवं इंसुलिनन हॉर्मोन का स्राव बढ़ जाता है।

' अमाशय – पाचक रस (gastric juice) का श्रावण बढ जाता है तथा अमाशय की गतिशीलता बढ़ जाती है।

' आँत्र भित्तियां – संकुचन(constraction) होता है, क्रमांकुचन (peristalsis) गतियाँ बढ़ जाती हैं, संकोचनियाँ (sphincter) शिथिल हो जाती हैं।

' गुर्दे – मूत्र का श्रावण बढ जाता है।

' मूत्राशय – मूत्राशयिक बत्तियाँ संकुचित हो जाती हैं, मूत्रमार्गीय संकोचिनी शिथिल हो जाती है, परिणाम स्वरूप मूत्रण (urination) होता है।

' मलाशय – आंतरिक गुदीय संकोचिनी शिथिल हो जाती है तथा मलाशय संकुचिते हो जाता है, परिणाम स्वरूप मल विसर्जन हो जाता है।

' स्वेद ग्रंथियाँ – कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

' जननांग (sexual organs) – जननांगों में रक्त वाहिनीयों के विस्फारित हो जाने से रक्त परिसंचरण बढ़ जाता है, परिणाम स्वरूप पुरुषों में शिश्नोत्थान (eraction) होता है तथा स्त्रियों के जननांगों में चिकनापन (lubrication) हो जाता है।

 # स्वायत्त ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र के कार्य (functions of autonomic nervous system) – शरीर के अधिकांश आंतरिक अंगों में ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र के सिंपैथेटिक एवं पैरा सिंपैथेटिक दोनों डिवीजनों की तंत्रिकाओं द्वारा आपूर्ति होती है जिनकी एक दूसरे से विपरीत क्रियाएं होती हैं। सिंपैथेटिक तंत्रिकाओं के उद्दीपन से किसी अंग विशेष की कोई क्रिया त्वरित होती है, तो पैरा सिंपैथेटिक तंत्रिकाओं के उद्दीपन से उसकी गतिविधि रूकती हैं इस प्रकार इन दो परस्पर विरोधी प्रभावों के परिणाम स्वरूप शरीर में समस्थिति बनी रहती है और अंतरांग सुचारू रूप से अपना कार्य करते रहते हैं। उदाहरण के लिए सिंपैथेटिक तंत्रिका उछीपन से रक्तवाहिकाएँ संकुचित हो जाती हैं और रक्त दाब बढ़ जाता है तथा पैरा सिंपैथेटिक तंत्रिका उद्दीपन से रक्त वाहिकाएँ विष्फारित हो जाती हैं और रक्तदाब कम हो जाता है, परिणाम स्वरूप रक्तदाब सामान्य बना रहता है। सिंपैथेटिक तंत्रिका उछीपन से शरीर से ऊष्मा की हानि कम होती है, जबकि पैरा सिंपैथेटिक तंत्रिका उद्दीपन से शरीर की उष्मा की हानि बढ जाती है और इस प्रकार दोनों तंत्रिकाओं के परस्पर विरोधी प्रभाव से शरीर का तापमान सामान्य बना रहता है। ऐसे अनेकों प्रभाव हैं जिनका वर्णन पूर्व में कर चुके हैं।

 # प्रतिवर्ती क्रिया (reflex action) – मस्तिष्क एवं शरीर के अधिकांश भाग को जोड़ने केअतिरिक्त स्पाइनल कॉर्ड परिवर्ती क्रिया का समन्वय स्थापित करती है। बाह्य उछीपन (स्पर्श, दर्द, ताप आदि) के कारण अपने आप एकाएक हो जाने वाली अनुक्रिया (response) जैसे किसी गर्म वस्तु से छू जाने पर तुरंत ही अपने हाथ को खींच लेना, आंखों के सामने कीड़ा आ जाने से पलक तुरंत बंद हो जाना, पैर में कांटा चुभते ही पैर को पीछे को खींच लेना पटेला(patella) लिगामेंट पर हल्की थपकी देने से क्वाड्रिशेप्स एक्सटेन्सर पेशी का संकुचन होना और नी–जर्क (knee – jerk) होना आदि प्रतिवर्ती क्रियाएं कहलाती हैं कंकालीय पेशियों में होने वाले प्रतिवर्त कायिक या सोमेटिक प्रतिवर्त (somatic reflex) कहलाते हैं। चिकनी पेशी, हृदय पेशी अथवा ग्रंथियों (glands) में होने वाले प्रतिवर्त अंतरांगी या विसरल प्रतिवर्त कहलाते हैं। दोनों तरह की प्रतिवर्ती क्रियाएं शरीर में समस्थिति (homeostasis) बनाए रखने के लिए शरीर को आंतरिक एवं बाह्य परिवर्तनों के प्रति त्वरित (quick) अनुक्रिया कराती है।

स्पाइनल प्रतिवर्ती क्रियाएं (spinal reflexes) – ये क्रियाएं केवल स्पाइनल कार्ड में स्थित न्यूरॉन्स द्वारा संपन्न होती हैं। मस्तिष्क से इनका तुरंत कोई संबंध नहीं होता, बाद में मस्तिष्क को इन क्रियाओं का ज्ञान होता है जैसे पैर में कांटा चुभते ही पैर पीछे खिंच जाना अंगुली में पिन चुभते ही बचाव के लिए अंगुली पीछे की ओर खिंच जाती है आदि ऐसा प्रतिवर्त निम्न क्रम में होता है–

सर्वप्रथम ग्राही संवेदी अंग(receptor sensory organ) जैसे त्वचा पर उद्दीप्त (stimulus) ग्रहण किया जाता है इससे तंत्रिका आवेग(nerve impulse) उत्पन्न होता है, जो संवेदी (अभिवाही) तंत्रिका तंतु के द्वारा पोस्टीरियर रूट ज्ञान गेंग्लियोन में पहुँचता है। जहां से गेंग्लिया के तंतु इसे (आवेग) स्पाइनल कार्ड के पोस्टीरियर हार्न में पहुँचाते हैं यहाँ से आवेग सीधे अथवा इंटरन्यूरॉन्स (interneurons) के द्वारा स्पाइनल कार्ड के इंटीरियर हार्न में पहुँचते हैं जहाँ प्रेरक न्यूरॉन आवेग को प्राप्त करता है तथा उसे प्रेरक अंग जैसे किसी पेशी की इफेक्टर कोशिकाओं(effector cells) को संचारित कर देता है, जिससे प्रतिवर्ती क्रिया के परिणाम स्वरूप एच्छिक पेशी संकुचन(constraction) होता है।

नी–जर्क (knee–jerk) के मामले में पटेलर टेन्डन (patellar tendon) पर हल्की सी थपकी देने से क्वाड्रिसेप्स एक्सटेंसर टेन्डन एवं पेशी और पेशी में स्थित कुछ एक न्यूरोमस्कुलर स्पिंडल्स (neuromuscular spindles) अचानक तन जाते हैं जिससे इसमें पेशी संकुचन होता है। परिणाम स्वरूप निचली टांग आगे की ओर गति (extend) करती हैं।

उपर्युक्त पूरे चक्र को प्रतिवर्ती चाप (reflex arc) कहा जाता है।

अन्तरांगी या विसरल प्रतिवर्ती क्रिया (**visceral reflex action**) – ये ऐसी क्रिया है जिस पर मनुष्य का नियंत्रण नहीं रहता। खाँसना, छींकना, उल्टियाँ होना आदि इसके उदाहरण हैं। कुछ ऐसी भी प्रतिवर्ती क्रियाएं होती हैं, जिनका मनुष्य को ज्ञान रहता है जैसे भोजन को मुख में रखते ही लार निकलने लगना।

ऐसी क्रियाओं के संपादन में निम्नलिखित रचनाओं की आवश्यकता होती है, जिससे एक विसरल प्रतिवर्ती चाप (reflex arc) बनता है।

(i) रिसेप्टर (Receptor)

(ii) अभिवाही (afferent) न्यूरॉन, जो संवेदी आवेग को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को पहुँचाता है।

(iii) इन्टरन्यूरॉन्स (संयोजी तंत्रिका कोशिकाएं)– ये केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के भूरे द्रव्य (grey matter) के भीतर होते हैं, जो सिंपैथेटिक डिवीजन में स्थित प्रीगेंग्लियोनिक न्यूरॉन्स से जुड़ते हैं।

(iv)दो अपवाही (efferent) न्यूरॉन्स

(v) विसरल इफेक्टर (Visceral effector)

स्पाइनल कार्ड में होने वाले ऑटोनॉमिक विसरल रिफ्लेक्स आब्लंगेटा आर्क(autonomic visceral arcs) के उदाहरण हैं– पूर्ण रूप से भरे मूत्राशय में संकुचन होना, आँतों में पेशीय संकुचन होना तथा रक्तवाहिकाओं का संकीर्णन अथवा विस्फारण होना । मेड्यूला ऑस्लागेटा में होने वाले रिफ्लेक्स आर्क के उदाहरण हैं– ब्लड प्रेशर, ह्रदय गति, श्वसन क्रिया, पाचन आदि का नियमन। उपर्युक्त समस्त क्रियाएं हमारे ज्ञान अथवा चेतना नियंत्रण के बिना होती हैं।

तंत्रिका तंत्र पर योग का प्रभाव

तंत्रिका तंत्र का नाम के साथ बहुत घनिष्ठ संबंध होता है मन में स्वरूप और सकारात्मक रहने से तंत्रिका तंत्र भी स्वस्थ एवं सक्रिय रहता है जबकि मन में नकारात्मक विचार एवं भावनाएं उत्पन्न होने से तंत्रिका तंत्र में भी भिन्न–भिन्न प्रकार के विकार जैसे मानसिक तनाव, उत्तेजना, सिरदर्द, अवसाद, निराशा, चिंता घबराहट और बेचौनी आदि उत्पन्न हो जाते हैं। वर्तमान काल में इन रोगों की समाज में एक बाढ़ सी आई हुई है। छोटी उम्र के बच्चों से लेकर वयस्क और वृद्ध सभी आयु वर्ग के मनुष्यों में ऐसी समस्याएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। वर्तमान समय में मनुष्य में धैर्य स्तर और संवेदनाएं समाप्त होती जा रही हैं। मानवीय गुणों सहानुभूति, क्षमा, दया और सरलता के ह्रास के साथ तामसिक वृत्तियां– क्रोध, अहंकार ईर्ष्या और द्वेष बढ़ते जा रहे हैं। योगाभ्यास के द्वारा मनुष्य के शारीरिक स्तर के साथ–साथ बौद्धिक और मानसिक स्तर भी स्वस्थ और उन्नत बनते हैं वास्तव में यौगिक क्रियाएं मनुष्य के मन मस्तिष्क और संपूर्ण तंत्रिका तंत्र को बहुत सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है मानव तंत्रिका तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव को निम्नलिखित तरीके से समझा जा सकता है ÷

1) षट्कर्म का प्रभाव – षट्कर्म की छ: शोधन क्रियाओं का तंत्रिका तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शोधन क्रियाओं में नेति, त्राटक और कपालभाति का अभ्यास अधिक लाभकारी होता है। नेति क्रिया में मस्तिष्क प्रदेश का शोधन होता है , और नाड़ियाँ स्वच्छ होने का सकारात्मक प्रभाव तंत्रिका तंत्र पर पड़ता है। त्राटक मानसिक एकाग्रता और स्थिरता प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है मनुष्य की बिक्री ऊर्जा व शक्तियां त्राटक क्रिया के अभ्यास से केंद्रित होने लगती है मस्तिष्क का अचेतन भाग भी जागृत अवस्था में आने लगता है मानसिक तनाव, अनिद्रा, स्थिरता, कमजोर स्मरण शक्ति एवं एकाग्रता का अभाव आदि विकारों में त्राटक क्रिया बहुत लाभकारी होती है कपालभाति क्रिया का अभ्यास करने से प्रश्वास के रूप में गंदगियां शरीर से बाहर निकलती हैं । इसके साथ–साथ संपूर्ण शरीर से सूचना स्तर पर प्राण ऊर्जा का प्रभाव होता है कपालभाती का अभ्यास मस्तिष्क की न्यूरॉन सेल्स की क्रियाशीलता में भी वृद्धि करता है।

2) आसनों का प्रभाव – महर्षि पतंजलि ने आसनों के अभ्यास का फल बताया है उनके अनुसार आसनों के अभ्यास से द्वांदो को सहने की क्षमता में वृद्धि होती है।

ततो द्वान्द्वनभिघातरू (पा० यो० सू० 2/48)

अर्थात आसन के अभ्यास से शरीर पर सर्दी, गर्मी आदि द्वंदों का प्रभाव नहीं पड़ता शरीर में उन सब को बिना किसी प्रकार की पीड़ा के सहन करने की शक्ति आ जाती है इससे एक ओर जहां शरीर की क्षमता विकसित होती है तो वहीं दूसरी ओर मन तथा बुद्धि में धैर्य का विकास होता है इसके परिणाम स्वरूप सांवेगिक स्थिरता (emotional balance) प्राप्त होती है और विपरीत परिस्थितियों को सहने की क्षमता विकसित होती है।

सूक्ष्म व्यायाम का प्रतिदिन अभ्यास सर्वांगासन् शीर्षासन, भुजंगासन, मत्स्यासन, सिंहासन, वृक्षासन, गरुड़ासन, धनुरासन आदि आसनों के साथ–साथ सूर्य नमस्कार का नियमित अभ्यास करने से संपूर्ण शरीर एवं मस्तिष्क के रक्त संचार भलि प्रकार होता रहता है। आसन करने से मेरुदंड स्वस्थ एवं लचीला बनता है। साथ ही संपूर्ण शरीर में फैली तंत्रिका आएं सक्रिय बनती हैं। जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य का तंत्रिका तंत्र जीवन पर्यंत स्वस्थ, ऊर्जावान एवं रोग मुक्त बना रहता है।

3) प्राणायाम का प्रभाव – प्राणायाम का अभ्यास मनुष्य के तंत्रिका तंत्र को बहुत सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है नियमित प्रातः काल प्राणायाम का अभ्यास करने से अधिक मात्रा में शुद्ध प्राणवायु अर्थात ऑक्सीजन शरीर की कोशिकाओं को प्राप्त होती है तथा मस्तिष्क की न्यूरॉन सेल्स को भी पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त होती है। जिससे एक ओर जहां मस्तिष्क की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है वहीं दूसरी ओर शरीर की कोशिकाओं की सत आयु में वृद्धि होती है। प्राणायाम के लाभों को स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि योग सूत्र में कहते हैं।

धारणासु च योग्यता मानसः (पा० यो० सू० 2/53)

अर्थात प्राणायाम के अभ्यास से मन में धारणा की योग्यता भी आ जाती है यानी मन को चाहे जिस तरह अनायास ही स्थिर किया जा सकता है। अतः प्राणायाम का अभ्यास कई विकारों में बहुत लाभकारी प्रभाव रहता है, जैसे भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास शरीर में स्थित 72000 सूक्ष्म नाड़ियों को शुद्ध करता है। इसी प्रकार भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास मस्तिष्क में सकारात्मक स्पंदन उत्पन्न करता है नाड़ी शोधन अनुलोम–विलोम शीतली, सीत्कारी, उज्जाई और भ्रामरी आदि प्राणायाम का विधि पूर्वक और नियमित अभ्यास करने से मन स्थिर एवं एकाग्र रहता है। सार रूप में स्पष्ट करें तो नियमित प्राणायाम के अभ्यास से मस्तिष्क की एकाग्रता बढ़ने के साथ कठिन और जटिल विषयों को समझना आसान हो जाता है तथा उम्र बढ़ने पर भी मनुष्य की स्मरण शक्ति तीव्र बनी रहती है, व मस्तिष्क क्रियाशील एवं तंत्रिका तंत्र स्वस्थ बना रहता है।

4 ध्यान का प्रभाव – ध्यान के अभ्यास से मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है इससे मस्तिष्क के कई क्षेत्रों के बीच कनेक्टिविटी बढ़ती है। इसके अलावा मस्तिष्क के ग्रे मैटर वॉल्यूम आयतन में वृद्धि होती है। और ग्रे मैटर वॉल्यूम जितना अधिक होगा ब्रेन सेल्स उतने अधिक होंगे जिससे मस्तिष्क की क्षमता बढ़ जाती है। और मनुष्य

के सोचने की शक्ति बढ़ जाती है।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि शरीर के सबसे महत्वपूर्ण अंग मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र को हम योगाभ्यास उपयुक्त आहार –विहार और संयमित जीवनचर्या के द्वारा उन्नत बना सकते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

रिक्त स्थानों कि पूर्ति कीजिये ।

1. मानव मस्तिष्क की मूल रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई_____कहलाती है।

2. संरचना एवं कार्य के आधार पर मानव तांत्रिका तंत्र को_____भागो मैं बाटा जाता है।

3. मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग_____ है।

4 परानुकंपी तंत्रिका तंत्र के सक्रिय होने पर ह्रदय गति एवं स्वास गति_____ हो जाती है।

5. स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को_____ भागो में विभाजित किया गया है।

6._____ एवं_____ से स्वायत्त तांत्रिका तंत्र का परिशरीय भाग बनता है।

7 अनुकम्पी तांत्रिका तंत्र को_____ भी कहा जाता है ।

12.8 सारांश –विद्याथी उपयुक्त विवेचना से आप भली भांति संजीब गए होंगे कि तंत्रिका तंत्र क्या है केंद्रीय तांत्रिका किसे कहते है तथा किस प्रकार मस्तिष्क एवं मेरुरज्जु आपस मे मिलाकर एक दूसरे के कार्य का संबंध बनाए रखते है तांत्रिक तंत्र को शरीर के समस्त संसाधनो में सर्वाधिक महत्वपुर्ण माना गया है अतः शरीर के सभी अंगो के सुचारू संचालन के लिए तांत्रिक तंत्र का सुधीड होना आवश्यक है। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र वह है जो शरीर की अनैच्छिक क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के दो भाग है अनुकम्पी व परानुकम्पी ये एक – दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते है। इस प्रकार विधार्थियो इन दो परस्पर विरोधी प्रभावो के परिणामस्वरूप शरीर में समस्थिति बनी रहती है। अतः स्वायत्त तांत्रिका तंत्र शारीरिक क्रियाओ के सुचारू संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

12.9 शब्दावली

- न्यूरॉन – तांत्रिक तंत्र की सबसे छोटी इकाई
- उरद्दीपक – जो किसी प्रकार की प्रतिकृया उतपन करे
- अग्रमस्तिष्क – मस्तिष्क का आगे का भाग

- ऐच्छिक – इच्छा अनुसार संचालित होने वाला
- अनैच्छिक – जिस क्रिया पर व्यक्ति का अपना कोई नियंत्र या इक्छा नही होती
- स्वायत्त तांत्रिक तंत्र – शरीर मे स्वतः होने वाली क्रियाओ पर अर्थात अनैच्छिक क्रियाओ पर नियंत्रण रखने वाला तंत्र ।
- भित्ति – दीवार।
- मन्द – धीमी / कम
- उद्दीपन – उत्तेजित होना / सक्रिय होना
- स्वयत्त – स्वतः होने वाली ।

12.10 अभ्यासों प्रशनो के उत्तर –

1. न्यूरान
2. .3
3 अर्गमस्टिस्क
4 कम
5 दो
6. तंत्रिका तंतुओ एवं गेग्लिया ।
7. वक्ष – कोटी – भाग

12.11 संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. रस्तोगी , डॉक्टर वीर बाला , (2016) जेब रसायन तथा कार्य की , केदार नाथ राम नाथ
2. गुप्ता , प्रो° अनन्त प्रकाश (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान , समित प्रकाशन आगरा
3. सक्सेना , ओ° पी° (2009) एनाटामी एंड फिजियोलॉजी , भासा भवन मथुरा
4. शर्मा , ड्रा° तारा चंद्र (1999) आयुर्वेदिय शरीर रचना विज्ञान , नादा पुस्तक भंडार रेलवे रोड रोहतक
5. दीक्षित राजेश (2002) शरीर रचना क्रिया विज्ञान , भासा भवन मथुरा
6. गौड़ शीव कुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान , नाथ पुस्तक भंडार , रेलवे रोड रोहतक

12.12 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न 1. तंत्रिका तंत्र से आप क्या समझते है? मेरु रज्जू एवम् संरचना कार्यों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2. मस्तिष्क की संरचना एवम् कार्यों पर प्रकाश डालिए

प्रश्न 3. स्वायत्त तांत्रिक तंत्र से आप क्या समझते है ? इसके प्रमुख कार्यो पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न 4. अनुकम्पी व परानुकंपी तांत्रिका तंत्र की क्रियाविधि का विस्तार से वर्णन कीजिये।